तिब्बत की वह रहस्यमयी घाटी

अरुण कुमार शर्मा

तिब्बत की वह रहस्यमयी घाटी

(सत्य घटनाओं पर आधारित रोमांचकारी कथा संग्रह)

अरुण कुमार शर्मा

तिब्बत
की
वह रहस्यमयी घाटी

[सत्य घटनाओं पर आधारित अविश्वसनीय कथा-प्रसंग]

अरुण कुमार शर्मा

संकलन

मनोज शर्मा
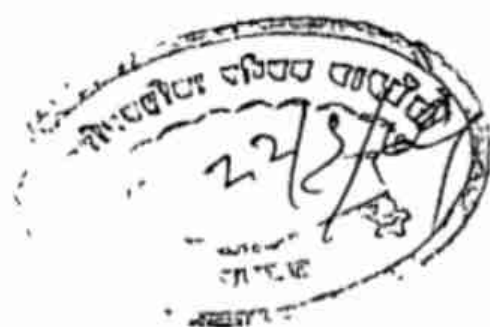
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

TIBBET KI VAH RAHASYAMAYI GHATI

by

Arun Kumar Sharma

1999

ISBN 81-7124-230-8

प्रथम संस्करण : १९९९ ई०

मूल्य : १८० रुपये

प्रकाशक

विश्वविद्यालय प्रकाशन

चौक, वाराणसी-221 001

मुद्रक

वाराणसी एलेक्ट्रानिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०

चौक, वाराणसी

उन दिव्य और महान् आत्माओं

की स्मृति मे

जिनकी अन्तर-प्रेरणा मुझे

अपने लेखन-क्षेत्र में सदैव प्राप्त होती

रहती है।

—अरुण कुमार शर्मा

अनुक्रम

अपनी बात

'वह रहस्यमय कापालिक मठ' की 'अपनी बात' के अन्तर्गत पिता श्री अरुण कुमार शर्मा के लेखन कार्य के संबंध में संक्षिप्त में चर्चा की जा चुकी है।

प्रस्तुत कथा संग्रह 'तिब्वत की वह रहस्यमयी घाटी' के अन्तर्गत पन्द्रह कथाओं का संग्रह है। ये अपने आपमें विशिष्ट तो हैं ही, रहस्य रोमाञ्च से भरपूर और सनसनी खेज भी हैं। यद्यपि ये अविश्वसनीय लगें किन्तु इनमें अतिशयोक्ति नहीं है। लेखक की भाषा में प्राञ्जलता और भाषा पर अधिकार भी है।

आशा है प्रस्तुत कथा-संग्रह भी अन्य कथा-संग्रहों की भाँति पाठकों को प्रीतिकर होगा।

—मनोज शर्मा

व्यवस्थापक
आगम निगम संस्थान
बी० ५/२३ हरिश्चन्द्र रोड
वाराणसी-२२१ ००१
दूरभाष—३१३७७५, ३१२२९३

दो शब्द

हमारे भीतर असीम नैसर्गिक और परानैसर्गिक शक्तियों का विशाल भण्डार भरा हुआ है। हमें सबसे पहले उन शक्तियों को पहचानना चाहिए। जब तक हम उन्हें नहीं पहचानते और नहीं समझते तब तक हमारी इन्द्रियाँ उन सीमाओं में बँधी रहेंगी जो हमें अपनी आश्चर्यजनक और पारलौकिक शक्तियों के प्रयोग से रोकती हैं। एकमात्र यही कारण है कि अपनी रचनाओं के माध्यम से प्राच्य ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्धित जो तथ्य और सत्य प्रस्तुत करता हूँ उसे पढ़ कर लोग यही समझते हैं कि या तो यह बहुत ऊँची कल्पना है या फिर बिल्कुल ही अलौकिक वस्तु है—जिसे हर व्यक्ति न समझ सकता है, और न तो प्राप्त ही कर सकता है, ये दोनों धारणायें भ्रामक हैं। साधारण लोग इस बात को अपनी संकीर्ण मानसिक और बौद्धिक शक्ति के कारण समझने का प्रयास ही नहीं कर पाते कि मेरी भूत-प्रेत अथवा योग-तंत्र पर आधारित रचनाओं की रहस्यवादी घटनाएँ पूर्णतया वैज्ञानिक और प्रकृति के नियम के अनुरूप होती हैं।

यह ठीक है कि घटनाओं को प्रस्तुत करते समय मैं जिन आध्यात्मिक सिद्धान्तों और पारलौकिक नियमों का प्रयोग करता हूँ—वे इतने सामान्य नहीं है, पर हैं तो सिद्धान्त और नियम ही! अपने अनुभवों और अपनी आन्तरिक अनुभूतियों के आधार पर जिन घटनाओं को मैं लिपिबद्ध करता हूँ—वे न आध्यात्मिक सिद्धान्तों और न पारलौकिक सिद्धान्तों के विरुद्ध होती हैं और न प्रकृति के नियमों के विपरीत ही। जो लोग यह समझते हैं कि मैं उच्चकोटि की कल्पना का आश्रय लेकर अलौकिक और साथ ही अविश्वसनीय घटनाओं का निर्माण अपनी रचनाओं में करता हूँ तो मुझे उनके संकुचित और संकीर्ण विचारों पर दया आती हैं, इसलिए कि वे मनुष्य के भीतर विद्यमान उच्चतर गुप्त शक्तियों की उपस्थिति की सम्भावना को न जानते हैं और न समझने का

ही प्रयास करते है। वास्तव में उन्हें उन शक्तियों का किञ्चित मात्र भी ज्ञान नहीं है और वे उन्हें जानने समझने की दिशा में प्रयत्नशील हैं। खैर!

पाठकों को ज्ञात होना चाहिए कि प्राच्य ज्ञान और उसमें निहित रहस्यमयी गुह्य विद्याएँ शुरू से ही मेरे अध्ययन और चिन्तन मनन के विषय रही हैं। उन पर शोध और अन्वेषण करने के सिलसिले में भूत-प्रेत और तंत्र-मंत्र से संबंधित मुझे विलक्षण और रहस्यमय अलौकिक अनुभव हुए हैं और साथ ही साथ मेरे जीवन में जो चमत्कारपूर्ण अविश्वसनीय घटनाएँ घटी हैं उन्ही सब को अपनी भाषा में 'वह रहस्यमय कापालिक मठ', 'मृतात्माओं से सम्पर्क', 'तिब्बत की वह रहस्यमयी घाटी' और 'फांसी' शीर्षक कथा-संग्रह में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

आशा है पाठकों को यह कथा-संग्रह रुचिकर प्रतीत होगा और उनसे किसी सीमा तक लाभान्वित भी होंगे।

अक्षय तृतीया
१९९९ ई०
वाराणसी

—अरुण कुमार शर्मा

१

तिब्बत की वह रहस्यमयी घाटी

क्या मौत, जिन्दगी का अन्त है? क्या मौत के बाद सब कुछ समाप्त हो जाता है? नहीं, नहीं, यह सब अज्ञानता है। मनुष्य, शरीर से बाहर निकलने की स्थिति को, शरीर में प्रवेश करने की स्थिति को और शरीर के भीतर रहकर विषयों के भोगने की स्थिति को न जान पाता है और न तो कभी समझ ही पाता है। जब हम अपने शरीर से अलग होते हैं तब

(१)

काशी का लाली घाट। साँझ की स्याह कालिमा अब रात्रि के प्रगाढ़ अंधकार में बदल चुकी है। आकाश में झिलमिलाते हुये ग्रह-नक्षत्रों की परछाइयाँ गंगा के शान्त-निर्मल जल में पड़ने लगी हैं। घोर नीरवता चारों तरफ वातावरण में छायी हुयी है। सिर घुमा कर देखता हूँ—हरिश्चन्द्र घाट का महाश्मशान भी सूना पड़ा है। घाट के चार-पाँच डोम जिनके स्याह काले और वीभत्स चेहरों पर सामने जल रही लालटेन की पीली मटमैली रोशनी थिरक रही है—हाथों में मिट्टी के चिलम थामे चुप-चाप बैठे गाँजा पी रहे हैं। शायद आज उनका धंधा मन्दा है और वे किसी लाश की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सहसा अँधेरे में मेरे सामने एक छाया उभरती है। वह छाया धीरे-धीरे आगे बढ़ती है और मेरे सामने आकर खड़ी हो जाती है। फिर हल्का-सा स्वर सुनाई पड़ता है—'शर्मा जी! आप '

आवाज पहचान जाता हूँ मैं। वह शंकर भारती की आवाज थी। वे काशी के अच्छे साधक हैं। बहुत दिनों से उनसे मेरा परिचय है। एक बार उन्होंने मेरे साथ हिमालय की यात्रा भी की है। वे सीढ़ी पर मेरे करीब बैठ जाते हैं और पूछने लगते हैं,

क्या चिन्तन-मनन हो रहा है इस एकान्त में। विषय बतला देता हूँ अपने चिन्तन-मनन का। सुनकर भारती महाशय कुछ क्षण तक तो मौन रहते हैं और फिर कहते हैं—अश्रद्धा अच्छी वस्तु नहीं है। चित्त को विश्वास योग्य तथ्यों से रिक्त करना सरल हो सकता है परन्तु बहुत दिनों तक चित्त को शून्य बनाकर रखा नहीं जा सकता। आपत्तियाँ आती हैं, संकटों का और तमाम कष्टों का सामना करना होता है उस समय। जिस मनुष्य के जीवन के आधार पर कोई स्थायी सिद्धान्त नहीं है वह नाव बिन पतवार की तरह हो जाता है। उसकी अवस्था उस पतंग-सी हो जाती है जिसकी डोर नीचे से कट गयी है। जो सुख-सम्पत्ति, धन-परिवार, वैभव और अधिकार रुचिकर लगते थे वे नीरस प्रतीत होने लगते है। बिना किसी स्थायी लक्ष्य के मन में तथा हृदय में कुछ सूना-सूना-सा लगता है। विषयों के भोग से वह सूनापन दूर नहीं होता।

यही वह स्थल है, जहाँ योगी की आवश्यकता पड़ती है। मैंने कहा—'जिसने धर्म के मूल स्रोतों का साक्षात्कार किया है, और संसार के क्षण-भंगुर वस्तुओं के पीछे स्थायी और उसके भी पीछे अविनश्वर कल्प तत्वों को प्रत्यक्ष देखा है उसकी कही हुयी बातें साधु-हृदय से निकलती हैं और अनुभव पर प्रतिष्ठित हैं, इसलिए उसमें से सत्य की टंकार निकलती है जिसको सुनकर विश्वास स्वयं उत्पन्न होता है। हृदय, हृदय से बोलता है। यह असम्भव नहीं कि लोग एक बार उसकी कही हुयी बातों को अनसुनी कर जायें और हँसकर टाल दें। कटु सत्य सुनाने वाले को कष्ट भी दें। लेकिन अन्त में उसे सुनना ही होगा। रही कष्ट की बात, मनस्वी पुरुष कर्त्तव्य का वरण करते हैं। दु:ख-सुख को नहीं देखते। सच्चा योगी किसी विशेष आम्नाय, किसी विशेष सम्प्रदाय और किसी पक्ष या मन की ओर से प्रचार नहीं करता है। वह 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' सत्य का सन्देश सुनाता है। उसका चरित्र ही उसका बल है। आत्मा ही उसकी सबसे बड़ी शक्ति है।

लेकिन इस प्रकार के योगियों का इस समय प्रत्यक्ष रूप में दर्शन दुर्लभ है। मैंने कहा।

नहीं, ऐसी बात नहीं है।—भारती महाशय बोले—अभी कुछ समय पहले एक उच्चकोटि की योग साधिका वाराणसी में आयी हैं। वह बड़ी सिद्ध साधिका है। अवस्था यही होगी साठ-पैंसठ के लगभग। लेकिन फिर भी आयु का प्रभाव उन पर नहीं है।

कहाँ से आयी हैं ? मैंने पूछा।

अरुणाचल से ।

हाँ, अरुणाचल से।

अचानक श्मशान में सो रहे कुत्ते समवेत स्वर में रोने लगे। और उनके उस सामूहिक विलाप के साथ-साथ सुनाई पड़ा—राम नाम सत्य है—की अस्फुट आवाज। कोई लाश आ रही थी। झपकी ले रहे डोमों की तन्द्रा भंग हो गयी एकबारगी और वे एक साथ लाश की ओर लपके।

रात शायद अधिक हो गयी थी। भारती महाशय उठकर खड़े हो गये। उनके साथ

मुझे भी उठना पड़ा। घाट की सँकरी और अँधेरे में डूबी गली को पार कर जब मैं उनके साथ सड़क पर आया, तो हौले से मैंने पूछा—'वाराणसी में कहाँ ठहरी हैं, वह योग साधिका ?'

मेरे ही निवास-स्थान पर। भारती महाशय ने कहा।

क्या मैं उनका दर्शन-लाभ कर सकता हूँ ?

अवश्य, क्यों नहीं ? आप कल ही सायंकाल आ जाइये। भेंट करा दूँगा आपसे। इतना कह कर भारती महाशय मुड़े और आगे बढ़ गये। उनके चले जाने पर मैं फिर लाली घाट की सकरी और अँधेरी गली में घुस गया और जाकर बैठ गया फिर सीढ़ियों पर।

वास्तव में श्मशान के प्रति बचपन से ही मुझे मोह है और है प्रबल आकर्षण, जिसके फलस्वरूप खिचा हुआ चला जाता हूँ मैं वहाँ। इस मोह के पीछे और इस आकर्षण के पीछे मेरे पूर्वजन्म का कौन-सा संस्कार है—यह तो मैं नहीं बतला सकता हूँ कि घोर शून्य में आकण्ठ डूबे हुए महाश्मशान में मुझे उस सत्य का दर्शन हुआ है—जिसने मेरे जीवन को आमूल चूल परिवर्तित कर दिया एकबारगी। कहने की आवश्यकता नहीं, उसी परिवर्तन के फलस्वरूप आज मेरे लिए यह सारा संसार श्मशान जैसा हो गया है और मैं हो गया हूँ संसार के लिए शव-समान। रात के विकट अंधकार में घण्टों बैठा रहता हूँ मौन साधे। कभी तो पूरी की पूरी रात ही समाप्त हो जाती है इस श्मशान में।

कहीं टन्-टन् कर ग्यारह का घण्टा बजा। कुत्तों का विलाप तो बंद हो गया था, मगर श्मशान में हलचल हो रही थी। शायद कुछ देर पहले आयी हुई लाश का इन्तजाम हो रहा था। अँधेरे में आँखें गड़ा कर उधर देखने की कोशिश करने लगा मैं। और तभी, श्मशान की खामोशी में तैरता हुआ किसी का विगलित स्वर सुनायी पड़ा मुझे। कोई कह रहा था, 'भैया! बचवा के जरा धीरे से उठाय के रखिहा चितवा पर। एक ही लरिका हौ हमार ।'

समझते देर न लगी। निश्चय ही उस अभागे बाप का था वह करुण स्वर, जिसकी वृद्धावस्था में सहारे की लाठी एकाएक टूट गयी थी। मगर उसके जख्मी दिल में अपने जवान बेटे के प्रति इतना मोह और इतनी ममता थी कि अब भी वह लाश को लाश मानने के लिए तैयार नहीं हो रहा था।

हे भगवान्! कितनी विचित्र माया है। कितनी गहरी है ममता ? सिर घुमा लेता हूँ। और फिर जीवन-मृत्यु की फिलासफी पर ही सोचने लगता हूँ मैं—'क्या मौत, जिन्दगी का अन्त है ? क्या मौत के बाद सब कुछ समाप्त हो जाता है ? नहीं, नहीं, यह सब अज्ञानता है। ऐसा सोचना-समझना भारी भूल है। न मौत जिन्दगी का अन्त है और न मौत के बाद सब कुछ समाप्त ही हो जाता है। मनुष्य, शरीर से बाहर निकलने की स्थिति को, शरीर में प्रवेश करने की स्थिति को और शरीर के भीतर रहकर विषयों के भोगने की स्थिति को न जान पाता है और न तो कभी समझ ही पाता है जब हम अपने शरीर से

अलग होते हैं।'

जब शरीर हमसे छूटता है। हजारों-लाखों बार हम शरीर से अलग हुए हैं। हजारों-लाखों बार शरीर हमसे छूटा है। मगर बार-बार हम मृत्यु के क्षणों के अनुभवों से वंचित रह गये हैं।

वास्तव में जब भी शरीर छूटता है, जब भी हम शरीर से अलग होते हैं, उस समय एक गहरी मूर्च्छा की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जिसे हम मृत्यु की मूर्च्छा कह सकते हैं। जब भी कोई मरता है, तो इसी मूर्च्छा में मरता है। मृत्यु एक रहस्यमयी घटना है। उस रहस्यमयी घटना घटने के पूर्व व्यक्ति मूर्च्छित हो जाता है। इसलिए मृत्यु का जो अनुभव है उससे वह वंचित रह जाता है। यही कारण है कि मृत्यु का रहस्य आज तक रहस्य ही बना हुआ है।

मृत्यु के लगभग चालीस-पैंतालीस मिनट पूर्व व्यक्ति मूर्च्छित हो जाता है और इतने समय के भीतर आत्मा धीरे-धीरे शरीर से अलग होती है। मृत्यु के बाद भी व्यक्ति मूर्च्छा में ही रहता है। मृत्यु के बाद की मूर्च्छा की यह स्थिति कम भी हो सकती है और अधिक भी हो सकती है।

जब मृत व्यक्ति इस मूर्च्छा से निवृत्त होता है उस समय वह अपने आपको सर्वथा नवीन वातावरण और नवीन परिस्थिति में पाता है।

मृत्यु के समय जब आत्मा शरीर से और शरीर आत्मा से पृथक् होता है उस समय इन्द्रियाँ पीछे छूट जाती हैं, मगर 'मन' सूक्ष्म वासनाओं और सूक्ष्म संस्कारों को समेट कर आत्मा के साथ सर्वथा नयी यात्रा पर निकल पड़ता है। मन और आत्मा एक ही पदार्थ के दो रूप हैं। जो स्थिर है जो साक्षी है रूप, वह 'आत्मा' है और जो चंचल है जो क्रियाशील है रूप, वह 'मन' है। मन कर्त्ता है और आत्मा उस कर्त्ता का एकमात्र साक्षी है। बस, यही भेद है आत्मा और तन में।

यह भेद और यह घटना मरणासन्न व्यक्ति को समझ में नहीं आती इसलिए कि वह मरते समय मूर्च्छित रहता है। तात्विक लोग अथवा दार्शनिक लोग इसी मूर्च्छा को अज्ञान कहते हैं। हर व्यक्ति अज्ञान में मरता है और अज्ञान में ही जन्म लेता है। जन्म और मृत्यु के बीच की जो स्थिति है उसी का नाम जीवन है। जीवन भी अज्ञान है। हमारे लिए ये तीनों घटनायें अत्यन्त रहस्यमयी है। तीनों घटनाओं के प्रति हम अज्ञानी हैं। हम जन्म लेते हैं अज्ञान में, जीते भी हैं अज्ञान में ही और मरते भी हैं अज्ञान में। इसी का दूसरा नाम माया है।

यह मूर्च्छा क्यों? यह अज्ञानता क्यों? यह माया क्यों? क्यों हम मरते समय मूर्च्छित अथवा बेहोश हो जाते हैं? जन्म के भी समय यही स्थिति क्यों उत्पन्न हो जाती है?

जन्म और मृत्यु प्रकृति की एक व्यवस्था है। एक नियम है। जीवन स्वयं एक पीड़ा है, एक वेदना है, एक कष्ट है और है एक दुःख। मगर मृत्यु सबसे बड़ा दुःख है।

सबसे बड़ा कष्ट है। सबसे गहरी है वेदना और सबसे गहरी है पीड़ा।

असहनीय है मृत्यु। जब दुःख, कष्ट, वेदना और पीड़ा असहनीय हो जाती है तो उसी क्षण मूर्च्छा जन्म लेती है।

मृत्यु हमारे अस्तित्व को मिटा देती है। मृत्यु हमारा सर्वस्व नाश कर देती है। बस, इसीलिये हम मृत्यु से डरते हैं और होते हैं भयभीत। इसी भय और डर से हमारी चेतना लुप्त हो जाती है और हम बेहोश हो जाते हैं।

लेकिन जो उच्चकोटि के योगी है, साधक हैं और जो ध्यान की गहराई में प्रवेश करने की योग्यता रखते हैं, वे मृत्यु से कदापि भयभीत नहीं होते। मृत्यु उनके लिए कष्ट-दायिनी अथवा वेदनादायिनी नहीं है। क्योंकि ऐसे लोग अपने अस्तित्व को मिटा देने का और हमेशा-हमेशा के लिये अपने आपको नष्ट कर देने का मार्ग खोजते रहते है और ऐसे विज्ञान की खोज में भी वे लोग बराबर भटकते रहते हैं, जो उनके अस्तित्व को एकबारगी समूल समाप्त कर दें। इसी का नाम है मोक्ष अथवा परम निर्वाण।

योगीगण, साधकगण अपने स्वयं के अस्तित्व को ही पीड़ा समझते हैं, वेदना समझते है और समझते हैं दुःख व कष्ट। जीवन एक सतत् प्रवाह है। मृत्यु, हमारे लिए एक नया द्वार खोलती है। एक नया मार्ग प्रशस्त करती है। मगर तभी, जबकि हम होश में मरेंगे। ज्ञान में मरेंगे। चेतना में मरेंगे, अन्यथा नहीं। शरीर हमसे छूट रहा है। संसार हमसे अलग हो रहा है—मूर्च्छा के फलस्वरूप यह हम नहीं जान-समझ पाते, यह हम तभी जान-समझ पाते हैं जबकि हम मृत्यु के समय होश में रहें। ज्ञान में रहें। चेतना में रहें।

होश में, ज्ञान में व चेतना में रहने के लिए अभ्यास की आवश्यकता है। और यह अभ्यास ध्यान की अवस्था में होता है। ध्यान की अवस्था में हम मृत्यु की स्थिति का ही अनुभव करते हैं। ध्यान का मतलब ही है चेतना की अवस्था में ही अचेतन में प्रवेश कर जाना। योगशास्त्र में दो शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। पहला है वैराग्य, दूसरा है अभ्यास। मृत्यु का हर क्षण और हर पल चिन्तन करना वैराग्य है और ध्यान की अवस्था में चेतन युक्त रहकर अचेतन में प्रवेश करने का प्रयास करना अभ्यास है। जिसने जीवन भर वैराग्य और अभ्यास की साधना की है वही मृत्यु के समय होश में रहेगा, चेतना में रहेगा और रहेगा ज्ञान में।

वास्तव में जन्म और मृत्यु एक ही द्वार के दो भाग हैं। पहले भाग से प्रवेश का मतलब है मृत्यु और दूसरे भाग से निकलने का मतलब है जन्म। जब हम शरीर से बाहर निकलते हैं, तो वह है मृत्यु और जब हम किसी शरीर में प्रवेश करते हैं, तो वह है जन्म। मृत्यु निगम है और जन्म है आगम। आध्यात्मिक दृष्टि से निगम का मतलब है योग और आगम का मतलब है तंत्र। मृत्यु होश में हो इस कला को बतलाता है योग। इसी प्रकार जन्म होश में हो इस कला को बतलाता है तंत्र। जैसे योग और तंत्र में किसी प्रकार का भेद नहीं हैं वैसे ही जन्म और मृत्यु में भी कोई भेद नहीं है। एक ही प्रक्रिया है दोनों की। यदि हम होश में और चेतना में मरते हैं तो निस्सन्देह हमारा जन्म भी होश व चेतना में होगा। और तभी हमें अपने पिछले जन्म का और पिछले जीवन का भी स्मरण रहेगा।

पूर्वजन्म का स्मरण पूर्वजन्म की स्मृति अति मूल्यवान है। पूर्वजन्म में, पूर्वजीवन में हमने क्या-क्या किया है? क्या अच्छा किया है और क्या बुरा किया है? यदि उन सबकी स्मृतियाँ जाग जायें, तो वर्तमान जीवन में उन सबको फिर दुहराया न जा सकेगा हमसे। क्योंकि उनमें न रस रहेगा और न तो रहेगा आकर्षण ही। जो बातें और जो चीजें बार-बार दुहराई जाती हैं उसके प्रति रस और आकर्षण धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है और उसके प्रति उत्साह भी समाप्त हो जाता है।

एक तरफ जन्म है और दूसरी तरफ है मृत्यु। बीच में है जीवन। जन्म अतीत में है। मृत्यु भविष्य में है। वर्तमान में जीवन है। मगर हम तीनों के प्रति मूर्च्छित हैं। मूर्च्छा की स्थिति में हमारा जन्म हुआ है। मूर्च्छा की स्थिति में हम जी रहे है और मूर्च्छा की ही स्थिति में एक दिन मर भी जायेंगे। यही कारण है कि कितना भी कोई यह कहता है कि हम शरीर नहीं, आत्मा हैं; लेकिन भीतर यह बात प्रवेश नहीं कर पाती। कहने को तो सभी धर्माचार्य और सभी तत्ववेत्ता यह कहते हैं कि शरीर नाशवान है। संसार मिथ्या है। अमर है, तो केवल आत्मा। अपने को शरीर नहीं, आत्मा मानकर चलना चाहिए, लेकिन यह सब हमारा मन मानने को तैयार नहीं होता। मन में तो शरीर का ही संस्कार बना हुआ है। इसलिए हम इन सबके बावजूद भी अपने आपको शरीर ही मानते हैं और समझते हैं।

जन्म, मृत्यु और जीवन—ये तीनों अत्यन्त महत्वपूर्ण घटनायें हैं। पहली घटना घट चुकी है। दूसरी घटना भविष्य में घटेगी। मगर जो तीसरी घटना है वह बराबर घटती जा रही है। यदि ये तीनों घटनाएँ होश में, चेतना में और अमूर्च्छा की स्थिति में घटें तभी हमारे अन्तराल में यह परम सत्य प्रवेश कर सकेगा कि हम शरीर नहीं, आत्मा है—जो कभी नष्ट नहीं होता और कभी मरता भी नहीं। जिस पर किसी भी स्थिति एवं वातावरण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता वह अजर है, अमर है।

लेकिन प्रश्न है कि इसकी साधना कैसे हो? क्योंकि जन्म पीछे छूट गया है। मृत्यु अभी आने वाली है। केवल जीवन गुजर रहा है। जीवन ही अपने हाथ में है अभी।

गल-गल कर रात की कालिमा बह चुकी है। सबेरा होने वाला है अब। पूरब का आकाश धीरे-धीरे सफेद हो रहा है। गंगा के निर्मल जल में पड़ने वाली ग्रह-नक्षत्रों की छाया भी मन्द पड़ने लगी है। बूढ़े बाप के जवान बेटे की लाश अब राख में बदल गयी है और वह बूढ़ा अपनी पथराई आँखों से उस राख को देख रहा है। एक लम्बी साँस लेता हूँ मैं और उठकर सीढ़ियाँ चढ़ने लगता हूँ। सिर भारी हो गया है। आँखें कड़ुवाने लगी हैं। मगर करूँ क्या? रोज का ही व्यापार है यह तो।

सायंकाल का समय। घाट की सकरी और गन्दी गलियों को पार कर जब मैं शंकर भारती के निवास पर पहुँचा, तो वह दरवाजे पर ही खड़े मिले। मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे थे। मकान के ऊपर वाले एक कमरे में वह योग साधिका ठहरी हुई थीं। सारा कमरा अगरबत्ती और फूलों की सुगन्ध से भरा था। एक ओर तख्त लगा था। तख्त पर पीले रंग का रेशमी चादर बिछा हुआ था। जिस पर एक महिला आँखे बन्द किये, पद्मासन की मुद्रा में शान्त भाव से बैठी हुई थी। वही थीं अरुणाचल की योग साधिका। गौर वर्ण और

आकर्षक तेजोमय मुखमण्डल। पीले रंग की रेशमी साड़ी में भी भव्य लग रहा था योग साधिका का व्यक्तित्व। खुले हुए घने काले बाल पीठ पर बिखरे हुए थे। गले में स्फटिक और रुद्राक्ष की माला भी पड़ी थी।

ध्यानमग्न थी योग साधिका। देखने में आयु साठ के लगभग लग रही थी लेकिन आयु का प्रभाव शरीर पर नहीं था। ध्यानावस्था के फलस्वरूप हम दोनों की उपस्थिति का आभास उन्हें नहीं था। मैं अपलक उनके चेहरे की ओर निहार रहा था। ऐसा लगा, मानो योग साधिका को पहचानता हूँ मैं। परिचित-सा लगा मुझे उनका चेहरा। अचानक मेरे मस्तिष्क में कुछ कौंध-सा गया। और उसी के साथ पैंतीस वर्ष पूर्व की स्मृति भी जागृत हो गयी मस्तिष्क में। अचानक अस्फुट स्वर में निकल गया मेरे मुँह से, 'अरे, यह तो अरुणाचल के उस रहस्यमय मठ की योगिनी है शिवामयी, जिसमें मैं पूरे एक वर्ष तक रहा था और पूरे एक वर्ष शिवामयी का मधुर सान्निध्य प्राप्त रहा था। फिर उसके बाद शिवामयी की यौवन से भरपूर देह यष्टि और उनका रूप एकबारगी थिरक उठा मानस पटल पर। कभी सोचा न था और कभी कल्पना भी नहीं की थी मैंने कि अल्पावस्था में ही योग तंत्र की कठोर साधना के उच्च शिखर पर पहुँच जाने वाली पच्चीस वर्षीया उस तवांगी युवती से फिर कभी जीवन में भेंट होगी और वह भी इस प्रकार। बड़ा ही अचरज हुआ मुझे उस समय।'

थोड़ी देर बाद योग साधिका के नेत्र खुले। एक बार सिर घुमाकर कमरे में चारों तरफ देखा और फिर अपनी दृष्टि उसने मुझ पर स्थिर कर दी। शायद वह भी मुझे जानने की कोशिश कर रही थी। आखिर पहचान ही गयी वह मुझको। आँखें फैलाकर आश्चर्य से मेरी ओर देखती हुई धीमे स्वर में बोली, 'अरे शर्मा जी, आप? आप यहाँ कैसे?' यही प्रश्न तो मैं भी आपसे करना चाहता हूँ। मुस्कराकर मैंने कहा।

योग साधिका हँस पड़ी एकबारगी और फिर कहने लगी, 'वाराणसी में एक परम साधक गुप्त रूप से निवास करते हैं। उन्हीं के दर्शनार्थ आयी हूँ मैं। एक दिन दशाश्वमेध घाट पर शंकर भारती से अकस्मात् परिचय हो गया। और तभी से मैं रह रही हूँ यहाँ।'

हम दोनों एक-दूसरे से परिचित हैं यह जानकर शंकर भारती को भी कम आश्चर्य नहीं हुआ। वे मुँह बाये, हतप्रभ-सा कभी मेरी ओर तो कभी योग साधिका की ओर देखने लगे।

काशी में कौन है वह परम साधक? यह पूछने पर योग साधिका ने जिन महापुरुष का नाम लिया, वे मेरे तांत्रिक गुरु थे। नाम था कालिकानन्द अवधूत। वाराणसी के पातालेश्वर मुहल्ले में रहते थे वह। वह अवधूत सम्प्रदाय के उच्च साधक थे। कई बार कठोर साधना कर शवसिद्धि प्राप्त की थी उन्होंने। सद्यः शव में योग तांत्रिक बल से उच्चकोटि की आत्माओं का आवाहन कर उनसे सम्पर्क साधा करते थे वह। जिसके फलस्वरूप ब्रह्माण्ड के अनेक रहस्यमय लोक-लोकान्तरों और उनमें निवास करने वाले प्राणियों का प्रत्यक्ष अनुभव था उन्हें। योग तांत्रिक साधना में इतनी उच्च अवस्था प्राप्त करने के पश्चात् भी अवधूत महाशय हमेशा प्रच्छन्न रूप से काशी में रहते हैं। उनकी राजसी वेश-भूषा को देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि वे

योगी अथवा तांत्रिक हैं।

अवधूत महाशय के निर्देशन में कहना न होगा, मैंने भी कई रहस्यमयी तांत्रिक साधना की थी। इतना ही नहीं उनकी कृपा और प्रेरणा के फलस्वरूप अरुणाचल प्रदेश के एक गुप्त तांत्रिक मठ में भी प्रवेश कर पाया था और वहाँ रहकर योग तंत्र से संबंधित कई गोपनीय और रहस्यमयी विद्याओं से भी परिचित हुआ था मैं। वह विद्यायें ऐसी है जिनके विषय में प्रत्यक्ष कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता।

एक बार साधना-प्रसंग में अवधूत महाशय ने बतलाया कि तिब्बत की तरह अरुणाचल प्रदेश में भी ऐसे गुप्त मठ हैं जिनमें रहस्यमय ढंग से अनेक उच्च अवस्था प्राप्त और मानवेतर शक्ति सम्पन्न योगी और साधकगण निवास करते हैं। प्रसंग में उन्होंने यह भी बतलाया कि उन योगियों और साधकों में कुछ शाक्त और कापालिक सम्प्रदाय के भी लोग हैं। शाक्त और कापालिक सम्प्रदाय तंत्र योग के उच्च और गम्भीर सम्प्रदाय समझे जाते हैं। इन दोनों सम्प्रदायों से संबंधित जो सच्चे अर्थों में योगी तांत्रिक होते हैं, वे हमेशा प्रच्छन्न भाव से रहते हैं। शीघ्र अपने आपको वे प्रकट नहीं करते हैं। उनका केवल अपनी साधना से ही मतलव रहता है। अपने प्रति विरक्त और संसार के प्रति अनासक्त रहते हैं वे। उनकी साधना के मूल में किसी भी प्रकार की कामना नहीं बल्कि त्याग और वैराग्य की भावना रहती है।

कहने की आवश्यकता नहीं। यह सब सुनकर लोभ संवरण न कर सका मैं। अरुणाचल की कष्टदायिनी यात्रा के लिए तुरन्त तैयार हो गया। उसी सप्ताह आवश्यक तैयारी कर और अवधूत महाशय का तिब्बती भाषा में लिखा पत्र लेकर यात्रा पर निकल पड़ा।

(२)

तेजपुर रेलवे स्टेशन। भोर का समय। गाड़ी से जब मैं उतरा उस समय चारों तरफ घना कुहरा छाया हुआ था। स्टेशन पर ज्यादा भीड़-भाड़ नहीं थी। जो दस-बीस यात्री थे वे भी गाड़ी चले जाने के बाद उस घने कुहरे के आगोश में समा गये। पहले जैसी खामोशी फिर बिखर गयी प्लेटफार्म पर। अपना एक छोटा-सा झोला और कम्बल जमीन पर रखकर एक ओर खड़ा हो गया चुपचाप मैं। और सोचने लगा कि क्या करूँ। कहाँ जाऊँ अब? काफी देर तक खड़ा सोचता रहा चुपचाप मैं। तभी मेरी नजर सामने कुछ दूर खड़े एक डुप्पालामा पर पड़ी, जो पीला लबादा पहने और आँखें बन्द किये मनिका फेर रहा था। शायद कहीं जाने के लिए किसी गाड़ी के इन्तजार में था वह। धीरे-धीरे कुहरा छँटने लगा और सूरज की सुनहरी किरणें धरती को चूमने लगी थीं। न जाने क्या सोचकर मैं उस लामा के सामने जाकर खड़ा हो गया। शायद मेरी उपस्थिति का आभास लग गया उसे। मनिका घुमाना बन्द कर मेरी ओर देखा उसने। उसका अपनी मिचमिचाती आँखों से इस प्रकार घूर कर देखना मुझे अच्छा नहीं लगा। लेकिन उसके कुछ कहने के पूर्व ही अपना परिचय देते हुए अपने आने का उद्देश्य भी बतला दिया उसको मैंने। वह डुप्पालामा तवांग में रह चुका था। कुछ देर तक मौन रहने के बाद झटके से उसने कहा, 'नहीं, नहीं,

तवांग नहीं जा सकता तू।'

क्यों? उत्सुकता से मैंने पूछा।

वहाँ जाने के लिए 'इनर लाइन' की परमिट लेनी होती है। बिना परमिट के उधर जाना मना है। उसने कहा।

अरुणाचल प्रदेश में एक जिला है कामेंग। कामेंग के उत्तर-पश्चिम की दिशा की ओर एक अत्यन्त सुरम्य और मनोहारिणी घाटी है—जिसकी ऊँचाई लगभग १० हजार फुट है। उसी घाटी में एक कस्बा है—जिसका नाम है तवांग।

तवांग ऐसे स्थान पर है, जहाँ भारत, तिब्बत और भूटान की सीमा रेखायें आकर एक-दूसरे से मिलती हैं। इसलिए सामरिक दृष्टि से तवांग का भारी महत्त्व है। तवांग जाने के लिए तेजपुर से एक पहाड़ी सड़क गयी है—जो काफी लम्बी और पथरीली है। तेजपुर और तवांग के बीच एक भयानक दर्रा है, जिसका नाम है सेला। सेला दर्रा की भी ऊँचाई १४ हजार फुट के लगभग है। वह सड़क—जो अपने आप में एक इतिहास छिपाये हुए है, उस सेला दर्रा को पार कर तवांग पहुँचती है। सेला दर्रा प्राकृतिक छटाओं से भरा अवश्य है मगर उसको पार करना अत्यन्त कठिन है। तवांग जिस स्थान पर है वह अरुणाचल प्रदेश का अग्रिम क्षेत्र है। यह क्षेत्र 'इनर लाइन परमिट' के अधिकार अथवा नियंत्रण में है। वास्तव में 'इनर लाइन' एक ऐसी रेखा है—जिसको पार कर आगे जाने की आज्ञा उसी व्यक्ति को दी जाती है जो महत्वपूर्ण है और जिसका अरुणाचल प्रदेश में कोई महत्वपूर्ण कार्य है। मगर मैं कोई महत्वपूर्ण व्यक्ति तो नहीं हूँ। पर हाँ, मेरा कार्य अवश्य महत्वपूर्ण है। फिर थोड़ा रुक कर मैंने कहा, 'क्या आप इस दिशा में मेरी सहायता कर सकेंगे?'

मेरी बात सुनकर डुप्पालामा कुछ देर तक मौन रहा। फिर हाथ में फँसी मनिका को लबादे की भारी जेब के भीतर रखते हुए धीरे से बोला, 'कर सकता हूँ, लेकिन तवांग के भीतर जाने के लिए मैं तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता।'

क्यों? कौन-सी कठिनाई है इसमें? मैंने पूछा।

मठ में प्रवेश करने के लिए किसी बाहरी व्यक्ति को मठ के प्रधान आचार्य की अनुमति लेनी पड़ती है। बिना उनकी अनुमति के कोई भी मठ में प्रवेश नहीं कर सकता। डुप्पालामा ने बतलाया।

कौन है वह प्रधान आचार्य? मेरे यह पूछने पर डुप्पालामा ने जिस महापुरुष का नाम लिया—उसे सुनकर एकबारगी चौंक पड़ा मैं। तवांग मठ के उन्हीं आचार्य को तो सम्बोधित कर कालिकानन्द अवधूत ने पत्र लिखा था। लेकिन जब इसकी चर्चा मैंने डुप्पालामा से की तो उसको विश्वास ही नहीं हुआ। अपनी आँखें मिचमिचाते हुए उसने कहा, असम्भव है! प्रधान आचार्य, उच्च अवस्था प्राप्त परम योगी हैं। उनका दर्शन सभी के लिए सुलभ नहीं है। तू भला कैसे मिल सकेगा उनसे?

उसकी बात सुनकर मैं मुस्कराया और फिर जेब से पत्र निकाल कर डुप्पालामा के सामने रख दिया। एक ही साँस में पूरा पत्र पढ़ गया वह और पढ़ने के बाद आश्चर्य से मेरी

ओर एक बार देखा उसने और कहा, 'तुम सचमुच भाग्यवान हो।'

तवांग के मूल निवासी मोम्पा जाति के बौद्ध लोग हैं। संसार में अपनी विशालता और प्राचीनता की दृष्टि से दो ही मठ प्रसिद्ध हैं। तवांग मठ को स्थानीय लोग 'गोम्पा' कहते हैं। गोम्पा यानी तवांग मठ लगभग ५०० वर्ष प्राचीन है। तवांग मठ में लगभग तीन-चार सौ बौद्ध-भिक्षु और लामा रहते हैं जिनका एकमात्र कार्य है—पूजा-पाठ, जप-तप करना और योग साधना करना। मठ की लम्बी-चौड़ी चहारदीवारी के भीतर सैकड़ों मकान, सैकड़ों साधनागृह और अनेक दुकानें हैं। बौद्ध-भिक्षु परिश्रम भी करते हैं। साधना-उपासना के बाद जो समय मिलता है उसका उपयोग वे खेती-बाड़ी में करते हैं। चहारदीवारी से घिरे हुए मठ का मुख्य द्वार काफी विशाल है। मगर उसका लम्बा-चौड़ा फाटक प्रायः बन्द ही रहता है।

पूरे पन्द्रह दिनों की भयंकर कष्टदायिनी यात्रा के बाद जब मैं तवांग के करीब पहुँचा, तो दूर से ही दीख गया मुझे तवांग का वह विशाल मठ। आकाश में छाये हुए बादलों की भूरी पर्तों के बीच वह मठ मुझे एक बहुत बड़े काले धब्बे जैसा लगा। छोटी-छोटी बूँदें गिर रही थीं। एक गहरी निस्तब्धता छायी हुयी थी वातावरण में। उस शान्ति में ऐसा लगा मानो मेरे जीवन की गति एकाएक मन्द पड़ गयी हो और मेरा सम्पूर्ण अस्तित्व भी एकबारगी ठहर गया हो। काफी देर तक अपलक निहारता रहा मैं आकाश में मठ के उस स्याह धब्बे को। किसी की आवाज सुनकर अचानक मेरी तंद्रा भंग हो गयी। पलट कर देखा तो वहाँ एक लामा खड़ा था। उसके ताँबीचे रंग के चेहरे पर अजीब-सी शान्ति थी। वह मेरी ओर गौर से देख रहा था।

कौन हैं ? और कहाँ से आये हैं आप ? मृदु स्वर में प्रश्न किया उस लामा ने।

पत्र का विवरण देकर जब मैंने तवांग मठ के आचार्य के दर्शन की इच्छा प्रकट की, तो वह लामा कुछ देर तक मेरी तरफ देखता रहा और फिर अपने पीछे आने का संकेत किया उसने। उस लामा का नाम था युत्सुंग। वह तवांग मठ का कोई अधिकारी लामा था। उसके आचरण और व्यवहार ने मुझे काफी प्रभावित किया। कुछ ही समय में हम दोनों एक-दूसरे से काफी हिल-मिल गये।

प्रधान आचार्य उस समय विशेष साधना में थे इसलिए एक सप्ताह तक उनका दर्शन सम्भव न था।

उस दिन शरद पूर्णिमा थी। चन्द्रमा की रुपहली चाँदनी तवांग की धरती पर बिखरी हुयी थी। और दिनों से अधिक गहरी निस्तब्धता छायी हुयी थी वातावरण में। चारों ओर साँय-साँय हो रहा था। गालों पर हाथ धरे चुपचाप एक ऊँची जगह पर बैठा किसी गहरी चिन्तन में डूबा हुआ था मैं तभी एक लामा ने आकर कहा कि आचार्यश्री ने मुझे स्मरण किया है। तुरन्त मैं उस लामा के साथ चल पड़ा। वह मुझे जहाँ ले गया वह मठ का शायद आन्तर भाग था। तीन-चार छोटे-छोटे द्वारों को पार करने के बाद मैं जिस स्थान पर पहुँचा वह एक बड़ा-सा कमरा था। जमीन पर लाल रंग की कालीन बिछी हुयी थी और सामने सिंहासननुमा लकड़ी का एक तख्त था जिस पर एक अतिवृद्ध महापुरुष

सौम्य भाव से बैठे हुए थे। उनके चेहरे पर विलक्षण तेज था और नेत्रों में प्रखर ज्योति थी। कहने की आवश्यकता नहीं, वे ही थे आचार्यश्री। कमरे में गहरी शान्ति थी और रहस्य का धुआँ भरा था। एक ओर पीतल के दीपाधार पर मोम का दीप जल रहा था—जिसकी पीली रोशनी कमरे के वातावरण को और अधिक रहस्यमय बना रहा था।

मुझे देखकर आचार्यश्री में कोई खास प्रतिक्रिया नहीं हुई। पूर्ववत गम्भीर बने रहे वह। पत्र पढ़ने के बाद काफी देर तक न जाने क्या सोचते-विचारते रहे। फिर मन्द स्वर में बोले—'मैं कालिकानन्द अवधूत के आग्रह को टाल नहीं सकूँगा। तुम जो चाहते हो उसकी उचित व्यवस्था हो जायेगी। इतना कहकर साथ आये हुए लामा को उन्होंने कुछ संकेत किया जिसे समझ न सका मैं।'

उस रात एक विचित्र अनुभूति हुई मेरी आत्मा को। कह नहीं सकता कैसी थी वह अनुभूति। तन्द्रिल अवस्था थी शायद वह। और उसी अवस्था में मैंने देखा—एक दिव्य महापुरुष को। उनका सारा शरीर स्फटिक की तरह पारदर्शक और हीरे की तरह शुभ्र था। दाढ़ी-मूँछ सफाचट था। मगर सिर की लम्बी जटायें भूमि का स्पर्श कर रही थीं। नेत्र बड़े-बड़े और चमकीले थे। दोनों भौंहों के बीच से सुनहरी किरणें निकल रही थीं। निर्विकार भाव से मेरी ओर देख रहे थे वे। सहसा गहरी-सी बेहोशी छाने लगी मेरे तन-मन पर। और कुछ ही क्षणों के बाद सम्मोहित-सा हो गया मैं और तभी वे महापुरुष मुड़े और जल्दी-जल्दी पैर उठाते हुए आगे बढ़ने लगे। मैं भी सम्मोहित-सा उनके पीछे-पीछे चलने लगा।

काफी देर तक चलने के बाद एक सुनसान घाटी में पहुँच गया मैं। आकाश में सफेद बादलों के टुकड़े इधर-उधर उड़ रहे थे और उनके पीछे पूर्णमासी का चाँद लुक-छिप रहा था। वातावरण साँय-साँय कर रहा था और एक अबूझ-सी खिन्नताभरी उदासी छायी हुई थी वहाँ। धूल-धूसरित अभिशप्त-सी लगी मुझे वह वीरान घाटी। मैं जिस जगह था वहाँ एक पहाड़ी नदी, जिसकी धारा काफी तेज थी। वक्राकार घूमती हुई कुछ दूर जाकर घाटी के आगोश में विलीन हो गयी थी, नदी के किनारे-किनारे ही आगे बढ़ने लगा मैं। काफी दूर निकल जाने के बाद लम्बी-चौड़ी काठी का एक लम्बा व्यक्ति मिला मुझे। उसके शरीर का रंग काला था और सूरत भी भयानक थी। सिर मुँड़ा हुआ था और दाढ़ी-मूँछ भी सफाचट थी। आँखें छोटी-छोटी थीं। मस्तक पर लम्बा-सा काला टीका लगा था और शरीर पर काला लबादा था उसके। वेश-भूषा से वह कापालिक सम्प्रदाय का संन्यासी लग रहा था। उस संन्यासी को देखकर मुझे इस बात का सन्देह हुआ कि कहीं मैं कापालिकों के वैसे ही किसी क्षेत्र में तो नहीं पहुँच गया हूँ!

वह संन्यासी एक बनैले भैंसे को रगड़-रगड़ कर नदी में नहला रहा था। निश्चय ही उसकी बलि देने वाला था वह कापालिक। जब मैं संन्यासी के करीब पहुँचा, तो उसने मेरी ओर इस तरह घूर कर देखा जैसे भैंसे की नहीं, बल्कि मेरी ही बलि देना चाहता हो वह।

निकट पहुँच कर अपना परिचय देते हुये, अपनी यात्रा की सारी कथा सुना दी मैंने उस संन्यासी को और अन्त में अपना उद्देश्य बतलाया उसे।

संन्यासी का नाम था भैरवानन्द कापालिक। नदी के किनारे ही थोड़ी दूर पर उसका मठ था। मेरी सारी बातें सुनने के बाद धीरे से मुस्कराया और फिर कहा, 'आप काशी के कालिकानन्द अवधूत के शिष्य हैं न? और उन्होंने ही आपको भेजा है न?'

सिर हिलाकर 'हाँ' कहा मैंने। मेरा 'हाँ' सुनकर जब भैरवानन्द ने यह बतलाया कि कालिकानन्द अवधूत उसके मठ में रह चुके हैं और रहकर साधना भी कर चुके हैं, तो एकबारगी आश्चर्यचकित और प्रसन्न हो उठा मैं। कभी सोचा न था कि एक महान् तंत्र साधक की साधना-स्थली का भी दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हो जायेगा मुझे। सम्भव है, इसके पीछे अवधूत महाशय की ही प्रेरणा रही हो। कह नहीं सकता। खैर ।

रात आधी ढल चुकी थी। चाँद पहाड़ों की ओट में चला गया था। घाटी की नीरवता और अधिक गहरी हो गयी थी। भैरवानन्द के साथ कुछ देर तक चलने के बाद दूर से ही दीख गया वह कापालिक मठ। ध्वस्त-परिवेश में अतीत की एक स्मृति के रूप में अपने सौ वर्ष के तूफानी काल में हलचल मचा देने वाले कापालिक सम्प्रदाय की कठोर और भयंकर तामसिक साधना का प्रतीक वह मठ हत-श्री और धूल-धूसरित होकर भी बाँकी भंगिमा से सिर ऊँचा किये खड़ा था।

मठ को चारों ओर से घेरे हुये—स्याह आकाश को छूते से—एक दूसरे से गुँथे हुए घने जंगली पेड़। और उन्हीं के बगल में मटमैले पानी के दो-तीन कच्चे पोखरे।

भैरवानन्द ने हाथ के इशारे से कहा, 'यही है मठ।'

सब ओर साँय-साँय हो रहा था। एक विचित्र-सी उदासी और एक अबूझ-सी खिन्नता परिव्याप्त थी उस मठ में। लाल पत्थरों से बने उस ऊँचे शानदार मठ की धूल से अटी सीढ़ियाँ चढ़ते समय लगा—जैसे काफी अरसे से कोई आया न हो वहाँ। टूटे-फूटे दालान और जर्जर बारादरी में प्रवेश करते ही दहशत से पर फड़फड़ाते कबूतर कानों को छूते निकल गये। लगा जैसे चमगादड़ भी चीखा हो, वहीं कहीं।

बचपन में भरपूर चाँदनी से दमकते रातों में घर के पुश्तैनी बाग में आँखमिचौनी खेला करता था। वहाँ जुन्हैया खिली होती, वहाँ खूब उजाला रहता मगर अक्सर पेड़ों की घनी परछाइयों से अँधेरा भी झरा करता। ऐसे में खूब सतर्क होकर विस्फारित आँखों से चारों ओर की टोह लेते हुए एक-एक पग आगे बढ़ाते रहने पर भी पीछे से आकर कोई अपनी हथेलियों से आँखें बन्द कर लेता। कुछ वैसी ही अनुभूति उस म्लान निस्तब्ध मठ में भी हुई मुझे। धूल से भरे पड़े पत्नार झाँकते टूटे-फूटे बुर्जों पर घूमते हुये हर क्षण यही लगता रहा कि रुँधी हुयी हवा की उस अवशता के बीच किमखाब का खूब कीमती काला लबादा पहने, पैरों में चन्दन की लकड़ी का बना खड़ाऊँ डाले लकदक करते कापालिक संन्यासी के परिवेश में कोई धीमे-धीमे चलता हुआ—अतीत के जीर्ण-शीर्ण काले परदे को उघार देगा और सहज ही में उस डरावने अँधियारे वातावरण में मन-प्राणों को स्तम्भित कर देगा। किन्तु कोई नहीं आया। अँधेरे-उजाले में डूबे हुये दालानों, बरामदों, गलियारों और बारादरियों को एक के बाद एक पार करते हुए भैरवानन्द के साथ मैं एक काफी लम्बे-चौड़े आँगन में पहुँचा। और पहुँचते ही भय और आतंक के मिले-जुले भाव से भर गया मेरा मन।

आँगन के ठीक बीच में पत्थर का एक बड़ा-सा खूँटा गड़ा हुआ था। निश्चय ही वह बलि के लिये था, जिस पर कभी का लगा खून सूख कर काले धब्बे में बदल गया था। आँगन की दूसरी तरफ और खूँटे के ठीक सामने एक मन्दिर था—जिसका जीर्ण-शीर्ण दरवाजा बन्द था उस समय। मन्दिर में पंचमुण्डी आयन पर कंकाल काली की अति प्राचीन प्रतिमा स्थापित है। प्रतिमा पूर्ण सिद्ध है। भैरवानन्द ने बतलाया कि कभी तंत्र नरबलि भी दी जाती थी, मगर अब नहीं। अब तो केवल अमावस्या को पशुबलि ही होती है। अर्धरात्रि के समय यानी महानिशा में।

क्यों, नरबलि क्यों बन्द हो गयी? सहज भाव से पूछा मैंने। मेरा प्रश्न सुनकर संन्यासी का चेहरा एकाएक गम्भीर हो उठा और साथ ही विवर्ण भी। मगर फिर अपने आपको सँभालकर हौले से बोला, 'क्या करेंगे, यह जानकर आप?' इतना कहकर मन्दिर का कपाट खोलने के लिए आगे बढ़ गया वह।

संन्यासी टाल रहा है—यह समझ गया मैं और यह भी समझ गया कि नरबलि बन्द होने के पीछे अवश्य कोई न कोई गहरा रहस्य है—वर्ना मेरा प्रश्न सुनकर उसका चेहरा कदापि गम्भीर और विवर्ण न होता।

आँगन में हल्का-सा अँधेरा फैला हुआ था। बलि के खूँटे के पास चुपचाप खड़ा मैं सोच रहा था—'कितने लोगों की बलि दी गयी होगी यहाँ साधना के नाम पर? कितने युवकों के गर्म खून से भींगा होगा यह आँगन? और कितने लोगों का आर्तनाद गूँजा होगा इस रहस्यमय वातावरण में?—यही सब सोचते-सोचते मेरी दृष्टि एकाएक घूम गयी मन्दिर की ओर। भीतर चौमुखा दीप जल रहा था—जिसके मन्द आलोक में अट्टहास करती हुयी प्रतीत हुयी मुझे कंकाल काली की वह पाषाण-प्रतिमा। शवारूढ़ चतुर्भुजा और कापालिक सम्प्रदाय की वह अधिष्ठात्री देवी बिल्कुल सजीव लगी मुझे उस समय। दृष्टि स्थिर हो गयी मेरी। अपलक निहारता रहा काफी देर तक मैं उस भव्य मूर्ति की ओर। सहसा संन्यासी का स्वर कानों में पड़ा। वह कह रहा था—प्रतिमा में जिस साधक ने प्राण-प्रतिष्ठा की थी उसने स्वयं अपने हाथों से अपनी बलि देकर सर्वप्रथम प्राणोत्सर्ग किया था यहाँ। उसके ही शोणित से प्लावित हुयी थी प्रतिमा प्रथम बार। अचरज हुआ मुझे। सहज ही जिज्ञासु हो उठा मेरा मन। पूछ ही बैठा मैं—'कौन था वह महासाधक?'

'भद्रेश्वर कापालिक।'

नाम सुनकर एकबारगी चौंक पड़ा मैं। दो सौ वर्ष पूर्व बहुत बड़े योग तंत्र साधक हो चुके थे भद्रेश्वर कापालिक। वे कालजयी और आकाशचारी भी थे—ऐसा सुन रखा था मैंने। तंत्रशास्त्र पर अध्ययन करते समय सन् १९४४ में उन्हीं की लिखी हुयी एक पुस्तक मेरे हाथ लग गयी थी अचानक। तंत्र से संबंधित अत्यन्त कठिन थी वह पुस्तक। कितना विचित्र संयोग था—जिस महापुरुष के अलौकिक चमत्कारों और सिद्धियों के संबंध में बहुत कुछ सुन रखा था मैंने और स्वयं जिसकी पुस्तक पढ़ी थी उसके रहस्यमय आश्रम में—अनजाने में आश्रय मिल जायेगा—और मिल जायेगा उनके द्वारा स्थापित काली की दुर्लभ प्रतिमा का दुर्लभ दर्शन—कभी यह सपने में भी नहीं सोचा था।

आपके अलावा और कौन-कौन रहता है इस मठ में? सिर घुमाकर संन्यासी से पूछा मैंने।

मैं रहता हूँ—मेरे सिवा और कोई नहीं।

उत्तर सुनकर आश्चर्य हुआ मुझे और कहा, 'इतने बड़े विशाल मठ में केवल आप ही ।

मेरा वाक्य पूरा नहीं हुआ—बीच ही में बोल पड़ा वह संन्यासी—'कभी-कदा अमावस्या को एक साधिका आ जाती है यहाँ। उच्चकोटि की साधिका है वह। भद्रेश्वर कापालिक की शिष्य परम्परा में ही समझिये आप उन्हें।'

अच्छा! क्या नाम है उनका?

शिवामयी। उसने उत्तर दिया।

कहाँ रहती है शिवामयी? उत्सुकता से पूछा मैंने।

किसी अन्य आश्रम में। नाम नहीं जानता आश्रम का और यह भी नहीं जानता कि वह आश्रम है भी कहाँ।' उसने कहा।

क्या शिवामयी से भेंट हो सकती है? मैंने पूछा।

कह नहीं सकता! हो भी सकता है और नहीं भी।

संन्यासी का इस प्रकार रूखा उत्तर सुनकर कुछ निराशा-सी हुयी मुझे। फिर लगातार तीन-चार दिनों तक शिवामयी के संबंध में ही न जाने क्या-क्या सोचता-विचारता रहा मैं। अन्त में यह विचार आया कि शायद अमावस्या को भेंट हो ही जाय। उनके लिये क्यों मैं इतना उत्सुक हो उठा था यह स्वयं मैं समझ नहीं पा रहा था। खैर ।

उस लम्बे-चौड़े विशाल मठ में भैरवानन्द कापालिक प्रेत की तरह इधर-उधर चक्कर लगाया करता था। मेरी उससे बहुत कम बातें होती थीं, और होती भी कभी थीं तो बिल्कुल मामूली-सी। उसका व्यक्तित्व मुझे रहस्यमय लगा। इसके अलावा एक बात और मेरे लिए रहस्यमयी थी। वह यह कि मठ के जिस कमरे में मैं रहता था उसमें मुझे सभी प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध थीं। किसी चीज का अभाव मुझे वहाँ नहीं था।

एक दिन मन्दिर के सामने आँगन में टहल रहा था मैं। साँझ का समय था। आँगन में हल्का-सा धुँधलका था। टहलते हुए अचानक मेरी दृष्टि घूम गयी—लेकिन ऐसा क्यों हुआ—यह मैं नहीं बतला सकता—हाँ, जिधर घूमी थी उधर एक छाया को मन्दिर की ओर जाती हुयी अवश्य देखा मैंने। छाया अस्पष्ट थी लेकिन पहचान गया मैं। वह निश्चय ही किसी नारी की छाया थी। जिसके शरीर पर पारदर्शक सफेद रंग की साड़ी थी जो हवा में लहरा रही थी। कुछ विचित्र-सा लगा। कुछ भय की भी अनुभूति हुयी मुझे। फिर सोचा, शायद दृष्टिभ्रम हो रहा हो, मगर वह भ्रम नहीं था। वास्तविकता थी, दो घण्टे बाद मुझे वही नारी छाया अपने कमरे में दिखलायी दी। इस बार पहले से अधिक स्पष्ट थी वह छाया। बाद में धीरे-धीरे उसका रूप पूरी तरह स्पष्ट हो गया मेरे सामने।

वह एक युवती थी। आयु यही रही होगी बीस-पच्चीस के लगभग। कच्चे दूध से महावर धुला हो—ऐसा शरीर का रंग। घने-काले बाल, पतली नाक, नुकीली ठुड्डी, गुलाब की पंखुड़ियों-सी आँखें। दरवाजे के पास चुपचाप खड़ी—अपनी कल्पनामयी स्निग्ध आँखों से अपलक मेरी ओर निहार रही थी वह युवती।

मैं भी न जाने कब तक स्वप्नवत निहारता रहा उस रहस्यमयी युवती की ओर, बतला नहीं सकता। मगर एकाएक टूटे हुए धनुष की तरह तड़ाक से बिस्तर पर सीधा होकर बैठ गया मैं। क्षण भर में स्वप्न का कुहरा जैसे हट गया मेरे सामने से। लगभग चीखकर बोला—'कौन हो तुम ?'

युवती बोली नहीं कुछ। केवल फिस्-फिस् कर हँसती रही काफी देर तक। फिर अचानक गायब हो गयी वह।

पूरी रात सो न सका मैं। करवटें बदलता रहा और बराबर सोचता रहा उसी अज्ञात रहस्यमय युवती के बारे में। कौन थी वह ? कहाँ से आयी थी वह ? और क्यों आयी थी मेरे पास ? क्या काम था उसका मुझसे ? हो सकता है वह फिर आये। लेकिन वह नहीं आयी फिर उस रात।

(३)

उस सुनसान और उदास घाटी के पार पहाड़ों की ओट में सूरज छिप चुका था, लेकिन उसकी सुनहरी किरणों की रश्मियाँ अभी भी पहाड़ की उत्तुंग चोटियों और वृक्षों की फुनगियों पर बिखरी हुई थीं। जंगली पक्षियों का झुण्ड कलरव करता हुआ पेड़ों के झुरमुटों में समा जाने की कोशिश कर रहा था। अमावस्या की स्याह कालिमा अभी धरती पर नहीं फैली थी। मगर पश्चिम का आकाश जहाँ रक्ताभ था वहीं पूरब के आकाश का बहुत सारा भाग स्याह हो चुका था और उस रहस्यमय मठ की टूटी-फूटी बुर्जी पर बैठा हुआ सोच रहा था—क्या वास्तव में मिथ्या है, भ्रम है, और है असत्य यह संसार ? क्या सब कुछ सपना-सपना सा ही है, कि और कुछ भी है ? बार-बार आत्मा क्यों संसार में जन्म लेती है ? जीवन का लक्ष्य क्या है ? मृत्यु के बाद क्या जीवन है ? यदि है, तो कैसा है ? कोई शाश्वत सत्य भी है ? यदि है तो उसे प्राप्त करने का मार्ग कौन-सा है ?

सदियों से, हम यह सोचते-विचारते चले आ रहे हैं कि जिस संसार के मायाजाल में उलझी हुई है हमारी आत्मा, जिस संसार के सुख-दुःख, सन्ताप के बंधनों में बँधी हुई है हमारी आत्मा और जिस संसार के गहनतम अंधकार में डूब गयी है हमारी आत्मा उस संसार के बंधन से कैसे मिलेगी हमें मुक्ति ?

आत्मा के अन्तराल से उठने वाले ये तमाम प्रश्न अति विकट हैं और उन्हीं का उत्तर पाने के लिए हमारी आत्मा बार-बार संसार में आती है। मगर जब आती है तब उलझ जाती है मायाजाल के तमाम बन्धनों में।

आखिर संसार है क्या ? और क्या है उसका स्वरूप ? जिसमें हम फँस गये हैं और जिसके अंधकार में डूब गये हैं। आखिर वह है क्या ?

जब हम जन्म लेते हैं तब हमारे मन में, हमारी चेतना में और हमारी आत्मा में सांसारिक वासनाओं की ग्रन्थियाँ पड़ जाया करती हैं जो सदियों से मजबूत होती चली आ रही हैं। जिनके संस्कार भी सदियों से प्रगाढ़ व प्रगाढ़तम होते चले आ रहे हैं।

परमात्मा में किसी भी प्रकार की ग्रन्थियाँ नहीं हैं—इसलिए वह निर्ग्रन्थि है। आत्मा में वासना की तमाम ग्रन्थियाँ हैं—इसलिए सग्रन्थ है। यदि किसी प्रकार आत्मा की तमाम ग्रन्थियाँ खुल जायें और तमाम संस्कार नष्ट हो जायें तो हम उसी समय से और उसी क्षण से परमात्मा में एकता का अनुभव करने लग जायेंगे। ऐसी एकात्म अवस्था में दोनों का स्वभाव एक जैसा होगा। फिर आत्मा और परमात्मा में किसी भी प्रकार का भेद न रह जायेगा। इसी को अद्वैत भाव कहते हैं। हमारी आत्मा का एकमात्र लक्ष्य है इसी अद्वैत भाव की प्राप्ति, जिसके लिए वह बार-बार शरीर धारण करती है।

सांस्कारिक वासनाओं की ग्रन्थियाँ कैसे पड़ जाती हैं हमारे मन पर, हमारी चेतना और आत्मा पर? और कैसे उनके संस्कार भी अमिट हो जाते हैं? इस पर विचार करना आवश्यक है। यदि विचार पूर्वक देखा जाये तो इसका कारण एकमात्र मन है। आत्मा से किसी भी प्रकार की सांसारिक वस्तु और किसी भी प्रकार की सांसारिक वासना से कोई संबंध नहीं है। जो कुछ भी है वह सब मन के द्वारा आत्मा पर आरोपित होता है। मन फिल्म के समान है और जबकि आत्मा है दर्पण के तुल्य। फिल्म में और एक दर्पण में जमीन-आसमान का अन्तर है। मगर फिर भी कुछ सीमा तक समानता है, दोनों पर प्रतिबिम्ब पड़ते हैं—लेकिन फिल्म, प्रतिबिम्ब को पकड़ लेता है जबकि दर्पण किसी भी अवस्था में किसी भी प्रतिबिम्ब को नहीं पकड़ता और यही कारण है कि फिल्म का प्रतिबिम्ब अमिट हो जाता है और उसके स्थान पर फिर दूसरा प्रतिबिम्ब नहीं पड़ सकता। लेकिन दर्पण के संबंध में ऐसी बात नहीं है। वह प्रतिबिम्ब को पकड़ता ही नहीं इसलिये उस पर पड़ा प्रतिबिम्ब स्थायी नहीं होता। यही स्थिति आत्मा की है। मगर मन ऐसा नहीं है। वह फिल्म की भाँति है। उसके सामने जो कुछ आता है, उसे वह पकड़ लेता है, चाहे अच्छा हो या बुरा। जो कुछ पकड़ता है वह सब स्थायी होता है। पूरे जीवन में हमारा मन जाने-अनजाने में कितना कुछ पकड़ लेता है—इसका हमें कोई ज्ञान नहीं। हम जिसे जानते-समझते हैं उसे तो मन पकड़ता ही है लेकिन जिसे हम नहीं जानते-समझते और जो हमारे अज्ञान में है उसे भी मन पकड़ लेता है। बड़े आश्चर्य की बात है यह।

हमारे मन की दो अवस्थायें हैं—पहली है बहिरंग अवस्था और दूसरी है अन्तरंग अवस्था। इन्हीं दोनों अवस्थाओं को मनोविज्ञान चेतन मन और अर्धचेतन मन कहता है। चेतन मन उस सारी बातों को और उन सारी घटनाओं को पकड़ता है जिसका हमको ज्ञान और अनुभव है। कुछ बातें और कुछ घटनाएँ ऐसी हैं—जो होती तो हैं हमारे आसपास मगर उनकी जानकारी हमारे चेतन मन को नहीं होती—लेकिन अनजाने में अर्धचेतन मन उन बातों को और उन घटनाओं को पकड़ लेता है। वास्तव में हमारा दोनों प्रकार का मन हर पल जाने-अनजाने में सभी बातों को और सभी घटनाओं को पकड़ता जा रहा है। उनको एकत्र करता जा रहा है। इतना ही नहीं, उनके तमाम संस्कारों को—अपनी उस

तीसरी अवस्था में अनन्त काल तक के लिए सुरक्षित भी रखता जा रहा है—जिसे हम अचेतन मन कहते हैं। इस प्रकार मन की कुल तीन अवस्थाएँ हैं—चेतन, अर्धचेतन और अचेतन मन की अवस्था। यदि हमारे चेतन मन की अवस्था को सम्मोहित किया जाय तो हम सज्ञानता में घटी अपने जीवन की सारी घटनाओं का सिलसिलेवार वर्णन कर दूँगा और इतना भी बतला दूँगा कि कब-कौन सी घटना घटी थी जीवन में।

इसी प्रकार यदि हमारे अर्धचेतन मन की अवस्था को सम्मोहित किया जाय तो हम उन तमाम घटनाओं का भी सिलसिलेवार वर्णन कर देंगे—जो हमारी अज्ञानता में हमारे आस-पास घटित हुई हैं।

सम्मोहन द्वारा मन की तीसरी अवस्था में भी जाया जा सकता है। यदि हमारे अचेतन मन की अवस्था को सम्मोहित किया जाय, तो हम अचेतन मन में पूर्व सुरक्षित संस्कारों के आधार पर अपने पिछले कई जन्मों की घटनाओं का आँखों देखा वर्णन कर देंगे, कहने की आवश्यकता नहीं। योगीगण इसी प्रकार अचेतन मन के अन्तराल में प्रवेश कर अपने पिछले कई जन्मों का पता लगा लिया करते हैं। खैर।

सम्मोहन, ध्यान योग का ही एक विशिष्ट अंग है—मगर योग शास्त्र, 'सम्मोहन' के स्थान पर चित्त एकाग्रता शब्द का प्रयोग करता है। उसका कहना है कि मन और चित्त एक ही वस्तु के दो रूप हैं। किसी भी प्रकार मन को एकाग्र नहीं किया जा सकता। मगर हाँ, मन के सहयोग से चित्त और उसकी तमाम वृत्तियों को एकाग्र और निरोधित अवश्य किया जा सकता है। इसी को ध्यान कहते हैं। योग की सारी साधनाओं के मूल में एक भाग ध्यान ही है। स्थूल से सूक्ष्म जगत् में यानी बहिर्जगत् से अन्तर्जगत् में जाने के लिए एकमात्र साधन ध्यान ही है।

मन की अवस्थाओं की तरह ध्यान की भी तीन अवस्थायें हैं। ध्यान की पहली अवस्था में चेतन मन, दूसरी अवस्था में अर्धचेतन मन और तीसरी अवस्था में अचेतन मन प्रभावित, स्थिर अथवा सम्मोहित होता है। इसे मन की एकाग्रता भी कह सकते हैं। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि इन तीनों अवस्थाओं से हट कर ध्यान की एक और अवस्था विशेष है—जिसे समाधि कहते हैं।

परम शान्ति और परम आनन्द का उपलब्ध होना ही समाधि का एकमात्र लक्ष्य है और इस परम लक्ष्य की सिद्धि एकमात्र होती है ध्यान योग से। खैर।

योग के मनोवैज्ञानिक पक्ष के अनुसार जब हम मृत्यु के समय शरीर का त्याग करते हैं उस समय चेतन और अर्धचेतन मन, अचेतन मन के अस्तित्व में विलीन हो जाता है। शरीर का त्याग कर आत्मा जब अपनी अन्तहीन यात्रा पर निकलती है उस अवस्था में उसके साथ केवल अचेतन मन ही रहता है। आत्मा के साथ अचेतन मन का अस्तित्व हर समय, हर काल में और हर अवस्था में बना रहता है। दोनों के इसी नित्य संबंध के कारण आत्मा को जीवात्मा की संज्ञा दी गयी है। आत्मा के साथ अचेतन मन का अस्तित्व न हो तो आत्मा न कहीं जन्म ले सकती है न नया शरीर धारण कर सकती है और न तो नया

जीवन ही प्रारम्भ कर सकती है। जन्म, जीवन और मृत्यु इन तीनों के पीछे एकमात्र कारण अचेतन मन ही है। मृत्यु के बाद आत्मा अचेतन मन में एकत्र वासना संस्कारों के आधार पर यात्रा करती है। उसी के अनुसार वह नया जन्म ग्रहण करती है और उसी के अनुसार नया जीवन भी प्रारम्भ करती है वह।

गर्भ में जब तक पूरी तरह शरीर की रचना नहीं हो जाती और उसमें जब तक प्राणों का संचार पूरी तरह नहीं हो जाता तब तक जीवात्मा इन्तजार करती रहती है गर्भस्थ शरीर में प्रवेश करने के लिए। उसके गर्भ में प्रवेश करते ही अर्धचेतन मन अपना काम करने लग जाता है।

यदि मन को पदार्थ मान कर चलें, तो उसमें लगभग सात करोड़ सेल हैं और प्रत्येक सेल में करोड़ों सूचनाओं को एकत्र करने की क्षमता मन में है। इस दृष्टि से मन की तुलना से हमारा जीवन बहुत ही छोटा है। इस भ्रम में कदापि नहीं रहना चाहिए कि मृत्यु उन सेलों में एकत्र हुई सूचनाओं को नष्ट कर देती है। नहीं, कभी नहीं। जब से हमारी आत्मा संसार के आवागमन के चक्र में फँसी है तब से हमारा मन हर जन्म की बातों को और हर जन्म की घटनाओं को एकत्र करता जा रहा है अपने आप में और जिनके संस्कारों का भार लिये हमारी आत्मा बार-बार संसार में आती है और बार-बार शरीर छोड़ती है। यदि विचार किया जाय तो हमारे मन के विशाल भण्डार में पिछले हजारों-लाखों जन्मों की सूचनाएँ भरी पड़ी हैं और इसी प्रकार हमारी आत्मा के सिर पर हजारों-लाखों जन्मों के संस्कारों का बहुत बड़ा बोझ लदा हुआ है। भविष्य में न जाने कितना लदेगा फिर।

हमको ब्रह्म बनना नहीं है। हमको सत्य प्राप्त करना नहीं है। हम स्वयं ब्रह्म हैं। इस हम स्वयं सत्य को उपलब्ध है। बस थोड़े से विचार और थोड़े अभ्यास की आवश्यकता है।

हम मान कर चलें कि भीतर आत्मा है। आत्मा के ऊपर मन है और मन के बाहर संसार है। संसार बराबर बदल रहा है। संसार की सारी वस्तुएँ हर पल बदल रही हैं। बराबर उसमें परिवर्तन हो रहा है। मन में किसी वस्तु का परिवर्तन नहीं हो रहा है। उसमें जो वस्तु जहाँ है—वहीं स्थिर है—वहीं अमिट है। मन के पीछे आत्मा है। आत्मा कोई वस्तु है ही नहीं—इसलिए उसमें परिवर्तन होने का प्रश्न ही नहीं उठता। आत्मा में कुछ है तो केवल आरोपण।

संसार में और जीवन में जो बातें हो रही हैं और जो घटनाएँ घट रही हैं मन में उसका स्वरूप और आकार बन रहा है। जिसकी छाया भी स्थायी रूप से आत्मा पर पड़ रहा है। इसी के फलस्वरूप भ्रम होता है कि मन और आत्मा एक ही वस्तु है। दोनों में तादात्म्य हैं। दोनों अभिन्न हैं। दोनों में किसी भी प्रकार की भिन्नता न दिखलाई देने के कारण यह भ्रम हो जाता है कि जो मन है वही आत्मा है और जो आत्मा है वही मन है। क्योंकि जो मन में है उसकी छाया आत्मा में स्पष्ट दिखलायी देती है। और उस छाया को हम वास्तविक मान लेते हैं। यही माया है। यदि उस छाया को छाया मान लें वास्तविक नहीं, तो वह माया अपने आप दूर हो जाएगी

हमसे। हमें स्वयं मुक्त कर देगी वह। उससे मुक्त होने के लिए।

हर बार हमारी आत्मा शरीर धारण करती है और हर बार शरीर छूट जाता है। मगर मन, नहीं छूटता। छूटता है केवल शरीर। मन तो आत्मा के साथ एक जन्म से दूसरे जन्म में चला जाता है। शरीर के साथ रुकता नहीं। शरीर के साथ मृत भी नहीं होता। मन के अस्तित्व को नष्ट करने की शक्ति किसी में नहीं है। यदि किसी में शक्ति है मन को मिटाने की तो वह है केवल समाधि में। समाधि की स्थिति में आत्मा का मात्र केवल अस्तित्व रहता है। मन की सत्ता नहीं रहती।

समाधि दो प्रकार की है—सविकल्प समाधि और निर्विकल्प समाधि। इन प्रत्येक समाधि के बारह-बारह भेद हैं। इस प्रकार से चौबीस समाधियाँ हैं। सविकल्प समाधि में आत्मा और जगत्—आमने-सामने आ जाते हैं। निर्विकल्प समाधि में आत्मा के सामने से जगत् भी हट जाता है केवल आत्मा का अस्तित्व बना रहता है। इसलिए योगीजन समाधि को महामृत्यु कहते हैं। इसलिए कि मृत्यु में केवल शरीर ही मरता है मन नहीं। मगर महामृत्यु समाधि में दोनों ही मर जाते हैं—शरीर भी और मन भी। केवल बच जाती है—आत्मा, क्योंकि आत्मा अमर है। किसी काल में किसी अवस्था में उसके अस्तित्व का नाश नहीं।

आत्मा के साथ मन का अस्तित्व बराबर बना रहता है। आत्मा जहाँ जाती है—मन भी उसके साथ वहीं जाता है। मन का प्रतिविम्ब बराबर बना रहता है आत्मा पर। जिसका परिणाम यह होता है कि आत्मा यह समझने लग जाती है कि मन में जो विद्यमान है वही मैं हूँ। आत्मा की यही समझ और यही भाव और यही धारणा—उसे बंधन में बाँध देती है जगत् के और माया के। और तब वह हो जाती है जीवात्मा यानी जीव। यही जीव भाव हमारा जगत् है—हमारा संसार है—हमारा बंधन है और है हमारी ग्रन्थि। इन सबसे मुक्त होने के लिए एकमात्र उपाय यही है कि हम अपने और आत्मा के बीच से मन को हटा दें। मगर यह सम्भव कैसे है, कैसे हटाया जा सकता है मन को। इसके लिये एक ही रास्ता है और वह रास्ता है ध्यान। ध्यान के अभ्यास से मन धीरे-धीरे बीच में से हटने लग जाता है और अन्त में एक ऐसा क्षण आता है जब हमें बिना मन के जगत् की झलक मिल जाती है। जिसके फलस्वरूप हमारे सामने यह स्पष्ट हो जाता है कि आत्मा के भीतर कुछ भी नहीं, वह साफ है, स्वच्छ है, और है निर्मल।

इसी को कहते हैं आत्मदर्शन और आत्मसाक्षात्कार। इससे हमें परम वैराग्य की उपलब्धि होती है और परम वैराग्य की गहरी अवस्था में हमें बार-बार आत्मा के निर्मल स्वभाव का अनुभव होने लग जाता है। वास्तव में आत्मा के निर्मल स्वभाव का जो अनुभव है वही परम ब्रह्म है। आत्मदर्शन और आत्मसाक्षात्कार के बाद है परम ब्रह्मदर्शन और परम ब्रह्मसाक्षात्कार।

मन के अस्तित्व से जब ब्रह्म का योगायोग होता है तो वह संसार हो जाता है। मन की सत्ता से जब ब्रह्म का योगायोग समाप्त होता है तो वह परम ब्रह्म हो जाता है। मन के साथ जब आत्मा का सम्बन्ध स्थापित होता है, तो वह आत्मा के लिए शरीर अनिवार्य हो

जाता है। इसलिए कि बिना शरीर के मन की वासनाओं की पूर्ति और तृप्ति नहीं हो सकती। उसके लिए शरीर आवश्यक है। कभी किसी क्षण भी मन वासना और कामना से रहित अथवा शून्य नहीं हो सकता। हमेशा भरा रहता है वासनाओं से वह। उसके लिए मोक्ष 'निर्वाण' मुक्ति आदि भी एक प्रकार की वासना और कामना है। इसलिए आत्मा को भी बार-बार शरीर धारण करना अनिवार्य और आवश्यक हो जाता है।

शरीर, मन और आत्मा के सन्दर्भ में प्रेतात्माओं पर भी विचार करना यहाँ आवश्यक है। जीवात्मा का ही एक रूप प्रेतात्मा है। क्यों होते हैं लोग प्रेत? प्रेत योनि किसे मिलती है? क्यों मिलती है? प्रेतात्मा किसे कहते हैं? आदि बातें अति गम्भीर हैं।

मृत्यु बहुत बड़ी घटना है और वह घटना एक प्रकार की बेहोशी की स्थिति में घटती है जिसे मृत्यु की मूर्च्छा कहते हैं। मृत्यु की उसी मृर्च्छा की स्थिति में चेतन और अर्धचेतन दोनों मन अपनी अचेतनावस्था में विलीन हो जाते हैं और उसके बाद आत्मा अचेतन मन के साथ शरीर छोड़कर अनन्त यात्रा पर निकल पड़ती है।

मृत्यु की मूर्च्छा के पहले जिस किसी व्यक्ति के चेतन मन में वासना का वेग प्रबल रहता है तो उसके फलस्वरूप मरते समय उसका चेतन मन अचेतन मन के अस्तित्व में विलीन नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में मृत्यु के बाद वह मन उस व्यक्ति की आत्मा के साथ चला जाता है और ऐसी ही आत्मा प्रेतात्मा कहलाती है और ऐसे ही व्यक्ति को प्रेत योनि मिलती है।

प्रेत उस आत्मा का नाम है जिसका शरीर तो उससे अलग हो गया है मगर मन अलग नहीं हुआ है। मन के लिए शरीर अनिवार्य है। क्योंकि बिना शरीर के मन की वासनाओं की पूर्ति सम्भव नहीं है। मन की वासनायें शरीर के द्वारा ही तृप्त हो सकती हैं। प्रेतात्मा के पास मन तो है, लेकिन शरीर नहीं है। मन है भी, तो उसके पास इन्द्रियाँ नहीं हैं। मन इन्द्रियों के माध्यम से ही अपनी वासनाओं की पूर्ति करता है और वे इन्द्रियाँ शरीर में ही उपलब्ध हैं।

प्रेतात्माओं के सामने दो मुख्य परिस्थितियाँ हैं। मन है लेकिन शरीर नहीं है—यह पहली परिस्थिति है। मन है लेकिन उसे इन्द्रियाँ उपलब्ध नहीं हैं—यह दूसरी स्थिति है। इन दोनों परिस्थितियों में प्रेत के लिए शरीर अनिवार्य हो जाता है। शरीर के प्रभाव में उसकी मानसिक स्थिति पागलों जैसी हो जाती है और वह शरीर के लिए भटकता रहता है। एक ओर वासना का प्रबल वेग और दूसरी ओर शरीर का प्रभाव भयंकर कष्टप्रद स्थिति होती है प्रेतात्माओं के लिए।

प्रेत के पास मन है और मन में वासनाओं का प्रबल वेग भी है, लेकिन साधन नहीं है। ऐसी विषम और विकट स्थिति में अपनी वासनाओं के अनुकूल जिस किसी जीवित व्यक्ति का शरीर देखता है उसी में प्रवेश कर जाता है वह। इसी को 'प्रेत बाधा' कहते हैं। जिस व्यक्ति के शरीर में प्रेत प्रवेश करता है—उसके शरीर पर, उसके मन पर और उसकी तमाम इन्द्रियों पर प्रेत का पूरा अधिकार हो जाता है फिर। ऐसी स्थिति में प्रेत बाधित व्यक्ति जो कुछ शारीरिक और मानसिक कार्य करता है—उन पर प्रेत का अधिकार होता है। उनका सुख और आनन्द प्रेत उठाता है।

मरणोपरान्त जिस आत्मा के पास अपना चेतन मन नहीं है उसे सूक्ष्म आत्मा कहते हैं। मृतात्मा जब सूक्ष्म शरीर धारण करती है तो उन्हें सूक्ष्मात्मा कहते हैं। सूक्ष्म शरीर प्राणों से निर्मित होता है—जो मरने के दस दिन के भीतर बनकर तैयार होता है। सूक्ष्मात्मायें ११, ४५ या ३६५ दिन के भीतर अपने लिए शरीर खोज लिया करती हैं। कभी-कभी कोई सूक्ष्मात्मा एक शरीर के छूटने के तुरन्त बाद ही अपने लिए नया शरीर प्राप्त कर लिया करती है।

प्रेत का मतलब केवल इतना ही है कि जिसे अभी तक शरीर उपलब्ध नहीं हुआ है। आत्मा के लिए हर स्थिति में शरीर अनिवार्य है। बिना शरीर के वह रह ही नहीं सकती—भले ही वह शरीर स्थूल हो, सूक्ष्म हो, या हो और कोई। आत्मा जब भौतिक शरीर धारण करती है, तो उसे मनुष्यात्मा, जब वासनात्मक शरीर धारण करती है तो उसे प्रेतात्मा, जब प्राणमय शरीर धारण करती है तो सूक्ष्मात्मा और जब मनोमय शरीर धारण करती है तो देवात्मा कहते हैं। ये सभी प्रकार की आत्माओं का केन्द्र हमारी यह धरती है। इन सब में भौतिक शरीर अति मूल्यवान और दुर्लभ है।

शरीर के अभाव में इस प्रकार भटकने वाली उत्कृष्ट आत्माओं को देव और निकृष्ट आत्माओं को राक्षस कहा जाता है। पुराणों के सुर-असुर भी यही हैं। देव-दानव भी यही हैं। दर्शनशास्त्र की सद्-असद् वृत्तियाँ भी यही हैं। भारतीय संस्कृति में इन दोनों प्रकार की आत्माओं को इस प्रकार विभिन्न रूप दिये गये हैं। तांत्रिक संस्कृति में विभिन्न क्रियाओं, उपासनाओं और साधनाओं के बल पर लौकिक और पारलौकिक कार्यों की सिद्धि के लिए इन दोनों प्रकार की आत्माओं की शक्तियों की सहायता लेने के अनेक विधि-विधान मिलते हैं।

सद् आत्माओं की शक्तियाँ पारलौकिक कार्यों में और असद् आत्माओं की शक्तियाँ लौकिक कार्यों में सहयोगी सिद्ध होती हैं। जब हमारी आत्मा पर असद् आत्माओं का प्रभाव पड़ता है, तो असद् वृत्तियों का जागरण होता है और तब हम बुरे कार्य करते हैं—जिसमें उस असद् आत्मा को तृप्ति और शान्ति मिलती है। इसी प्रकार जब हमारी आत्मा पर सद् आत्माओं का प्रभाव पड़ता है, तो हमारे में सद् वृत्तियाँ जागृत होती हैं और तब हम अच्छे कार्य करते हैं—जिससे उन सद् आत्माओं को तृप्ति और शान्ति मिलती है।

परामनोविज्ञान का यह निर्विवाद सिद्धान्त है कि जब हम अच्छा काम करते हैं, तो हमारी मानसिक चेतना का संबंध अच्छी आत्माओं से जुट जाता है और जब हम कोई बुरा काम करते हैं, तो हमारी मानसिक चेतना का संबंध बुरी आत्माओं से स्थापित हो जाता है।

मन की आवश्यकता शरीर है। मरते ही तत्काल मन को शरीर चाहिए। पुनर्जन्म का यही कारण है। जो पुनर्जन्म को नहीं मानते वे भी दीर्घकाल तक अन्तरिक्ष में भटकने के बाद किसी न किसी रूप में जन्म ले ही लेते हैं। आत्मा मन से जुड़ी हुई है। मन से

शरीर भी जुड़ा हुआ है। मन बीच में है। एक ओर आत्मा है तो दूसरी ओर मन के हैं शरीर। इसलिए साधना भी दो प्रकार की निर्धारित की गयी है। पहली साधना को तपश्चर्या और दूसरी साधना को ज्ञान कहते हैं। मन से आत्मा का और शरीर का संबंध टूटना चाहिए। तभी मुक्ति सम्भव है। जीवन-मृत्यु के चक्र से भी निवृत्ति सम्भव है। शरीर का मन से तोड़ने का जो प्रयास है उसका नाम 'तपश्चर्या' है। मगर तपश्चर्या का मार्ग लम्बा है। तपश्चर्या एक लम्बी यात्रा है। उसका मार्ग कंटकाकीर्ण है। उसकी यात्रा भी कष्टदायिनी है और तपश्चर्या का परिणाम भी संदेहास्पद है।

मन से आत्मा को तोड़ने का जो प्रयास है उसका नाम है—वेदान्त, उसका नाम है—ज्ञान। भारतीय मनीषियों के शब्दों में—शरीर से मन के संबंध को तोड़ने के प्रयास का नाम है 'योग'। और मन से आत्मा के संबंध को तोड़ने का नाम है 'सांख्य'। सम्पूर्ण भारतीय आत्मपरक साधनाओं के मूल में यही दो निष्ठायें हैं—पहली निष्ठा है योग और दूसरी निष्ठा है सांख्य। 'सांख्य' का मौलिक अर्थ केवल इतना ही है कि 'मात्र' ज्ञान पर्याप्त है। सांख्य के मार्ग पर चलने वाले साधक को ज्ञानयोगी कहते हैं। इसी प्रकार 'योग' का मौलिक अर्थ केवल इतना ही है कि बहुत कुछ करना होगा, तभी कुछ उपलब्ध हो सकेगा। योग के मार्ग पर चलने वाले साधक को कर्मयोगी कहते हैं। सांख्य और योग, पहला है ज्ञान और दूसरा है कर्म। ज्ञान और कर्म, पहला है आत्मा का विषय, और दूसरा है शरीर का विषय (विशेष अध्ययन के लिये पढ़ें 'शरीर से मन और मन से आत्मा की ओर')। खैर।

साँझ की स्याही अब रात्रि की प्रगाढ़ कालिमा में बदल चुकी थी। ऐसे विषयों पर सोचने-विचारने और चिन्तन-मनन करने में जब मैं आकण्ठ डूब जाता हूँ तो समय का ज्ञान नहीं रहता है मुझको। उस दिन भी समय का ज्ञान नहीं रहा मुझे। आकाश काला हो चुका था और उसके सीने पर बिखरे नक्षत्रों की आँखें चमकने लगी थीं। घाटी की उदासी भी गहरी हो गयी थी। बुर्जी से उठकर अपने कमरे में आ गया मैं। रोज की तरह एक ओर खाना रखा था—गरम और स्वादिष्ट। एक बड़े से मग में पानी भी रखा था वहाँ, और साथ में गिलास भी।

थाली में गरम और स्वादिष्ट भोजन कौन रख जाता है मेरे कमरे में? खड़ा-खड़ा सोचने लगा मैं। अब तक काफी प्रयास करने के बावजूद भी खाना रखने वाला व्यक्ति दिखलायी नहीं पड़ा था मुझे। कौन है वह व्यक्ति? बार-बार सोचने पर भी अब तक इसका समाधान न हो सका था। बड़ी आश्चर्य की बात थी। तभी कमरे में सरसराहट की आवाज हुई और उसी के साथ सुनाई पड़ा—क्या सोच रहे हैं? भोजन करिये ।

एकबारगी चौंक पड़ा मैं। आवाज किसी नारी कण्ठ से निकली थी। मधुर थी वह आवाज। पलटकर दरवाजे की ओर देखा—एक युवती खड़ी मुस्करा रही थी। कमरे में जल रही लालटेन की पीली रोशनी में उसका सुन्दर-सा मुखड़ा चमक रहा था, चमक रही थी उज्ज्वल बुद्धि दीप्त और खोज करती हुई-सी उसकी दो बड़ी-बड़ी कजरारी आँखें। दूध में महावर धुला हो जैसे, ऐसा ही था उसकी देह का रंग। घने-काले रंग की केश-राशि खुलकर पीठ पर बिखरी हुयी थी।

कुछ क्षण तक अपलक निहारता रहा उस अज्ञात युवती की ओर फिर हाथ बढ़ाकर लालटेन की रोशनी तेज कर दी मैंने और तब उस नवोढ़ा का उज्ज्वल रूप और भी अधिक जगमगा उठा। बड़ी ही बाँकी छवि थी उस युवती की। विस्मय से न जाने कब तक निहारता रहा मैं उस स्वर्गीय छवि की ओर। अचानक कुछ कौंध-सा गया मेरे मस्तिष्क में। पहचानने में भूल नहीं हुई थी। किसी प्रकार का भ्रम नहीं हुआ था मुझको। वह वही युवती थी—जिसकी झलक मुझे आँगन में मिली थी और जो उस रात मेरे कमरे में भी आयी थी। दूसरे ही क्षण आश्चर्य और कुतूहल के मिले-जुले भाव से भर गया मेरा मन। कौन है यह युवती? क्या यही तो खाना नहीं रख जाती है मेरे कमरे में चुपचाप?

शायद मेरे मन के भाव को समझ गयी वह युवती। पहले धीरे-धीरे चलकर वह मेरे करीब आयी और फिर मधुर स्वर में बोली—तुमको आश्चर्य हो रहा है न मुझे देखकर? मैं कौन हूँ? यह भी तुम जानना चाहते हो न? पहले खाना खा लो फिर सब बतलाऊँगी मैं तुमको।

सम्मोहित-सा खाने लगा मैं। पहले से अधिक स्वादिष्ट खाना था उस दिन। भरपेट खाया मैंने। जब खा चुका तो वह युवती मेरे करीब सट कर बैठ गयी। दूसरे ही क्षण उसके कोमल और स्निग्ध स्पर्श से रोम-रोम सिहर उठा मेरा। और उसी के साथ नारी गंध से भर उठा मेरा नाशा पुट। जरा हटना चाहा, मगर हटने नहीं दिया उसने। क्या चाहती थी वह? पाषाणवत देखने लगा मैं उसकी ओर। हजार प्यालियों के नशे से मदहोश उन स्वप्निल आँखों में मैंने क्या देखा, बतला नहीं सकूँगा मैं। एकबारगी उद्वेलित हो उठा मेरा मन। नवपरिणीता वधू-सी वह और अधिक सट कर बैठ गयी। और दूसरे ही क्षण उसकी रसवन्ती देहलता भी लिपट गयी मुझसे। काँपते प्राणों से भरनजर देखा मैंने उसे। कैसी आसुरी छवि थी। उसकी रतनारी आँखों में एक विचित्र-सा सम्मोहन उतर आया था उस समय। रक्तिम होंठ फड़क रहे थे। जवाकुसुम जैसे गालों पर आग की लपटें खेल रही थीं जैसे। फिर एक अजीब सी गंध से न जाने कैसा होने लगा मेरा जी। लगा, जैसे चेतना खो बैठूँगा मैं किसी भी पल। मगर चेतनाशून्य नहीं हुआ मैं। तभी फिस्-फिस् कर सुनाई पड़ा उसका स्वर—मैं कौन हूँ? यह जानना चाहते हो न तुम? मेरा नाम पूजा है। इसी मठ में रहती हूँ मैं। एक लम्बे अरसे से रह रही हूँ मैं इस कापालिक मठ में। मगर इस मठ में रहना मेरे लिए एक अभिशाप के सिवा और कुछ नहीं है। जब से हूँ तब से एक गहरी अशान्ति और एक गहरी अतृप्ति लिये भटक रही है मेरी आत्मा यहाँ। चारों ओर शून्य के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं रह गया है अब मेरे जीवन में।

इतना कह एक लम्बी साँस ली पूजा ने और फिर कहने लगी—परमात्मा और कुछ नहीं है। केवल मात्र एक शक्ति है—उसका अपना शाश्वत नियम है और उसी शाश्वत नियम का नाम धर्म है। धर्म का अर्थ है उस शाश्वत नियम का पालन। तांत्रिक साधना और कुछ नहीं है—उसी परम शक्ति की ही मात्र साधना है। यदि उस साधना में जरा-सी भी त्रुटि हुयी कि सर्वस्व नाश निश्चित है साधक का। समझ लो यही हालत और यही दशा मेरी अपनी हुयी। स्वयं सर्वस्व नाश कर बैठी मैं अपना और तब से जल रही हूँ पश्चाताप

की अग्नि में। और तभी से मैं अतृप्त कामना लिये भटक रही हूँ इस मठ में भी।

एकाएक चुप हो गयी पूजा। फिर अपने आलिंगन में मुझे समेटती हुई गम्भीर स्वर में कहने लगी वह—जब से मैंने तुमको यहाँ देखा है—तभी से मुझे ऐसा लगने लगा है कि अब मेरी सारी पीड़ा, सारी व्यथा, सारी वेदना और सारी चिंता दूर हो जायेगी और दूर हो जायेगा सारा दु:ख-कष्ट भी। उद्धार भी हो जायेगा मेरा। इस समय भी मुझे और मेरी आत्मा को तुम्हारे समीप जो शान्ति मिल रही है—उसे बतला नहीं सकती मैं।

पूजा कोई उच्चकोटि की साधिका है लेकिन किसी कारणवश पथभ्रष्ट हो गयी है—यह समझते देर न लगी मुझे। मगर मेरी समझ में यह नहीं आया कि मुझसे कैसे और किस प्रकार दूर होगी उसकी पीड़ा, व्यथा और वेदना? मुझसे कैसे होगा उसकी अवश आत्मा का उद्धार? और फिर इतने दिनों से मैं इस मठ में हूँ—कहाँ थी अब तक वह? क्यों नहीं मिली मुझसे इसके पहले इस तरह?

उस स्थित में न जाने क्यों, और कैसे अचानक मोह पैदा हो गया पूजा के प्रति मेरे मन में। एक क्षण के लिए ऐसा भी मुझे लगा कि पूजा से मेरा काफी पुराना और घनिष्ठ सम्बन्ध है। मैं जानता हूँ उसे। उसके मादक स्पर्श से और कोमल आलिंगन से भी भली-भाँति पूर्वपरिचित हूँ मैं।

'एक बात पूछूँ?' हौले से बोला मैं। पूछिए, अपने सिर को मेरे सीने से सटाती हुयी पूजा ने कहा। इस सुनसान और निर्जन घाटी में और इस उदास मठ में कितने दिनों से हूँ मैं, मगर तुम मुझे कभी नहीं दिखलायी पड़ी यहाँ। मुझसे इस प्रकार मिलने की भी कोशिश नहीं की तुमने?

तुमको नहीं मालूम! मेरे तौर-तरीके के बीच एक बहुत बड़ी रुकावट थी। उसी रुकावट के कारण अब तक चाह कर भी मैं तुमसे नहीं मिल पायी थी।

'कौन-सी थी वह रुकावट?' पूजा ने जैसे ही कुछ कहना चाहा कि उसी समय यमदूत की तरह से भैरवानन्द प्रकट हो गया वहाँ। चेहरा तमतमाया हुआ था उसका और क्रोध से उसकी आँखें गुड़हल के फूल की तरह लाल हो रही थीं। पूरा शरीर काँप रहा था उसका उस समय। एक बार मेरी ओर उसने अपने आग्नेय दृष्टि से देखा और फिर पूजा की ओर बढ़ा वह।

मैंने देखा—पूजा थरथर काँप रही थी उस समय। भैरवानन्द को आगे बढ़ते देखकर दोनों हाथों से अपना मुँह छिपाकर एकबारगी चीख पड़ी वह। फिर काँपते स्वर में कहने लगी, 'नहीं, नहीं, मेरी बलि मत दो भैरवानन्द मत दो मेरी बलि। प्रायश्चित के लिए मैं सारी यातनायें सहने के लिए तैयार हूँ। मगर मेरी बलि मत दो।'

इसके बाद फफक-फफक कर रोने लगी पूजा।

कुछ समझ में नहीं आया मेरे। इस अप्रत्याशित घटना ने एकबारगी स्तब्ध और हतप्रभ कर दिया था मुझे।

पूजा बराबर रोती रही, चीखती-चिल्लाती रही, लेकिन भैरवानन्द ने ध्यान नहीं दिया उस ओर। लपक कर उसने पूजा का हाथ पकड़ लिया और लगभग घसीटता हुआ

कमरे के बाहर ले गया उसे वह। मुँह बाये जड़वत देखता रहा मैं। मेरी स्थिति कैसी थी उस समय बतला नहीं सकता। न जाने क्या सोचकर मैं भी पूजा के पीछे चल पड़ा। भैरवानन्द पूजा का हाथ थामे जल्दी-जल्दी आँगन की ओर बढ़ रहा था।

आँगन में पहुँचकर मैंने देखा—साधु-संन्यासी के भेष में वहाँ बहुत से लोग इकट्ठे थे। सभी का चेहरा कठोर और गम्भीर था। वातावरण भी उदास और खिन्न लगा मुझे। आँगन के किसी कमरे में कोई अपने अभ्यस्त हाथों से नगाड़ा बजा रहा था। नगाड़े के अलावा कई साज और भी बज रहे थे। जिसका करुण स्वर नगाड़े की ध्वनि के साथ मिलकर वातावरण को और भी अधिक उदास और खिन्न बना रहा था। उस कापालिक साधु-संन्यासियों के अतिरिक्त आदिवासी सी लगने वाली—सोलह-सत्रह साल से बीस-बाईस साल तक की आयु की कई युवतियाँ भी वहाँ थीं। उनका कद नाटा और रंग काला था। एक प्रकार से सभी अर्धनग्न थीं। शरीर का ऊपरी भाग अनावृत था और कमर के नीचे वे सब केवल लाल रंग की लुंगी लपेटे हुई थीं। रूप-रंग से भयानक लगने वाली उन युवतियों का भी चेहरा क्रूर और वीभत्स था। उनकी आँखें छोटी थीं और उनके जबड़े नीचे की ओर लटक रहे थे। गले में कौड़ियों और काले मूँगे की मालायें थीं—जो उभरे हुए कठोर स्तनों पर बिखरी हुई थीं। मैंने देखा—सभी नवयुवतियों के हाथों में लपलपाती हुई नंगी तलवारें थीं और था नरकपाल, जिसमें मदिरा भरी थी शायद। सभी के पैर एक साथ नगाड़े की ध्वनि पर थिरक रहे थे। बीच-बीच में नरकपाल को मुँह से लगाकर मदिरा-पान भी कर लिया करती थीं वे।

मन्दिर के भीतर देवी के सामने कई दीपाधारों में एक साथ चौमुखे दीप जल रहे थे और हवन कुण्ड से निकल कर सुगन्धित धूम्र चारों ओर फैल रहा था। उस समय देवी की प्रतिमा लाल रेशमी साड़ी में लिपटी हुई थी और प्रतिमा के गले में जवा पुष्पों की मालाओं के साथ शिशुओं के नरमुण्डों की माला भी आपाद झूल रही थीं। कापालिक सम्प्रदाय की अधिष्ठात्री देवी कंकाल काली का वह रूप बड़ा ही रौद्र और भयानक प्रतीत हुआ मुझे उस समय। ऐसा लगा मानो अभी कुछ समय पहले उस महाशक्ति का पूजन-हवन हुआ है। कुल मिलाकर बड़ा ही भयानक और वीभत्स वातावरण था उस समय वहाँ का।

(४)

पूजा के आँगन में पहुँचते ही सभी कापालिक साधु-संन्यासियों की नजरें एक साथ घूम गयीं। उनके चेहरे भी पहले से ज्यादा कठोर हो गये और उपेक्षा का भाव भी दिखायी देने लगा। नाटे कद और बदसूरत शक्ल वाली उन युवतियों के नगाड़े की आवाज पर थिरक रहे पैर अपने आप रुक गये। मदिरा भरा कपाल पात्र एकबारगी छलक उठा और उसी के साथ उनके हाथ भी अपनी जगह थम गये।

पूजा बराबर चीखती-चिल्लाती जा रही थी और रो भी रही थी। मगर उसकी

तरफ किसी का ध्यान नहीं था। पूजा का हाथ अभी भी कसकर पकड़े हुआ था भैरवानन्द। क्रोध से उसकी आँखें और अधिक लाल हो रही थीं और सारा शरीर काँप रहा था। कभी-कदा वह मेरी तरफ भी देख लिया करता था, लेकिन उसकी लाल-लाल आँखों से ऐसा लगता था मानो वह मुझे पहचानता ही नहीं था और पहली बार देख रहा था। बड़ा ही आश्चर्य हुआ उसके इस व्यवहार से मुझको। फिर अचानक खयाल आया कि पूजा की बलि के लिए उसे वहाँ लाया गया था। यह खयाल आते ही भय से मेरा रोम-रोम काँपने लगा। तभी न जाने किधर से एक लम्बा-चौड़ा काठी का कापालिक संन्यासी आकर पूजा के सामने खड़ा हो गया। उसका सारा शरीर लाल रंग की रेशमी चादर से लिपटा हुआ था। उसका सिर बेडौल था और चेहरा भयानक। उसके चेहरे पर क्रोध, घृणा और उपेक्षा के भाव एक साथ तैर रहे थे। मैंने भीत दृष्टि से उस संन्यासी की ओर देखा। वह एकटक बिना पलक झपकाये पूजा की ओर देख रहा था। कुछ क्षण बाद वह हो-हो कर हँसने लगा। उस संन्यासी की उपस्थिति तो अनोखी लगी ही, साथ ही उसकी हँसी भी डरावनी-सी लगी।

मन में बार-बार यही विचार आता कि भाग कर बाहर चला जाऊँ, मगर पैर जड़वत हो गया था मेरा। हे भगवान्! कहाँ जाकर फँस गया था मैं। उसी समय मुझे लगा कि उस भयानक आकृति वाले कापालिक संन्यासी को कभी कहीं देखा है। फिर सब कुछ याद हो आया।

तवांग मठ के अपने कमरे में जब तन्द्रिल अवस्था में था—उस समय यही संन्यासी प्रकट हुआ था मेरे सामने और उसी के पीछे-पीछे सम्मोहित-सा चल कर मैं उस रहस्यमय स्थान पर पहुँचा था और फिर वहाँ वह अचानक लुप्त हो गया था, न जाने कहाँ?

नगाड़े की आवाज पहले से अधिक तेज हो गयी थी। उसकी लय पर वे तमाम वीभत्स सूरत-शक्ल वाली युवतियाँ कामान्ध-सी नाचने लगी थीं। उस समय उन सबकी मुद्रा और भाव काफी भयानक और विचित्र थे। मदिरा के नशे में वह सब उन्मत्त हो रही थीं।

कुछ देर हो-हो कर हँसने के बाद उस भयानक संन्यासी ने अपने गले से रुद्राक्ष की माला निकाल कर पूजा के मस्तक से स्पर्श कराया और फिर एक झटके से उसकी साड़ी खींच कर उसे पूरी तरह नग्न कर दिया। एक नवयुवती की यौवन से भरपूर और सुगठित काया अनावृत हो चुकी थी। मैंने देखा, रुद्राक्ष का स्पर्श होते ही पूजा बिल्कुल निर्विकार और शान्त हो गयी थी। उसका चीखना-चिल्लाना और रोना बिल्कुल बन्द हो गया था।

उसे उसी नग्न अवस्था में लाकर आँगन में एक तख्त पर बिठाया गया। जब वह पद्मासन की मुद्रा में बैठ गयी, तब उस भयानक कापालिक ने आगे बढ़कर पूजा के नग्न शरीर पर चन्दन और घी का लेप किया। उस समय पूजा की आँखें बन्द थीं और उसके

चेहरे पर गहरी शान्ति छायी हुई थी। उसका सारा शरीर जड़वत हो गया था। लेप के बाद उसकी तांत्रिक विधि से पूजा की गयी। उसके मस्तक पर लाल सिन्दूर का टीका लगाया गया और गले में जवा पुष्प की माला पहनायी गयी। इन सारी क्रियाओं के बाद उसको बलि-स्थल के पास ला खड़ा किया गया। उस समय का दृश्य काफी भयानक और रोमांचकारी था। सब कुछ किसी अनजाने लोक-सा प्रतीत हो रहा था मुझे। नगाड़े की आवाज बराबर तेज होती गयी।

जब मैं उस रहस्यमय वातावरण का जायजा ले रहा था, तभी हाथ में चमचमाता हुआ एक काफी लम्बी-चौड़ी खड्ग लिये भैरवानन्द वहाँ आया। उस समय उसका क्रूर और भयानक रूप बिल्कुल यमराज जैसा लग रहा था। उसका चेहरा तमतमाया हुआ था और होंठ फड़क रहे थे। उसने एक झटके से पूजा की गर्दन बलि यूथ में फँसा दिया और फिर दोनों हाथों से खड्ग तान कर खड़ा हो गया। सभी उपस्थित कापालिक संन्यासी एक साथ समवेत स्वर में जोर-जोर से कोई मंत्र पढ़ने लगे। मन्त्रोच्चारण की ध्वनि बहुत ही अप्रिय और भयप्रद थी। अब तक मेरा मन शान्त था। मगर अब उद्वेलित और विचलित होने लगा था। मैंने चीखकर कहना चाहा कि क्यों हत्या कर रहे हो इस लड़की की? कौन-सा अपराध किया है इस बेचारी ने? लेकिन चाह कर भी मेरे मुँह से स्वर नहीं फूटा। मैं स्तब्ध, अवाक् और हतप्रभ-सा खड़ा रहा। मैं आगे कुछ सोचूँ-समझूँ कि उसके पहले ही वातावरण में एक 'खच' की आवाज गूँज उठी और गूँज कर मंत्रोच्चारण की समवेत ध्वनि में विलीन हो गयी। नारी कण्ठ से निकला हुआ एक आर्तनाद भी गूँजा और चुप हो गया।

एक क्षण में बहुत बड़ी घटना घट गयी थी। आँगन में खून ही खून फैला था। उस खून से लिपटी हुई पूजा की कंचन काया छटपटा रही थी। उसका बेजान-सा सिर एक ओर लुढ़का पड़ा था। वे तमाम युवतियाँ नाचना-कूदना बन्द कर गर्म खून को अपने मस्तक पर चन्दन की तरह पोत रही थीं। कभी-कभी उसे जीभ से चाट भी लिया करती थीं। मेरे प्राण आतंक से हिम हो गये। लगा कि मैं मूर्च्छित हो जाऊँगा। एक गहरा सन्नाटा छा गया था वहाँ। सन्नाटा नहीं, अपितु मन में खिन्नता और क्षोभ उत्पन्न कर देने वाली बेचैनी। अब रहा गया नहीं मुझसे। मैं भयातुर कण्ठ से एकबारगी चीख पड़ा—'तुम सबने पूजा की हत्या क्यों की? क्यों बलि दे दी उस मासूम लड़की की क्या किया था उसने?' और सिर पटक-पटक कर करुण स्वर में रोने लगा। और उस स्थिति में कब तक रहा और कब चेतनाशून्य हो गया इसका मुझे पता नहीं।

जब चेतना लौटी तो अपने आपको एक सुसज्जित कमरे में पलंग पर पड़ा पाया।

कमरे में एक गहरी खामोशी छायी हुयी थी। मैं उठकर बैठ गया। मेरे मानस-पटल पर पिछली सारी घटनाएँ एक-एक कर उभरने लगीं। सब कुछ सपना-सा लगा मुझे। फिर एकाएक खयाल आया कि मैं यहाँ और इस कमरे में कैसे पहुँचा? कौन लाया मुझको यहाँ? और कौन-सी जगह है यह ?

जब यह सब सोचता हुआ हक्का-बक्का सा चारों तरफ सिर घुमा-घुमा कर देख

रहा था—उसी समय न जाने कहाँ से एक नवयुवती वहाँ प्रकट हो गयी। मैंने जब उसकी ओर देखा—तो बस देखता ही रह गया। रोम की किसी राजकुमारी-सी लग रही थी वह नवयुवती। एक नारी में जितना सौन्दर्य चाहिए उतना सब भर दिया था ईश्वर ने उस सद्यः-नवयुवती में।

उस युवती का नाम था शिवामयी।

जब शिवामयी ने यह बतलाया कि मैं अरुणाचल की सुनसान घाटी में पहाड़ी नदी के किनारे चेतनाशून्य जमीन पर पड़ा था और वह मुझे उठाकर अपने आश्रम में ले आयी, तो मुझे घोर आश्चर्य हुआ। मैं स्तब्ध और अवाक् रह गया। विश्वास ही नहीं हो पा रहा था मुझे शिवामयी की बातों पर।

मैंने शुरू से अंत तक की घटनाओं का सविस्तार वर्णन किया, तो सब कुछ सुनने के बाद उससे कहा—'जो कुछ मैंने देखा, सुना और अनुभव किया वह सब सत्य था?'

'हाँ, सत्य था। बिल्कुल सत्य।' शिवामयी बोली।

लेकिन वह मठ कहाँ गया? मठ के सारे लोग कहाँ गये? पूजा की कटी लाश कहाँ गयी? पूजा कौन थी? क्यों दी गयी उसकी बलि?'

मैंने देखा—पूजा का नाम सुनकर शिवामयी विचलित हो गयी। उसका चेहरा विवर्ण हो उठा। दूसरे ही क्षण अपने को सँभाल कर वह बोली, 'पूजा का इतिहास एक असफल भैरवी का इतिहास है। पूजा की कथा भी कम रहस्यमयी नहीं है। लेकिन वह सब जानने-समझने की आवश्यकता नहीं है तुमको। हाँ, इतना अवश्य बतला रही हूँ कि तुमने जो कुछ देखा और जितनी घटनाएँ घटीं, वह सब सत्य हैं। मठ की सत्ता अभी भी है और उस मठ में रहने वाले तमाम कापालिक साधकों का अस्तित्व भी है। मगर चर्मचक्षु से परे है। विशेष स्थिति में ही मठ की सत्ता और उससे संबंधित तमाम लोग और उन तमाम लोगों से संबंध रखने वाली तमाम घटनाएँ प्रकट हुआ करती हैं।' इतना कहने के बाद एकबारगी मौन साध गयी शिवामयी।

कार्तिक पूर्णिमा की रात थी वह। निर्मल आकाश में रुपहला चाँद खिला हुआ था। शुभ्र धवल ज्योत्स्ना बिखरी हुई थी उस निर्जन घाटी में। वातावरण में अनिर्वचनीय शान्ति थी। रात का शायद दूसरा पहर था। मेरे निकट पद्मासन की मुद्रा में नेत्र बन्द किये हुए बैठी थी शिवामयी। शायद योग की किसी अवस्था में थी वह। कभी मैं आकाश में खिले चाँद की ओर निहारता, तो कभी निहारता शिवामयी के दिव्य आभामय मुख की ओर।

एकाएक शिवामयी का दाहिना हाथ मेरे मस्तक की ओर बढ़ा और तर्जनी उँगली का स्पर्श हुआ दोनों भौंहों के बीच में। दूसरे ही क्षण ऐसा लगा मानो मेरे शरीर में बिजली का हल्का सा करेन्ट दौड़ गया हो और काफी देर तक सनसनाता रहा मेरा शरीर और उसी के साथ मेरी बाह्य चेतना लुप्त हो गयी। चेतना लुप्त होते ही मैं एक अज्ञात किन्तु विलक्षण स्थिति में पहुँच गया। निश्चय ही वह शारीरिक मानसिक सत्ता से ऊपर की स्थिति थी। उस उच्च स्थिति में एक दूसरे ही जगत् का अनुभव किया मैंने। ध्वनिरहित निस्पन्द था

वह जगत्। प्रकाश का ही विस्तार था उस अलौकिक जगत् में। मैं अपने आपको शरीररहित अनुभव कर रहा था उस स्थिति में।

क्या वह समाधि की अवस्था थी? जब मैंने इस संबंध में पूछा तो शिवामयी ने बतलाया कि शरीर से मन की सत्ता को अलग होने पर जो घटित होता है—उसी का अनुभव था वह। इसे समाधि में प्रवेश कहा जा सकता है। योग के चार मुख्य अंग हैं क्रियात्मक दृष्टि से। पहला है श्रवण, दूसरा है मनन, तीसरा है निदिध्यासन और चौथा है समाधि। इन चारों अंगों के समन्वय को 'महायोग' कहते हैं। महायोग की अन्तिम उपलब्धि एकमात्र समाधि है। वास्तव में समाधि जगत् का अंत है और परम सत्य का आरम्भ है। समाधि में मन की मृत्यु हो जाती है और फिर उसी समाधि के गर्भ में आत्मा का जन्म होता है। समाधि की स्थिति मन और आत्मा के बीच में है। मन की दृष्टि से देखा जाये, तो वह प्रथम चरण है।

मन को शक्तिहीन अथवा क्षीण करना आवश्यक है। बिना मन के क्षीण हुए समाधि सम्भव नहीं। श्रवण, मनन और निदिध्यासन द्वारा मन बराबर क्षीण हो जाता है और समाधि में पूर्ण रूप से लीन हो जाता है। समाधि के जिस केन्द्र से उस सत्य का अनुभव प्रारम्भ हो जाता है जो सचमुच में 'हम' है।

तमाम वृत्तियों के दो आधार हैं—पहला है मन और दूसरा है आत्मा। जब तक मन अपने आप में स्वतंत्र रहता है और शक्तिशाली रहता है तब तक सारी वृत्तियाँ मन का आश्रय लेकर प्रकट होती हैं। इस स्थिति में इन वृत्तियों को मनोवृत्तियाँ कहते हैं। जब मन की स्वतंत्र सत्ता नष्ट हो जाती है, उसकी शक्ति निर्बल और क्षीण हो जाती है तो वे ही तमाम वृत्तियाँ आत्मा का आश्रय लेकर प्रकट होती हैं। इस स्थिति में उन वृत्तियों को आत्मवृत्तियाँ कहते हैं। समाधि की अवस्था में सारी मनोवृत्तियाँ केवल आत्मरूप विषय से संबंधित हो जाती हैं। इसी कारण वे वृत्तियाँ अनुभव में नहीं आ पातीं।

जब साधक समाधि से लौटता है तो वे तमाम वृत्तियाँ स्मृति रूप में उसे भासती हैं। इस बात को अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि समाधि में किसी भी प्रकार का कोई अनुभव नहीं होता। समाधि स्वयं एक परम अनुभव है। वह परम अनुभव परम आनन्द का अनुभव है, लेकिन जब साधक समाधि में रहता है तब उस अवस्था में उसको उस परम आनन्द का परम अनुभव नहीं हो पाता। क्योंकि समाधि की अवस्था में साधक स्वयं परम आनन्द रूप अथवा परमानन्द रूप में हो जाता है। समाधि में परमानन्द या इसका परम अनुभव साधक को तब होता है जब वह समाधि से लौटता है। तब वह उसी स्मृति के आधार पर परमानन्द का अनुभव करता है। बाद में स्मरण करता है कि उसे परमानन्द की प्राप्ति हुई थी। समाधि में किसी और ही प्रकार का जीवन था। जीवन की किसी गहन स्थिति की अनुभवपूर्ण उपलब्धि थी—इन सब बातों का तब पता चलता है जबकि साधक का अस्तित्व मन से संबंधित होता है यानी जब आत्मा से मन का योग होता है।

किसी भी प्रकार का अनुभव मन में होता है। मन में स्मृति भी रहती है। समाधि की अवस्था में मन का जरा-सा भी अस्तित्व नहीं रहता। रहता है केवल अस्तित्व आत्मा

की। समाधि की अवस्था में आत्मा में सारे परम अनुभव और सारे परमानन्द के अनुभव एकत्र हो जाते हैं। समाधि में जीवन का क्या रूप था? जीवन की कैसी स्थिति थी? संसार का भी रूप कैसा और क्या था? आदि सभी बातों का भी अनुभव आत्मा में एकत्र हो जाता है। आत्मा जब समाधि की स्थिति से वापस लौट कर मन के सम्पर्क में आती है तब मन उन तमाम अनुभवों को स्मृति रूप में दे देता है जिसके आधार पर साधक समाधि के तमाम अनुभवों का स्मरण करता है और वर्णन करता है। लेकिन वह स्मरण और वर्णन अधूरा ही रहता है। जो लोग अधिकतर समाधि में रहते हैं और संसार में कम से कम रहते हैं वे ही पूरा-पूरा स्मरण और वर्णन कर सकते हैं। मेरे सहयोग से मेरे स्पर्श से तुम समाधि की अवस्था में प्रवेश कर गये थे, लेकिन उस अवस्था का क्या तुम पूरा-पूरा वर्णन कर सकते हो? नहीं। क्योंकि मन जितने अनुभवों को ग्रहण करने की क्षमता रखता है, उतने अनुभवों की ही स्मृति बन जाती है। मन एक ही समय में और एक ही अवस्था में एक साथ सभी अनुभवों को ग्रहण करने में असमर्थ होता है। मन की भी अपनी मर्यादा है। समाधि अवस्था में प्रवेश के कौन-कौन से उपाय हैं? पूछा मैंने।

शिवामयी ने कहा—केवल तीन ही उपाय हैं। सद्गुरु या उच्चकोटि की समाधि उपलब्ध होगी, कृपा का यह प्रथम उपाय है। यदि सद्गुरु अथवा योगी चाहे तो किसी भी साधना संस्कार सम्पन्न साधक व्यक्ति को अपने योगबल से समाधि में प्रवेश करा सकता है।

श्रवण, मनन, निदिध्यासन, समाधि—इन चारों सोपानों को पार कर समाधि को उपलब्ध हुआ जा सकता है। यह दूसरा उपाय है। यह विशुद्ध योग मार्ग का उपाय है।

विभिन्न गुह्य तांत्रिक क्रियाओं द्वारा भैरवी के सहयोग से सम्भोग मार्ग से भी समाधि में प्रवेश सम्भव है। यह तीसरा उपाय है। यह उपाय तंत्र योग मार्ग से संबंध रखता है।

कहने की आवश्यकता नहीं। योग तंत्र से संबंधित साधनाओं का पहला लक्ष्य है एकमात्र समाधि। समाधि की उपलब्धि केवल इन्हीं तीनों उपायों द्वारा सम्भव है।

समाधि से आदृव्य अथवा उपलब्धि क्या है? पुनः प्रश्न किया मैंने।

शिवामयी ने कहा—देखो इस संसार में सभी कुछ है। मगर दो वस्तुएँ नहीं हैं। पहली वस्तु है शान्ति और दूसरी वस्तु है आनन्द। किसी भी सांसारिक विषय में शान्ति नहीं है। किसी भी विषय-भोग में आनन्द नहीं है। लोग जिसे आनन्द और शान्ति समझते हैं वास्तव में वह एक भयानक भ्रम है। मृग-मरीचिका है। उसके मूल में दुःख है। वास्तविक शान्ति और आनन्द की उपलब्धि संसार से परे होने पर ही सम्भव है। और संसार से परे होने का एक ही मार्ग है समाधि। समाधि की अवस्था में हम संसार से अलग हो जाते हैं। संसार की सीमा से बाहर चले जाते हैं। जहाँ तक मन है वहाँ तक संसार है। समाधि में मन रहता ही नहीं, इसलिए वहाँ संसार के रहने का प्रश्न ही नहीं उठता। समाधि में हमें परम शक्ति और परम आनन्द का साक्षात्कार होता है।

शिवामयी ने आगे बताया कि 'समाधि' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह साधक के आंतरिक और बाह्य दोनों व्यक्तियों का आमूल-चूल परिवर्तन कर देती है।

समाधि की अवस्था में प्राप्त अनुभवों को हम सांसारिक अनुभवों की श्रेणी में नहीं ला सकते। समाधि का अनुभव अलौकिक और अदिव्य है।

पूरे एक वर्ष रहा मैं शिवामयी के सान्निध्य में। उस एक वर्ष में योग संबंधी जो आध्यात्मिक लाभ मुझको हुआ वह मेरी आत्मा की अमूल्य निधि समझी जायेगी। योग का सबसे महत्वपूर्ण विषय है समाधि और सबसे मूल्यवान साधना है—समाधि में प्रवेश करने की साधना।

समाधि के विषय में हमारे शास्त्रों में बहुत कुछ लिखा गया है, लेकिन समाधि कैसे उपलब्ध हो—इस संबंध में क्रियात्मक दृष्टि से कहीं किसी शास्त्र में सूक्ष्मता से विवेचन नहीं किया गया है।

पूर्णिमा का रुपहला चाँद पश्चिम के क्षितिज में डूबने वाला था। रात का चौथा प्रहर था शायद। हवा में सिहरन आ गयी थी। घाटी की नीरवता पहले से अब और घनीभूत हो चुकी थी। पूरी रात हम दोनों की बातों में समाप्त हो गयी थी, मगर समय का न मुझे ज्ञान रहा और न तो शिवामयी को ही।

(५)

वाराणसी के निकट सारनाथ में हो रहे बौद्ध सम्मेलन में भाग लेने के लिए युत्सुंग आये हुए थे। वहाँ मैं भी दलाईलामा से भेंट करने के लिए गया था। किसी कारणवश उनसे भेंट न हो सकी। अचानक वहीं युत्सुंग से मेरी भेंट हो गयी। हम दोनों की यह भेंट लगभग २५ साल बाद हुई थी।

कुछ क्षण तक अपलक देखते रहे वह मेरी ओर, फिर लपक कर गले से लिपट गये। उसके बाद बातचीत का सिलसिला चल पड़ा और उसी सिलसिले में मैंने अरुणाचल की सारी कहानी सुना दी।

बड़ी तन्मयता और बड़े ध्यान से युत्सुंग मेरी बात सुनते रहे। सब कुछ सुनने के बाद उनकी मुख-मुद्रा गम्भीर हो गयी। काफी देर तक न जाने क्या सोचते रहे वह आँखें मूँदकर फिर सहज स्वर में बोले, निश्चय ही आप किसी अलौकिक शक्ति की प्रेरणा के वशीभूत होकर संग्रीला घाटी में पहुँच गये थे।

संग्रीला घाटी इसका नाम तो मैं पहली बार सुन रहा हूँ। चौंकते हुए मैंने कहा।

तिब्बत और अरुणाचल की सीमा पर स्थित है संग्रीला घाटी। युत्सुंग बोले, लेकिन व्यापक भू-हीनता और चतुर्थ आयाम से प्रभावित होने के कारण वह अभी तक अगम्य, अगोचर और रहस्यमयी बनी हुई है। ऐसा कहा जाता है कि उस घाटी का संबंध अंतरिक्ष के किसी लोक से भी है। यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ मुझे। कौतूहल भरे स्वर में मैंने कहा, आपकी चतुर्थ आयाम और भू-हीनता की बात मेरी समझ में नहीं आयी। इनसे आपका तात्पर्य क्या है?

युत्सुंग सहज गम्भीर हो गये और फिर उसी मुद्रा में बोले—'यह अत्यन्त जटिल विषय है शर्मा जी! चतुर्थ आयाम अथवा भू-हीनता के तथ्यगत सिद्धान्तों की ठीक-ठीक व्याख्या करना और ठीक-ठीक विवेचन करना सभी के वश की बात नहीं है। पिछले पच्चीस साल से प्रयत्नशील हूँ मैं इस दिशा में, लेकिन बंधु, अभी तक मुझे पूरी सफलता नहीं मिली। यदि स्वयं मैं संग्रीला घाटी के रहस्यमय प्रदेश में न गया होता, तो इन दोनों विषयों पर कदापि इतनी गहरी खोज और इतना व्यापक अनुसंधान न कर पाता।

अच्छा, यह तो मुझे मालूम ही नहीं था। न तो आपने पिछली मुलाकात में बतलाया ही था। मैंने कहा।

युत्सुंग ने बताया कि जिस प्रकार वायुमण्डल में बहुत से ऐसे स्थान हैं—जहाँ वायु शून्यता रहती है उसी प्रकार धरती पर भी बहुत से ऐसे स्थान हैं, जो भू हीन हैं। ऐसे वायु शून्यता और भू हीनता वाले स्थान चतुर्थ आयाम से प्रभावी होते हैं। और ऐसे प्रभावी स्थान देश, काल, निमित्त से परे होते हैं। उनमें कोई भी वस्तु या प्राणी अनजाने में चला गया, तो तीन आयाम वाले इस जगत् की दृष्टि में उसकी सत्ता अदृश्य अथवा लुप्त हो जाती है। लेकिन वहाँ उसका अस्तित्व बना रहता है। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि भविष्य में कब उसका अस्तित्व इस जगत् में प्रकट होगा या होगा भी नहीं।

इस विषय से संबंधित प्राचीन पुस्तकों में सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक है 'काल-विज्ञान'। तिब्बती भाषा में लिखी हुई यह प्राचीन पुस्तक तवांग मठ के पुस्तकालय की अमूल्य निधि है। 'काल-विज्ञान' का मैंने कई बार गहन अध्ययन किया है और अंत में इस नतीजे पर पहुँचा कि इस तीन आयाम वाले संसार की हर चीज देश, काल और निमित्त से बँधी हुई है। इस संसार का जो देश है, वह वक्र है। यदि कोई वस्तु या प्राणी स्थानहीनता अथवा शून्यता के प्रभावी क्षेत्र में पहुँच गया, तो वह वक्रता स्वयं अपने आप टूट जाती है और वह वस्तु या वह प्राणी अनजाने में चतुर्थ आयाम के संसार में चला जाता है। सबसे मजे की बात तो यह है कि यदि कोई व्यक्ति भू हीनता के प्रभावी क्षेत्र में चला जाता है, तो उसे इस बात का जरा-सा भी पता नहीं चलता कि वह एक ऐसे विचित्र और अद्‌भुत संसार के रहस्यमय वातावरण में पहुँच गया है, जहाँ कि काल का प्रभाव नगण्य है और जहाँ मन की, प्राण की और विचार की शक्ति एक विशेष सीमा तक बढ़ जाती है। इतना ही नहीं शारीरिक क्षमता, जीवन-शक्ति और मानसिक चेतना में भी आशातीत वृद्धि हो जाती है। वह अपने को हमेशा प्रफुल्ल और तरो-ताजा अनुभव करता है।

उनकी बातें सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा था। ये विषय मेरे लिए सर्वथा नवीन और कौतूहलपूर्ण थे। जिज्ञासाओं का तूफान उमड़ रहा था उस समय मेरे मस्तिष्क में। थोड़ी देर रुककर युत्सुंग आगे कहने लगे—सबसे आश्चर्यजनक बात तो यह है कि समय के प्रभाव की नगण्यता के कारण व्यक्ति के शरीर पर काल का प्रभाव अत्यन्त मन्द गति से पड़ता है। अगर व्यक्ति ने पच्चीस वर्ष की अवस्था में कथित स्थान में प्रवेश किया है, तो उसका पच्चीस वर्ष की आयु का शरीर दीर्घकाल तक उसी प्रकार युवा बना रहेगा।

इसका मतलब यह हुआ कि आयु भी अपने स्थान पर स्थिर हो जाती है? मैंने पूछा।

नहीं, ऐसी बात नहीं। युत्सुंग बोले, आयु तो बराबर बढ़ती ही जाती है, लेकिन उसकी वृद्धि के प्रभाव से दीर्घकाल तक वंचित रहता है शरीर। यही विशेषता है। लेकिन इस बात का पता व्यक्ति को नहीं चलता। वह तो यही समझता है कि वह अभी पच्चीस साल का युवक ही है। संयोगवश वह व्यक्ति किसी प्रकार प्रभावी क्षेत्र से बाहर आ गया तो बढ़ी हुई आयु का प्रभाव तत्काल उस पर पड़ेगा और उसके साथ ही उनकी जीवन-शक्ति भी क्षीण हो जायेगी और मर भी सकता है वह। खैर, ऐसी ही है संग्रीला घाटी और ऐसा ही है उसका रहस्यमय अविश्वसनीय वातावरण। वह कितनी पुरानी है, यह नहीं बतलाया जा सकता। लोगों का कहना है कि पौराणिक घाटी है। पुराणों में उसका नाम शांग्रीला है जो कालान्तर मे बिगड़ कर संग्रीला हो गया। स्वर्गीय वातावरण में डूबी हुई संग्रीला घाटी अद्भुत छटाओं से भरी पड़ी है। कितनी बड़ी है वह घाटी यह कहा नहीं जा सकता, लेकिन अनेक योगाश्रमों, सिद्धाश्रमों और तांत्रिक मठों तथा उनमें सैकड़ों-हजारों निवास करने वाले उच्चकोटि के दीर्घ अवस्था प्राप्त, कालजयी और अद्भुत शक्तिसम्पन्न योगियों और साधकों का विशाल केन्द्र है वहाँ, इसमें संदेह नहीं। दिव्य अवस्था प्राप्त कुछ योगी तो ऐसे हैं, जो आकाशचारी भी हैं। कुछ विलक्षण साधक ऐसे भी हैं, जो महाभारत काल के हैं और वहीं रहकर साधना कर रहे हैं।

जो लोग संग्रीला घाटी से अच्छी तरह परिचित हैं, उनका कहना है कि प्रसिद्ध योगी श्यामाचरण लाहिड़ी के महागुरु अवतारी बाबा, जिन्होंने भगवान् कृष्ण और आदि शंकराचार्य को भी दीक्षा दी थी, संग्रीला घाटी के किसी सिद्धाश्रम में अभी भी निवास करते हैं। कभी-कदा आकाश मार्ग से गमन कर अपने भक्तों और शिष्यों को दर्शन भी देते हैं।

संग्रीला घाटी के तीन साधना केन्द्र प्रसिद्ध हैं—पहला है ज्ञानगंज मठ, दूसरा है सिद्धविज्ञान आश्रम और तीसरा है योग सिद्धाश्रम। ये तीनों आश्रम अत्यन्त विशाल हैं और उनमें अनेक विभाग हैं और हर विभाग के अलग-अलग आचार्य और निदेशक हैं। सभी आचार्य और सभी निदेशक ब्राह्मी भाव प्राप्त उच्चकोटि के ज्ञान योगी हैं। वे दीर्घजीवी हैं, कालजयी हैं। प्राय: वे आत्मशरीर में रहते हैं। उनका भौतिक और सूक्ष्म शरीर अलग-अलग रहता है। कहने का मतलब है कि वे लोग साधना तो आत्मशरीर में रहकर करते हैं, लेकिन सूक्ष्म शरीर से संचरण-विचरण करते हैं। कभी-कदा आवश्यकता पड़ने पर भौतिक शरीर का उपयोग भी करते हैं। वर्ना वह शरीर निष्क्रय भाव से पड़ा रहता है।

उन लोगों का सूक्ष्म शरीर अति शक्तिशाली और प्रखर होता है, जिसके फलस्वरूप वे लोग सूक्ष्म शरीर के द्वारा तत्क्षण हजारों मील की यात्रा कर सकते हैं और आवश्यकतानुसार भौतिकी रूप से भी प्रकट हो सकते हैं।

आपने स्वामी विशुद्धानन्द परमहंसदेव का नाम तो सुना ही होगा।

क्यों नहीं, मैंने कहा—वही न, जो महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज के गुरु थे और गंध बाबा के नाम से प्रसिद्ध थे।

हाँ, उन्हीं की बात कह रहा हूँ। युत्सुंग बोले, वे ज्ञानगंज मठ से संबंधित थे। उसी मठ के आचार्य ने उन्हें योग-दीक्षा दी थी और सूर्यविज्ञान में पारंगत किया था।

हाँ-हाँ यह मैं जानता हूँ। डॉ० गोपीनाथ कविराज जी ने अपनी पुस्तकों में कई स्थानों पर उसकी चर्चा भी की है। स्वामी जी के जीवन-चरित्र में भी इसका विस्तृत वर्णन मिलता है।

ज्ञानगंज मठ के आचार्य सदैव आकाश मार्ग से योगानुकूल और दिव्य संस्कार-सम्पन्न शिष्यों की खोज में रहा करते हैं। मिल जाने पर उन्हें अपने मठ में ले जाते हैं और दीक्षा-शिक्षा के बाद योग के प्रकार व प्रसार के लिए संसार में भेज देते हैं। स्वामी विशुद्धानन्द परमहंसदेव ऐसे ही शिष्य थे। उन्हें इसी प्रकार ले जाया गया था और सूर्यविज्ञान में पारंगत हो जाने के बाद उन्हें वापस कर दिया गया था।

ज्ञानगंज मठ के दो प्रमुख विभाग हैं। पहला विभाग विशुद्ध ज्ञानयोग से संबंधित है और दूसरा योग-विज्ञान का है। योग-विज्ञान के अन्तर्गत सोलह विज्ञान हैं। जिनमें सौर-विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, काल-विज्ञान, क्षण-विज्ञान, वासु-विज्ञान, सूर्य-विज्ञान और चन्द्र-विज्ञान प्रमुख हैं। इन सभी विज्ञानों की शिक्षा अलग-अलग दी जाती है। संसार में जो जिस विज्ञान के पात्र हैं उन्हें खोजकर आचार्य ले जाते हैं और संबंधित विज्ञान की शिक्षा देने के बाद पुनः संसार में वापस भेज देते हैं।

स्वामी जी सूर्य-विज्ञान के योग्य थे। इसीलिए उन्हें उपयुक्त समझकर महापुरुष स्वामी नीमानन्द परमहंस अपने साथ ज्ञानगंज मठ ले गये थे। स्वामी नीमानन्द दीर्घ अवस्था प्राप्त कालजयी योगी हैं। आकाशचारी तो हैं ही। उनके गुरु जो हजारों वर्ष की आयु के हैं उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपने पाँचों शरीर में अलग-अलग निवास करते हैं। उनका भौतिक शरीर तो हमेशा पच्चीस वर्ष के युवक के समान रहता है। उन्होंने ही स्वामी विशुद्धानन्द जी को योग-विज्ञान की दीक्षा दी और अपने निकट के योगियों, जिनका नाम था—श्यामानन्द परमहंस, भृगुराम परमहंस और दिव्यानन्द परमहंस के पास विज्ञान की शिक्षा के लिए भेज दिया।

स्वामी विशुद्धानन्द परमहंसदेव को उनके महागुरु ने एक दिव्यशक्तिसम्पन्न अलौकिक शिवलिंग दिया था जिसकी स्थापना स्वामी जी ने वण्डूलेश्वर के नाम से अपने गाँव वण्डूल में की थी। वह शिवलिंग आज भी विद्यमान है।

तीनों आश्रमों के बाद दो-तीन तांत्रिक मठ भी हैं, जो काफी लम्बे-चौड़े हैं और जिनमें उच्चकोटि के कापालिक और शाक्त साधक निवास करते हैं। अपनी अलौकिक साधनाओं की सिद्धि व सफलता के लिए नरबलि देना और शव-साधना करना उनका प्रमुख कार्य है। वे साधक लोग भी अलौकिक शक्तिसम्पन्न, कालजयी और आकाशचारी हैं। वे योग्य पात्र की खोज में भ्रमण करते रहते हैं। इसी प्रकार सिद्ध तांत्रिक लामाओं के भी कई योग तांत्रिक मठ तथा आश्रम हैं और उनका बाहरी दुनिया के कई मठों और आश्रमों से संबंध है। मगर वे भौतिक जगत् के सामने अपने वास्तविक परिचय को गुप्त रखते हैं। युत्सुंग ने बतलाया कि एक बार ऐसे ही एक तांत्रिक लामा से मेरी भेंट हुई थी।

वह किसी काम से तवांग मठ में आया था। उसे कई प्रकार की अलौकिक तांत्रिक सिद्धियाँ प्राप्त थीं। अपनी किसी सिद्धि के लिए वह योग्य शव की खोज में था और उसी सिलसिले में उससे मेरी भेंट हुई थी। नाम था युंगछेज लामा। पहली ही भेंट में उससे मैं प्रभावित हो गया। सियांग मठ में रहता था वह। सैकड़ों वर्ष से कापालिक सम्प्रदाय के अघोरियों की भयंकर तामसिक साधनाओं का केन्द्र है सियांग मठ। युंगछेज लामा ने ही बतलाया कि सैकड़ों वर्ष की आयु के अनेक कालजयी कापालिक न जाने कब से उस मठ में रहते चले आ रहे हैं। वे सभी मानवेतर शक्तिसम्पन्न हैं। अपनी भयानक तमोगुणी तांत्रिक शक्तियों के बल पर प्रकृति में विकृति पैदा कर, असम्भव से सम्भव कार्य कर सकने में समर्थ हैं वे।

सच बात तो यह है शर्मा जी, युत्सुंग थोड़ा रुककर आगे बतलाने लगे—अगर उस लामा से मेरी भेंट न हुयी होती, तो न संग्रीला के बारे में जानता कुछ और न तो गया ही होता उसकी रहस्यमय घाटी में। उसी ने मुझे प्रेरणा दी और उसी प्रेरणा के वश में होकर तैयार हो गया मैं उसके साथ जाने के लिए। मगर कब और कैसे मैं तीन आयाम के इस जगत् की सीमा लाँघकर चौथे आयाम के जगत् में चला गया—मुझे पता नहीं। एक बात अवश्य है कि प्रवेश करते ही इस संसार का अस्तित्व वायवीय हो गया और उसकी जगह एक सर्वथा नवीन और आलोकमय संसार उद्भाषित हो उठा मेरे सामने और उसी के साथ पिछली सारी स्मृतियाँ भी विलुप्त हो गयीं।

इतना कहकर जैसे किसी गहरे भाव में डूब गये युत्सुंग। ऐसा लगा मानो अपनी अनुभूतियों को भाषा में व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द खोज रहे हों। काफी देर बाद शून्य में ताकते हुए धीमे स्वर में कहने लगे—शर्मा जी! आश्चर्य की बात तो यह है कि वहाँ न सूर्य का प्रकाश था और न थी चाँद की चाँदनी। वातावरण में चारों तरफ एक दुधिया प्रकाश फैला हुआ था और उसी के साथ चारों तरफ विचित्र-सी खामोशी फैली हुई थी।

उसी दुधिया प्रकाश में मैंने देखा कि एक ओर मठों, आश्रमों और विभिन्न आकृतियों के मन्दिर थे और दूसरी ओर थी सुदूर तक फैली हुई संग्रीला की सुनसान घाटी। घाटी काफी रमणीक और आकर्षक लगी मुझे। एक निर्वचनीय शान्ति का साम्राज्य था वहाँ।

न जाने कब और कैसे मैं लामा के साथ एक ऐसे स्थान पर पहुँचा, जहाँ की जमीन स्फटिक की तरह पारदर्शक और चमकीली थी। लामा ने कान में फुसफुसाकर कहा—जानते हो? यह जमीन, जहाँ तुम खड़े हो—एक महान् योगी की प्रबल इच्छा-शक्ति के वशीभूत है। इतना ही नहीं, इस जमीन का अगोचर संबंध अनेक लोक-लोकान्तरों से भी है। इच्छा-शक्ति के वशीभूत है।

यह बात मैं भी नहीं समझ पा रहा हूँ। मैंने कहा। मेरी बात सुनकर लामा ने एक बार चारों ओर नजरें घुमाकर देखा और फिर कहा—अभी तुम्हारी समझ में आ जायेगा। थोड़ी देर रुको। सचमुच थोड़ी देर बाद मेरे सामने एक अजीब-सा दृश्य धीरे-धीरे उभरने

लगा। वह पारदर्शक और चमकीली जमीन काफी दूर तक लाल रंग की हो गयी और उसमें तरह-तरह के रंगों की रश्मियाँ निकलने लगीं। कभी-कभी वे रश्मियाँ आपस में टकरा भी जाती थीं और जब टकराती थीं, तो उसमें से चिंगारियाँ निकलकर आकाश में काफी दूर तक फैल जाती थीं। बड़ा ही अद्‌भुत दृश्य था वह। अपलक देख रहा था मैं उस अलौकिक दृश्य को। सहसा रश्मियों का आपस में टकराना और चिंगारियों का निकलना बंद हो गया। उनके बंद होते ही रश्मियाँ घनीभूत होने लगीं। उसमें से एक विशेष आकार प्रकट होने लगा। धीरे-धीरे वह आकार बढ़ता गया और अंत में एक विशाल महल का रूप धारण कर लिया। पूरा महल पारदर्शक और शुभ्र प्रकाश से भरा था। लगता था जैसे वह पूरा का पूरा काँच का बना हो।

सामने की ओर काफी लम्बी-चौड़ी पारदर्शक सीढ़ियाँ थीं। उसके बाद महल का विशाल फाटक था, जिसके दोनों तरफ दो विशाल हाथी सूँड़ ऊपर की ओर उठाये खड़े थे। दोनों स्याह पत्थर के थे।

किसका महल है वह? आश्चर्य चकित होकर पूछा मैंने।

लामा मेरा प्रश्न सुनकर एक बार हँसा, फिर बोला, यह महल नहीं आश्रम है। उसी महान् योगी की इच्छा-सृष्टि। अपनी प्रबल इच्छा-शक्ति से उसने सृष्टि की है। सूक्ष्म जगत् में रहते हुए वह योगी इसी प्रकार कभी-कदा इस स्थान पर सृष्टि कर देता है। ऐसी सृष्टि वह क्यों करता है? इसके पीछे उसका कौन-सा उद्देश्य है? वह परम महायोगी, है कौन? यह बतलाया नहीं जा सकता।

उसके बारे में कोई कुछ नहीं जानता। सब कुछ रहस्यमय है। लामा की बात मुझे अटपटी सी लगी। कुछ-कुछ छिपा रहा है, ऐसा प्रतीत हुआ मुझे। योग-विज्ञान प्रकृष्ट विज्ञान है। कार्य और ज्ञान को आपस में आदत्त किये बिना प्रकृष्ट विज्ञान में अधिकार प्राप्त करना असम्भव है। जहाँ ज्ञान होता है, वहाँ कर्म नहीं होता और जहाँ कर्म रहता है वहाँ ज्ञान का अभाव रहता है।

ठीक कहा आपने। एक साथ दोनों की सत्ता अत्यन्त दुर्लभ है। इसीलिए यथार्थ विज्ञान यानी प्रकृष्ट विज्ञान कठिन है।

क्या योग और विज्ञान दोनों एक ही भूमि की विधायें हैं? मैंने पूछा।

नहीं, ऐसी बात नहीं है। दोनों में भिन्नता है। इच्छाशक्ति का पूरा विकास ही योग है। इसी प्रकार मन-शक्ति का पूर्ण विकास प्रकृष्ट विज्ञान है। योगबल से भी सृष्टि होती है और विज्ञानबल से भी। एक में इच्छाशक्ति काम करती है और दूसरे में मन:शक्ति। आज जिस विज्ञान की उन्नति हो रही है—उसके मूल में इच्छा है, मन है, मगर शक्ति नहीं है। इसीलिए उसकी आधार-भूमि में अज्ञान अथवा त्रुटियाँ रहती हैं। उसी अज्ञानता और त्रुटियों के कारण भौतिक विज्ञान विनाश का कारण भी बनता जा रहा है।

मैं यह जानना चाहता था कि वह सृष्टि किस बल से हुई थी—योगबल से या विज्ञानबल से? और यह भी जानना चाहता था कि वह परम महायोगी कौन थे? लेकिन

इसका समाधान उस समय नहीं हो सका।

मैंने लामा के साथ उस आश्रम में प्रवेश किया। फाटक के बाद काफी लम्बा-चौड़ा आँगन मिला मुझे, जिसके बीच में कमल के फूल के आकार का एक बहुत बड़ा फौआरा था। फूल के ऊपर एक नग्न युवती की मूर्ति खड़ी थी। मूर्ति के हाथों में किसी पारदर्शक पत्थर का कलश था जिसके भीतर से पानी निकल-निकलकर फौआरों के रूप में बाहर फैल रहा था। उस आँगन के चारों तरफ काफी लम्बे-लम्बे दालान थे और उसके बाद थे कमरे। दालान के स्तम्भों और मेहराबों पर सुनहरे रंग में बेल-बूटों की नक्काशियाँ थीं। दीवारों पर विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक दृश्यों के चित्र अंकित थे। आँगन और दालान पार करने के बाद मुझे फिर सीढ़ियाँ मिलीं, जिससे उतर कर एक सुन्दर बाग में पहुँचे। वह बाग भी काफी बड़ा था और उसमें सभी प्रकार के फूल-फलों के पेड़-पौधे लगे हुए थे। जिनकी सुगन्ध से सारा वातावरण भरा था। ऊँचे-ऊँचे वृक्षों की टहनियों पर बैठे तरह-तरह के पक्षी चहचहा रहे थे जिससे वातावरण और रसमय हो रहा था। जमीन पर मखमल जैसी मुलायम घास थी।

सच कहता हूँ। सब कुछ सपना-सपना सा लग रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे किसी अभौतिक जगह में प्रवेश कर गया हूँ मैं।

मुँह बाये मुग्ध भाव से सिर घुमा-घुमाकर मैं चारों तरफ देख रहा था। उस महान् और परम योगी की अद्‌भुत कृति। और तभी एक अपूर्व घटना घटी। मैंने देखा अचानक न जाने कहाँ से दर्जनों युवतियाँ वहाँ आ गयीं। आश्चर्य की बात तो यह थी कि सभी की आयु बराबर थी। इतना ही नहीं रूप, रंग और कद भी समान थे। सोलह वर्ष से अधिक आयु की नहीं थीं वे। सभी के बाल खुलकर पीठ पर बिखरे हुए थे। शरीर पर गेरुये रंग की साड़ी थी और गले में पड़ी थी स्फटिक की मालायें। सभी का चेहरा अपूर्व तेज से दमक रहा था और विलक्षण शान्ति छायी थी वहाँ।

युवतियों के हाव-भाव से मुझे ऐसा लगा कि वे सब किसी के आने की प्रतीक्षा कर रही हैं। मेरा अनुमान गलत नहीं था। थोड़ी ही देर बाद मैंने देखा कि रुपहले प्रकाश का एक तेजोमय-पुंज वहाँ सहसा प्रकट हुआ। वह प्रकाश-पुंज कैसा था, इसका ठीक-ठीक वर्णन न कर सकूँगा मैं। बस आप समझ लीजिये कि अद्‌भुत था वह अवर्णनीय प्रकाश-पुंज। उसके चारों ओर सुनहरे रंग का वलय था—जिसमें से रश्मियाँ निकल कर चारों ओर बिखर रही थीं। वह प्रकाश-पुंज बाग से धीरे-धीरे चल कर आश्रम के भीतर जाने लगा। युवतियाँ भी उसके पीछे-पीछे चलने लगीं।

लामा से यह पूछने पर कि वह प्रकाश-पुंज कैसा है, तो उसने बतलाया कि वह आत्मशरीर है।

आत्मशरीर? चौंक कर बोला मैं।

हाँ, आत्मशरीर।' लामा ने कहा—योगियों का आत्मशरीर ऐसा ही होता है।

किस योगी का है यह आत्मशरीर?

उसी महान् और परम योगी का जिसकी यह अलौकिक रचना है। लामा ने कहा।

अच्छा। कहकर मैं अपलक देखने लगा जाते हुए उस प्रकाश-पुंज की ओर।

धीरे-धीरे चलकर आँगन के एक ओर बने स्फटिक के चबूतरे पर स्थिर हो गया वह प्रकाश-पुंज। स्थिर होते ही सभी युवतियाँ चारों ओर बैठ गयीं और एकटक निहारने लगीं उस प्रकाश-पुंज की ओर। उस समय बड़ा ही अलौकिक और आध्यात्मिक वातावरण था। मेरे पूछने पर लामा ने बतलाया कि वे युवतियाँ योगकन्या हैं। कई जन्मों की साधना के बाद वे सब इस दिव्य स्थिति को प्राप्त की हैं। योग में इसी को कैवल्य अवस्था कहते हैं। ये सब भी आत्मशरीर धारिणी ही हैं, लेकिन मनोरंजन के लिये इन सभी ने भौतिक देह की रचना कर ली है।

क्या वह संभव है?

क्यों नहीं। लामा ने कहा, आत्मशरीर को प्राप्त कर लेने के बाद योगात्मायें इच्छानुसार कभी भी अपने लिए स्वयं भौतिक देह की रचना कर सकती हैं।

जब मैं लामा से यह सब बातें कर रहा था उसी समय अपने आप मेरी नजर घूम गयी प्रकाश-पुंज की ओर और उस पर नजर पड़ते ही एकबारगी स्तब्ध रह गया मैं।

(६)

वह प्रकाश-पुंज धीरे-धीरे मानव-आकृति में बदलता जा रहा था। कौतूहल और आश्चर्य से देख रहा था मैं उसकी ओर। कुछ ही देर बाद उस प्रकाश-पुंज की जगह एक दिव्य शरीरधारी महात्मा बैठे हुए मुझे दिखाई दिये। वे पद्मासन की मुद्रा में थे और उनकी आँखें बन्द थीं। निर्विकार भाव से ध्यानस्थ बैठे हुये थे महात्मा। वे सभी युवतियाँ चारों ओर से उनको घेरे हुए बैठी थीं। कोई किसी से बोल नहीं रही थीं। सभी की मुख-मुद्रायें गम्भीर और निर्विकार थीं।

न जाने कब तक डूबा रहा मैं उस आध्यात्मिक वातावरण के अथाह शान्ति सागर में। सहसा बादल के गरजने जैसी आवाज से सारा वातावरण गूँज उठा और उसी के साथ कड़कड़ाकर बिजली जैसी रोशनी भी चमकी। जलते पारे जैसी तीखी रेखा उस वातावरण में एक कोने से दूसरे कोने तक कौंध गयी एकबारगी। हजारों मैग्निशियम के तारों जैसे प्रखर आलोक से उद्भाषित हो उठा सारा रहस्यमय वातावरण और दूसरे ही क्षण मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। मैंने आँखें बन्द कर लीं। और जब आँखें खुलीं तो जानते हैं, मेरे सामने क्या था—युत्सुंग भर्राये स्वर में बोले—वही सब था जो पहले था। शुभ्र आलोकमय शान्त वातावरण और उस वातावरण में आकण्ठ डूबी हुई संग्रीला घाटी। चारों तरफ गहरी नीरवता छायी हुई थी। एकाएक जैसे मेरी तन्द्रा भंग हुई। चारों तरफ नजरें घुमाकर देखा मैंने। लामा वहाँ कहीं नहीं था। न जाने कहाँ गायब हो गया वह।

फिर आप वापस कैसे लौटे? उत्सुक होकर पूछा मैंने।

बतला नहीं सकता। स्वयं मुझे मालूम नहीं कि उस रहस्यमयी घाटी से निकलकर कैसे मैं इस संसार के वातावरण में आया। पहले की ही तरह भर्राये स्वर में बोले युत्सुंग। मगर हाँ, जब मेरी बाह्य चेतना लौटी तो ऐसा लगा कि मैं गहरी नींद से जगा हूँ। और उस गहरी नींद में एक ऐसा लम्बा सपना देखा है मैंने—जिसे कभी भी भुलाया न जा सकेगा। लेकिन उन तमाम अलौकिक दृश्यों और घटनाओं को सपना क्यों कहा जाय? सपना तो सपना होता है और सत्य, सत्य ही होता है। जैसे अपने आपसे बोले वह—हजारों फुट ऊँची दुर्गम पर्वत मालाओं से घिरी उस रहस्यमयी घाटी की अब तक न जाने कितने लोगों ने खोज की, लेकिन किसी को सफलता नहीं मिली। यहाँ तक कि काफी लम्बे अरसे से चीन भी उसकी तलाश में है। पर उसे भी अभी तक निराशा ही हाथ लगी।

मनोयोग से युत्सुंग की बात सुन रहा था, लेकिन जब उन्होंने अन्त में यह चर्चा की तो एकबारगी चौंक पड़ा मैं। और आश्चर्य मिश्रित स्वर में बोला—क्या कह रहे हैं आप?

मैं ठीक कह रहा हूँ शर्मा जी! आपको विश्वास होना चाहिए मेरी बात पर। आपको यह भी सुनकर घोर आश्चर्य होगा कि अक्टूबर १९६२ में पं० जवाहरलाल नेहरू की प्रतिष्ठा पर आघात पहुँचाने और भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था पर प्रहार करने की नीयत से नहीं बल्कि उसी संग्रीला घाटी का पता लगाने और उस पर अपना अधिकार करने के उद्देश्य से चीन ने भारत पर आक्रमण किया था।

अच्छा! जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाते हुए मैंने कहा और फिर अपनी जगह पर सँभल कर बैठ गया मैं इत्मीनान से।

युत्सुंग आगे बोले—क्या आपने कभी गहराई से विचार किया है इस प्रश्न पर कि भारत पर चीन ने क्यों और किस लिए आक्रमण किया था? सच तो यह है कि आज तक कोई भी इस प्रश्न का अधिकारपूर्वक और स्पष्ट शब्दों में उत्तर नहीं दे सका है। चीनियों ने आक्रमण क्यों किया? इसके साथ आश्चर्य की बात यह भी है कि चीनियों ने एक पक्षीय युद्ध-विराम घोषित करने के बाद तुरन्त अपनी सेनायें क्यों वापस कर ली? और इससे भी आश्चर्यजनक और विचारणीय बात तो यह है कि चाऊ एन० लाई, माओत्से तुंग या हुआ कुओ फंग किसी भी चीनी नेता ने अभी तक इस प्रश्न का कोई ठोस उत्तर नहीं दिया है।

युत्सुंग के इस तर्कपूर्ण बातों पर मैंने गम्भीरतापूर्वक विचार किया। मुझे उचित प्रतीत हुआ। भारत पर चीनियों का आक्रमण और उनकी वापसी सचमुच अभी तक रहस्य ही बनी हुई है। युत्सुंग ने कहा—मेरे सिवा तवांग मठ में रहने वाले कुछ ही लामा ऐसे हैं जो चीनी आक्रमण के वास्तविक तथ्यों से भली-भाँति परिचित हैं। जैसे आपने मेरी बातों पर सहसा विश्वास नहीं किया उसी प्रकार इस मामले में उन लामाओं की बातों पर सहज कोई विश्वास न करेगा। युत्सुंग ने थर्मस से चाय उड़ेली और उसकी एक चुस्की ली और फिर आगे कहा—क्या आपने जेम्स हिल्टन का नाम सुना है?

हाँ, सुना तो है। उँगलियों में फँसी सिगरेट की राख झाड़ते हुये मैंने उत्तर दिया।

जेम्स हिल्टन की लिखी हुई एक पुस्तक है 'लास्ट होराइजन'। अपनी इस पुस्तक में जेम्स हिल्टन ने कुछ ऐसी रहस्यमयी घाटियों का वर्णन किया है, जहाँ के लोग सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहते हैं, लेकिन वृद्ध नहीं होते। इसी संदर्भ में उसने संग्रीला का भी उल्लेख किया है। पुस्तक को पढ़कर कई देशी-विदेशी खोजियों ने संग्रीला घाटी का पता लगाने की कोशिश की, लेकिन सफल नहीं हुए। कुछ तो हमेशा के लिए गायब ही हो गये, पता ही नहीं चला उनका। खैर।

चीनियों को संग्रीला घाटी के विषय में कब और कैसे जानकारी हुई, यह तो निश्चित रूप से नहीं बतलाया जा सकता। लेकिन यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि संग्रीला घाटी के प्रति प्रबल जिज्ञासा के वशीभूत होकर ही १९५० में चीनियों ने तिब्बत पर अधिकार किया था। तिब्बत पर उनका आक्रमण करने का एकमात्र कारण संग्रीला घाटी का पता लगाना था। लेकिन वे अपने प्रयास अथवा उद्देश्य में सफल नहीं हुए। उनके टोही विमान भी नियमित रूप से उस घाटी का पता लगाने के लिए तिब्बत के आकाश में उड़ान भरते रहते हैं—परन्तु अभी तक वे भी सफल नहीं हुए।

चीनियों को अभी तक उस घाटी का पता नहीं चला यह आप कैसे जानते हैं? दूसरी सिगरेट सुलगाते हुए मैंने पूछा।

मेरी बात सुनकर युत्सुंग एक बार मुस्कराये और फिर उसी मुद्रा में बोले, शर्मा जी! जिस दिन चीनियों को संग्रीला घाटी का पता चल जायेगा उसी दिन चीन के सभी नेता वहाँ जायेंगे। चीन की राजधानी पीकिंग में कोई भी नजर नहीं आयेगा। १९६० में चीन सरकार उस अगम्य-अगोचर रहस्यमयी घाटी का पता लगाते-लगाते रह गयी।

अच्छा, कैसे? आश्चर्य से पूछा मैंने।

दरअसल हुआ यह कि संग्रीला घाटी का एक लामा भ्रमण करता हुआ ल्हासा पहुँच गया था। उसका उद्देश्य था दलाई लामा से भेंट करना। लेकिन दुर्भाग्यवश उस पर चीनियों की नजर पड़ गयी और उन्होंने उसे पकड़ लिया। उन्हें कुछ शक हो गया था लामा पर। वह काफी वृद्ध था, लेकिन उसका स्वास्थ्य अच्छा था। उस समय चीनियों की आश्चर्य और कौतूहल की सीमा न रही। जब चीनी डॉक्टरों और वैज्ञानिकों ने जाँच और परीक्षण कर बतलाया कि उसकी आयु लगभग चार सौ वर्ष की है। लेकिन उसकी शारीरिक और मानसिक स्थिति चालीस वर्ष की आयु के सामान्य स्वास्थ्य वाले व्यक्ति के समान है। यह रिपोर्ट सुनते ही चीनियों को विश्वास हो गया कि अवश्य वह लामा संग्रीला घाटी का निवासी है। और यह विश्वास होते ही चीनियों ने उससे पूछताछ शुरू कर दी। काफी यातना दी। हर प्रकार से डराया-धमकाया भी। लेकिन उसने घाटी का पता नहीं बतलाया। एक चुप तो हजार चुप। चीनियों की भयंकर यातनायें भी उसकी चुप्पी को तोड़ न सकीं।

थोड़ा रुक कर फिर हो-हो कर हँसते हुये युत्सुंग ने बतलाया—माओत्से तुंग स्वयं व्यक्तिगत रूप से संग्रीला घाटी का पता पाने के लिए अत्यधिक उत्सुक थे। वे वहाँ जाकर

स्थायी रूप से रहना चाहते थे। वे शतजीवि की इच्छा रखते थे। उनकी इच्छा कई सौ वर्ष जीवित रहने की थी। क्योंकि उन्हें भय था कि उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी जलाई हुई क्रान्ति की ज्योति बुझ जायेगी।

जब माओ को लामा के असाधारण चुप्पी का पता चला तो उन्होंने एक योजना बनाई और उन्हें विश्वास था कि उनकी योजना सफल हो जायेगी। उन्होंने तत्काल लामा को छोड़ने का आदेश दे दिया। उन्होंने सोचा कि छूटने पर लामा ल्हासा से भाग कर अवश्य अपनी घाटी में ही जायेगा और इस प्रकार उनको घाटी का पता चल जायेगा। लेकिन लामा छूटने के बाद घाटी की ओर न जाकर भारत की ओर चला गया और किसी प्रकार लुकते-छिपते भारतीय प्रदेश में प्रवेश कर अन्त में तवांग मठ में आ गया वह। उस समय संयोगवश मैं भी तवांग मठ में था।

तब तो आपकी उस लामा से बातें हुई होंगी। उत्सुकता से पूछा मैंने।

क्यों नहीं! अगर उससे भेंट न हुई होती तो इन तमाम रहस्यमय तथ्यों का पता कैसे चलता मुझे।

धीरे-धीरे चाय की चुस्की लेते हुए युत्सुंग बोले—घटना अगस्त १९६२ की है। तवांग मठ में पहुँचते ही लामा ने संग्रीला घाटी के स्थान का एक नक्शा बनाया। वास्तव में वह दलाई लामा से मिलना चाहता था और मिलकर वह नक्शा उन्हें देना चाहता था, लेकिन तभी चीनी सैनिकों ने आक्रमण कर दिया। परिणाम यह हुआ कि न वह दलाई लामा से मिल पाया और न तो नक्शा ही दे सका उन्हें।

आपके कहने का मतलब यह है कि उस लामा को पकड़ने के लिए ही चीनियों ने भारत पर आक्रमण किया था। लेकिन मुझे पता नहीं क्यों इस बात पर विश्वास नहीं हो रहा है, मैंने कहा।

स्पष्ट है। युत्सुंग ने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया—अन्यथा वे उस लामा को वापस कैसे प्राप्त कर सकते थे?

युत्सुंग के इस आश्चर्य जनक तथ्यों पर काफी देर तक विचार करने के बाद मैंने पूछा—दालांग और अन्साई चीन जैसे क्षेत्रों में लड़ाई हुई, उसके सम्बन्ध में आपका क्या विचार है? क्या कहेंगे आप उसके लिए? यदि वे तवांग मठ को जानने के लिए उस लामा को ही पकड़ना चाहते थे, तो दूसरे स्थानों पर आक्रमण करने की क्या आवश्यकता थी?

यह अति आवश्यक था। जरा गहराई से समझने का प्रयास कीजिए। युत्सुंग ने उत्तर दिया, चीनियों ने जब तवांग मठ पर आक्रमण किया तो प्रत्याक्रमण से अपनी सुरक्षा के लिए दूसरे क्षेत्रों में भी युद्ध करना आवश्यक था।

कहने की आवश्यकता नहीं। युत्सुंग के इन तमाम तथ्यों और सिद्धान्तों पर जब मैंने काफी गहराई से सोचा और विचार किया तो मुझे सब कुछ तर्कसंगत ही प्रतीत हुआ।

क्या वह लामा चीनियों के हाथ लग गया? मैंने पूछा।

नहीं। युत्सुंग सिर हिलाकर बोले—जब यह देखा गया कि चीनी सैनिकों का झुण्ड तवांग मठ की ओर बढ़ता चला आ रहा है तब हम सब लोग तत्काल समझ गये कि वे क्या चाहते हैं? लामा तो पकड़ा ही जाता और पकड़े जाने के बाद उसकी जो दुर्दशा होती वह अलग। साथ-साथ हम सब लोगों को भी खतरा था। इसलिए लामा को घोड़े पर बिठाकर तीन-चार लोगों के साथ मैदानी इलाके की ओर भेज दिया गया मगर दुर्भाग्य। जब वह तेजपुर की निचली पहाड़ियों के करीब पहुँचा तो उसके घोड़े का पैर फिसल गया। लामा पच्चीस-तीस फुट नीचे खड्ड में गिर गया। सिर के चट्टान से टकरा जाने के कारण उसकी वहीं मृत्यु हो गयी। तवांग मठ से भागकर लामा तेजपुर गया है, जब इसकी सूचना चीनियों को मिली तो वे तेजी से पीछा करते हुए तेजपुर की ओर चल दिये। रास्ते में ही उन्हें खून से लथपथ लामा का शव मिला जिसे तत्काल संरक्षण में लेकर तुरन्त लामा की मृत्यु की सूचना चीनी सेनापति को दे दी गयी। चीनियों ने देखा कि जिस व्यक्ति की उन्हें खोज थी वही अब इस संसार में नहीं है, तब वे आगे बढ़ने के बजाय वापस लौट गये। इस प्रकार एकतरफा युद्ध-विराम हो गया।

आपने इन तमाम बातें और इन तमाम घटनाओं के संबंध में भारत सरकार को क्यों नहीं अवगत कराया? मैंने पूछा।

मेरी बात सुनकर युत्सुंग एक बार सहज भाव से मुस्कराये और फिर बोले—भला कौन विश्वास करता मेरी बात पर? भारत सरकार के अधिकारी लोग मेरी सूचना पर कभी भी और किसी हालत में विश्वास नहीं करेंगे इसलिए मैंने इन सारी बातों और घटनाओं की सूचना देना उचित नहीं समझा। आप अपने को ही लीजिए, जो कुछ मैंने बतलाया है वह सब पूर्णरूप से सत्य हैं। इसमें संदेह नहीं। अन्त में मैं आपको यह भी बतला दूँ कि संग्रीला और संग्रीला के समान घाटियों की खोज चीनी उस समय से कर रहे थे जब उन्होंने भारत पर आक्रमण किया था और अभी भी बराबर कर रहे हैं। उनके टोही विमान अभी भी चक्कर काटते रहते हैं तिब्बत के ऊपर। इसी से आक्रमण के सभी रहस्यमय पहलुओं की व्याख्या हो जाती है। आप स्वयं तिब्बती इलाकों में घूम चुके हैं। इसलिए आप तो जानते ही होंगे कि तिब्बत के लोग संग्रीला और उसके जैसे अन्य घाटियों के अस्तित्व से कितना दृढ़ता पूर्वक विश्वास करते हैं। 'लास्ट होराइजन' को लिखने की प्रेरणा जेम्स हिल्टन को कहाँ से मिली थी? जानते हैं आप? यह प्रेरणा भारत में ही एक तिब्बती से इस संबंध में हुई बातचीत से ही मिली थी।

उस नक्शे का क्या हुआ? मैंने पूछा।

मुझे नहीं मालूम। तवांग पर अधिकार कर लेने के बाद चीनियों ने मठ का कोना-कोना छान मारा लेकिन उनको भी वह नक्शा नहीं मिला।

संभव है, जाते समय लामा ने नक्शे को मठ में ही किसी सुरक्षित स्थान पर छुपा दिया हो। मैंने कहा।

हो सकता है, लेकिन इतने बड़े मठ में नक्शे के लिए एक-एक इंच जमीन खोजने

का इतना बड़ा कष्ट कौन उठायेगा? किसके पास है भला इतना समय? मैं तो यही समझता हूँ कि ऐसे स्थान को अज्ञात और रहस्यमय रहने देने में ही भलाई है। खैर ।

सृष्टि का विस्तार असीम है शर्मा जी! युत्सुंग जरा गम्भीर स्वर में बोले और उस असीम विस्तार में पृथ्वी एक अत्यंत रहस्यमय लोक है। इसमें ज्ञान की अपेक्षा विज्ञान अधिक व्यापक है। रहस्य के अभी इतने पर्दे पड़े हैं कि उनके समझ से अब तक की सारी जानकारी नगण्य है। सूक्ष्म जगत् तो अभी पूर्णतया अज्ञात बना हुआ है। प्रकृति रहस्य के स्थूल पक्ष कितने ही ऐसे हैं, जो अब भी मनुष्य की बुद्धि के सामने रहस्य हैं। प्रकृति को समझ लेने का दावा करने वाली वैज्ञानिक बुद्धि भी जब उन रहस्यात्मक पक्षों का पर्यविक्षण करती हैं, तो उसे देखकर हतप्रभ रह जाती हैं। खोजने में ऐसा कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता जो भौतिक विज्ञान की विश्लेषणात्मक पद्धति अथवा नियमों के अन्तर्गत आता हो। बौद्धिक असमर्थता व्यक्त करते हुए हारकर उन्हें अविज्ञान रहस्य घोषित किया जाता है।

इतने पर भी तथ्य और सत्य अपने स्थान पर यथावत हैं। सृष्टि की कोई भी घटना ऐसी नहीं है, जो कारणों से रहित हो अथवा अवैज्ञानिक हो। यह बात दूसरी है कि भौतिक विज्ञान उन रहस्यमय क्षेत्रों में पहुँचकर अविज्ञान सूत्रों को खोज निकालने में असमर्थ सिद्ध हो रहा हो।

इस धरती पर संग्रीला और उससे मिलती-जुलती अन्य घाटियों के अलावा भी बहुत से ऐसे स्थान हैं, जो भू हीनता और वायुशून्यता से प्रभावित चतुर्थ आयामी हैं। उन रहस्यमय स्थानों में भी जो लोग गये—वे हमेशा के लिए गायब हो गये। आज तक उनका कोई पता न चला। कारणों का पता लगाने में वैज्ञानिकों ने जी-जान से प्रयत्न किया, लेकिन सफलता नहीं मिली। वे हर तरह से अपने को असमर्थ अनुभव करने लगे। आज भी उनकी असमर्थता पूर्ववत बनी हुई है।

यदि वास्तव में देखा जाय, तो भू हीन और वायुशून्य स्थानों में लोगों के गायब होने की घटनाओं का क्रम पिछले लगभग दो सौ वर्षों से चला आ रहा है। पहली घटना १८वीं सदी में घटी थी। उस समय स्पेन और फ्रांस के बीच भयानक युद्ध हो रहा था। दो हजार स्पेनी सैनिकों का नेतृत्व कर रहे थे कमाण्डर जार्नबाव। सैनिक तीन टुकड़ियों में बँटकर चल रहे थे। एकाएक लगभग पन्द्रह सौ सैनिकों की एक टुकड़ी देखते ही देखते गायब हो गयीं, जिसे खोजने के लिए विशेषज्ञों की एक टोली भेजी गयी लेकिन टुकड़ी का पता कहीं न चला।

ऐसी ही एक घटना १८५६ में घटी। छः सौ पचास फ्रांसीसी सैनिकों की एक टोली निकटवर्ती जर्मन चौकी पर हमला करने के लिए बढ़ रही थीं तभी अचानक एक हल्का-सा बवण्डर आया और देखते ही देखते छः सौ पैंतालीस सैनिक हवा में गायब हो गये। महीनों तक खोजबीन चलती रही लेकिन उन सैनिकों का कोई चिह्न तक नहीं मिला।

इसी प्रकार अमेरिका का टेनेसी निवासी एक किसान डेविड लाग अपने दो मित्रों के साथ २३ सितम्बर १८८८ को सायंकाल घूमने निकला। तीनों मित्र एक साथ थे। अचानक डेविड हवा में गायब हो गया। काफी खोज की गयी लेकिन उसका पता न चला। उसके मित्रों में एक न्यायाधीश था। उसने कहा कि एक अविश्वसनीय किन्तु सत्य घटना है। जिसका कोई समाधान खोजने पर नहीं मिलता।

इस तरह की चौथी घटना सन् १९२० में लन्दन के एक युवा सांसद विक्टर ग्रेस के साथ घटी। वह लन्दन की एक दुकान से जैसे ही बाहर निकले वैसे ही हवा में गुम हो गये।

१३ जुलाई, १९५० में भी इसी तरह का हादसा हुआ। पोलैण्ड निवासी पादरी केनरी वोर्निस्को अपने मित्र के पास जा रहे थे। अभी १०० गज ही गये होंगे कि गायब हो गये। लाख खोजने पर भी वे नहीं मिले।

ऐसी तमाम अनेक घटनाओं का विवरण 'हिस्ट्री आफ वण्डरफुल इवेंट्स' नामक पुस्तक में मिलता है। मगर उनका अभी तक रहस्योद्घाटन न हो सका है। खैर, इसी प्रकार वायुशून्यता में भी गायब होने की कई महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं।

१२ सितम्बर, १९७१ को कैप्टन लजान रोमैरा एवं उनके साथी पायलट फ्लोरिडा के होम स्टेट एयर बस से जैट कैन्टर द्वितीय से उड़ान भरी। रडार यंत्र से सियामी के दक्षिण पूर्व जैट को उड़ते हुये देखा गया। उसके तुरन्त बाद वह रडार के पर्दे पर से गायब हो गया। एयर फोर्स और कोस्टल गार्ड के द्वारा बड़े पैमाने पर खोज की गई, परन्तु गायब हुए जैट एयर लाइनर का कोई संकेत प्राप्त नहीं हुआ।

भू हीनता और वायुशून्यता का प्रभाव पानी पर भी पड़ता है। इसके लिए अभिशप्त वरमुडा त्रिकोण में अब तक न जाने कितने जलयान गायब हो चुके हैं।

यह बात नहीं है कि आज के वैज्ञानिक भू हीनता और वायुशून्यता के वाक्यों को अस्वीकार करते हैं, लेकिन इस प्रसंग में उनका कहना है कि समय-समय पर कुछ अदृश्य एलेक्ट्रोमैग्नेटिक विक्षोभी के कारण रेडियो एवं इलेक्ट्रानिक उपकरण अपना काम करना बन्द कर देते हैं जिसके फलस्वरूप यंत्र तथा मानव शरीर अदृश्य हो जाते हैं।

यह तो है वैज्ञानिकों की दलील। मगर विस्तृत खोज के दौरान एक ऐसे ब्लैक होल का पता चला है जो पृथ्वी और सूक्ष्म लोक के बीच सेतु का काम करता है। गायब हुए मनुष्य और पदार्थ इस मार्ग से कहाँ चले जाते हैं तथा वहाँ जाकर इनकी क्या स्थिति होती है? इस संबंध में विज्ञान की खोज अभी इतनी लम्बी नहीं हुई है जितनी कि ऐसे रहस्यों से पर्दा उठाने के लिए आवश्यक हैं। फिर भी कुछ अतिरिक्त सूत्र ऐसे हाथ लगे हैं जिनसे प्रतीत होता है कि यह ब्लैक होल पृथ्वी से अन्य लोगों का संबंध जोड़ता है। युत्सुंग का तो दृढ़ स्वर में यहाँ तक कहना था कि इस पृथ्वी पर एकमात्र संग्रीला ही नहीं जहाँ-जहाँ भूहीनता और वायुशून्यता है वहाँ-वहाँ ब्लैक होल हैं।

जहाँ तक वरमुडा का प्रश्न है उसके संबंध में दीर्घ काल तक गहन अध्ययन करने वाले विश्वविख्यात आइवान सैण्डरसन का कहना है कि वरमुडा त्रिकोण की ही तरह

ग्यारह और ब्लैक होल हैं। वरमुडा त्रिकोण के बाद सबसे खतरनाक क्षेत्र जापान के निकट का क्षेत्र है—जो शैतानी समुद्र के नाम से प्रसिद्ध है। वैज्ञानिक उसे 'डेमिल्स-सी' कहते हैं। डेमिल्स के बाद मेडिटेरियन के पश्चिम में तीसरा ब्लैक होल है। चौथा है अफगानिस्तान का मृत्युक्षेत्र। पाँचवाँ है हवाई द्वीप के पूर्व में। छठा है आस्ट्रेलिया के दक्षिण-पश्चिम। सातवाँ है आस्ट्रेलिया के पास तासकान समुद्र में। आठवाँ है प्रशान्त महासागर में। नवाँ है अर्जेन्टा के दक्षिण-पूर्व सीमा तट पर। दसवाँ है दक्षिण अफ्रीका के दक्षिण-पूर्व तट पर। ग्यारहवाँ है उत्तरी ध्रुव के पास और बारहवाँ है दक्षिणी ध्रुव के पास। इन सभी ब्लैक होलों में वायुशून्यता के साथ ही साथ जलशून्यता भी है। जलयान और नभयान दोनों गायब होते हैं यहाँ। मगर, गायब होकर कहाँ चले जाते हैं वैज्ञानिकों के पास इसका पक्का उत्तर नहीं है। विज्ञान इसका निश्चित हल नहीं पा सका है। बस तरह-तरह की अटकल बाजियाँ हैं इस संबंध में वैज्ञानिकों के पास। यह निश्चित है कि विज्ञान जिस समस्या का हल नहीं कर पाता और जिस बात का सही-सही उत्तर नहीं दे पाता बुद्धिजीवी लोग उस समस्या को हल करने के लिए और उस बात का उत्तर पाने के लिए 'पराविद्या' का सहारा लिया करते हैं। इस संबंध में भी ऐसा ही हुआ। अमेरिका के परामनोवैज्ञानिक राड स्लेहकर ने कहा कि इन तमाम ब्लैक होलों का संबंध अनिन्द्रिय से है। उनके कथनानुसार वातावरण में अनेक गुप्त सुरंगें हैं, जो आँखों से दिखलाई नहीं देतीं, मगर वो किसी अदृश्य तूफानी भँवर की तरह सभी को अपनी ओर खींच लेती हैं। वैज्ञानिक महोदय का कहना तो यहाँ तक है कि १९४५ में गायब हुआ हवाई जहाज के एक पायलट से १९६५ में सम्पर्क भी स्थापित किया था। तिब्बत के प्रसिद्ध लामा लौवसंग राम्पा का कहना है कि ब्रह्माण्ड में जितने भी जड़ या चेतन हैं इन सबका एक-एक प्रतिपिण्ड भी है उसी प्रकार, जैसे चुम्बक के दो ध्रुव होते हैं। इस संसार में जहाँ-जहाँ ब्लैक होल हैं वहाँ-वहाँ उनका संबंध दूसरे संसार से है। जो भी व्यक्ति या यान होल के सामने आता है वह तत्काल उसके माध्यम से दूसरे संसार में चला जाता है।

भौतिक वैज्ञानिक हेराल्ड वारलिंग इन तमाम ब्लैक होलों को अन्तरिक्ष के किन्हीं लोकवासियों का क्षेत्र मानते हैं। अर्जेन्टाइना के वैज्ञानिक रोमनी डंक भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं। डॉ० मैंशन वैलेन्टाइन का कहना है कि अब तक के सभी गायब यान और मनुष्य एक अन्य आयाम एवं चुम्बकीय पर्यावरण में उपस्थित हैं जिन्हें अन्य ग्रह के निवासियों ने उत्पन्न किया है। आइस्टीन ने समय को चौथा आयाम माना है। इन्ही तथ्यों के आधार पर मैंने संग्रीला और उसके जैसे अन्य क्षेत्रों को चतुर्थ आयामी माना है।

अमेरिका के 'नासा शोध संस्थान' ने अन्तरिक्ष का एक एक्सरे तैयार किया है जिससे स्पष्ट होता है कि ब्रह्माण्ड से अनेक प्रकार के विचित्र विद्युत प्रवाह बराबर हर समय एक ओर से दूसरी ओर दौड़ रहे हैं। उनकी प्रवाह गति विलक्षण है। वे विद्युत प्रवाह कहाँ से आते हैं और कहाँ जाते हैं वैज्ञानिकों को इसका कोई पता नहीं है, मगर इस बात का पता उन्हें अवश्य है कि जलधारा के समान उन विद्युत प्रवाहों की असंख्य शाखायें अन्तरिक्ष में चारों ओर फैली हुई हैं और बराबर गतिशील भी हैं। टैक्सास

विश्वविद्यालय के अन्तरिक्ष वैज्ञानिक जान छीलर ने इन विद्युत प्रवाहों को क्वासर्स ऊर्जा स्रोत बतलाया है। उनका यह भी कहना है कि संव्याप्त रेडियो तरंगें इसी स्रोत से जन्म लेने वाली लहरें अथवा तरंगें हैं। अन्तरिक्ष भौतिकी के प्रोफेसर हर्वर्ट गर्सकी ने उन्हीं ब्रह्माण्ड विद्युत तरंगों को ब्लैक होल के नाम से सम्बोधित किया है। उपर्युक्त विद्युत प्रवाह का ही नाम ब्लैक होल है।

कम्पास की सुई जिस दिशा में उत्तर दिशा का संकेत करती है वह वास्तविक या भौगोलिक उत्तर दिशा से सर्वथा भिन्न है। मगर यह रहस्य की बात है कि बारहों ब्लैक होलों के क्षेत्र में कम्पास की सुई जो उत्तर दिशा बतलायी है वही उन दोनों का वास्तविक या भौगोलिक उत्तर है। खैर, जो भी हो, यह तो निश्चित है कि अभी तक इस संबंध में बड़े-बड़े शोधकर्त्ता और वैज्ञानिक अन्तिम निष्कर्ष पर नहीं पहुँचे हैं। और भविष्य में कभी पहुँच पायेंगे या नहीं, यह निश्चित रूप से नहीं बतलाया जा सकता। सच तो यह है कि यह विषय भौतिक विज्ञान की सीमा के बाहर है। बड़े-बड़े वैज्ञानिक इस समस्या को सुलझाने में हमेशा अपने आपको असमर्थ ही पायेंगे क्योंकि यह विषय अथवा यह समस्या पराविज्ञान के क्षेत्र में आता है। कभी समाधान कर सकेंगे और कभी सुलझा सकेंगे तो परावैज्ञानिक ही इसे। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि इन तमाम अभिशप्त क्षेत्रों में ही सबसे अधिक उड़न तश्तरियाँ दिखाई देती हैं। इससे भी स्पष्ट होता है कि इन क्षेत्रों का अन्य लोकों से रहस्यमय अगोचर संबंध है। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उड़न तश्तरियाँ अन्तरिक्ष लोकों से संबंध रखती हैं और उनका निर्माण हमसे सैकड़ों-हजारों गुना अधिक विकसित तकनीक एवं यांत्रिकी द्वारा किया गया है। पृथ्वी पर वायुयान का आविष्कार कुछ ही दशक पूर्व है, लेकिन आकाश में उड़नशील अनेकशः विभिन्न आकारों वाले रहस्यमय यानों को देखे जाने की सूचनाएँ प्राचीन काल से ही उपलब्ध होने लगी थीं। इनमें से कई रहस्यमय यानों के देखने का प्रमाण तो लिखित रूप से भी मिलता है। ऐसी भी सूचनाएँ मिलती हैं, जिससे पता चलता है कि विश्व के विभिन्न खण्डों में से रहस्यमय उड़न तश्तरियाँ सुदूर अतीत के उस युग में भी देखी गयी थीं जो इतिहास के लिये आज भी अंधकार युग बना हुआ है।

ooo

२

तिब्बत का वह रहस्यमय मठ

तिब्बत शुरू से ही एक रहस्यमय देश रहा है। आज भी लोग इससे पूरी तरह परिचित नहीं हैं। अपरिचित होने का एकमात्र कारण है उसकी दुर्गमता। दक्षिण और पश्चिम की ओर से तिब्बत हिमालय की दुर्गम पर्वतमालाओं से घिरा है। ल्हासा से १०० मील की दूरी पर जो विशाल भूमि है, वह तिब्बत को और भी दुर्गम और रहस्यमय बनाये हुए है। यह संसार का सर्वोच्च पठार है। समुद्र की सतह से इसकी ऊँचाई लगभग १६,५०० फुट है। यही कारण है कि साल में आठ महीने तिब्बत की भूमि बर्फ से ढँकी रहती है।

तिब्बत जाने के लिए दो रास्ते हैं--पहला है कश्मीर होकर और दूसरा है दार्जिलिंग होते हुए। इन दोनों रास्तों से तिब्बत की दूरी ३६० मील है। बीस-बीस हजार फुट ऊँची जोतों को पार करके एक महीने में ल्हासा पहुँचा जा सकता है। तिब्बत बौद्ध धर्मावलम्बी देश है। योग और तंत्र-मंत्र की गोपनीयता और साधना की दृष्टि से वह अत्यन्त रहस्यमय क्षेत्र है। वहाँ कम-से-कम छः-सात सौ बौद्धमठ हैं। कुछ मठ तो इतने बड़े हैं कि उनमें हजार-हजार से भी अधिक बौद्ध भिक्षु निवास करते हैं।

वहाँ कुछ तांत्रिक मठ भी हैं। विशेषतः कापालिक तांत्रिकों के। आदि शंकराचार्य द्वारा प्रताड़ित और वैदिक धर्म से प्रभावित तत्कालीन कापालिक सम्प्रदाय के आचार्यों ने उन मठों की स्थापना अपने धर्म-सम्प्रदाय और साधना की गोपनीयता की रक्षा के लिए की थी। वे मठ तिब्बत के उत्तरी प्रान्त में हिमालय की दुर्गम घाटियों में हैं, जहाँ साधारण लोगों का पहुँचना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव भी है।

वैदिक धर्म और संस्कृति के समान ही तांत्रिकों का भी धर्म और संस्कृति है। तांत्रिक साधना अत्यन्त गुप्त और रहस्यमय है। वह एकमात्र शक्ति-साधना है। उसका आन्तरिक रूप पूरी तरह योग पर आधारित है।

तांत्रिक साधना के कुल सोलह मार्ग हैं, उन्हीं में से एक है कापालिक साधना मार्ग। इस मार्ग के साधक शक्ति के साथ शिव के भी भक्त होते हैं। विपरीत रति काली उनकी इष्ट देवी होती हैं। वे लाल वस्त्र पहनते हैं, सिर पर जटा-जूट रखते हैं, मस्तक पर लाल सिन्दूर का गोल टीका और त्रिपुण्ड धारण करते हैं तथा गले में रुद्राक्ष की माला के साथ नर-मुण्ड भी पहनते हैं। उनका साम्प्रदायिक चिह्न भी नरमुण्ड ही है। वे अपनी

साधना पंच मकार से करते हैं। उनके तांत्रिक अनुष्ठान में 'नरवलि' का विशेष महत्त्व होता है। इसी प्रकार सभी तांत्रिक साधनाओं में शव-साधना का विशेष महत्त्व है और तिब्बत इस साधना का प्रमुख केन्द्र है।

तिब्बत के जिस रहस्यमय मठ का वृत्तान्त मैं आपको सुनाने जा रहा हूँ उसमें नर-बलि और शव-साधना दोनों होती थी। वह मठ एक प्रकार से उग्र और उन्मत्त कापालिकों का रहस्यमय केन्द्र था।

योग-तंत्र की रहस्यमयी एवं गोपनीय साधनाओं से परिचित होने तथा वहाँ प्रच्छन्न रूप से निवास करने वाले उच्चकोटि के योगियों और तांत्रिकों से भी परिचित होने के लिए मैंने तिब्बत की जीवन-मरण-दायिनी हिम-यात्रा की थी। मैं कुल तीन वर्ष तिब्बत में रहा। इस अवधि में मैंने वहाँ जो अनुभव किया और जो कुछ देखा-सुना, यदि वह सब लिपिवद्ध करूँ तो सचमुच महाभारत जैसा एक ग्रंथ तैयार हो सकता है। फिर भी मैंने इस संबंध में 'योगी और तांत्रिकों का रहस्यमय देश तिब्बत' नामक एक पुस्तक अवश्य लिखी है।

तिब्बत में मेरे पथ-प्रदर्शक थे एक तांत्रिक लामा। उनका नाम डुप्पा लामा था। उनसे मेरा परिचय 'ग्यांची' में हुआ था। उस समय ग्यांची में, ब्रिटिश सरकार का एक प्रतिनिधि रहा करता था। डुप्पा लामा ने काफी प्रयत्न करके उससे मुझे तिब्बत में प्रवेश की अनुमति दिलवायी थी। जब मैंने तिब्बत की हिम-भूमि में पैर रखा, उस समय सारे शरीर में एक सिहरन-सी दौड़ गयी थी।

चारों तरफ मीलों ऊँची हिमालय की चोटियाँ खड़ी थीं—आसमान को चुनौती देती हुई। क्षितिज के ओर-छोर तक फैला हुआ दुर्गम हिमाच्छादित पहाड़ी इलाका, जिसे देखकर ही मन में आतंक की अनुभूति होती थी। सामने मीलों तक फैली हुई हिम-घाटी और उसके बाद बर्फ से ढँकी चोटियाँ, जिनकी पृष्ठभूमि में था सुन्दर नीला आकाश! अद्‌भुत दृश्य था।

डुप्पा लामा ने कहा, 'इस घाटी के बाद पहाड़ों की तलहटी में वह मठ है, जिसकी आपने चर्चा की थी। उसका नाम वासुकी मठ है। कभी यह भयंकर कापालिकों की गुप्त साधना का केन्द्र था, मगर अब पिछले दो सौ वर्षों से वीरान पड़ा है। न उसमें कोई रहता है और न तो साधना-उपासना ही होती है।'

तीन दिन की यात्रा करने के बाद मैं पहाड़ों की तलहटी में पहुँचा। चारों ओर साँय-साँय हो रहा था। वातावरण में एक अबूझ-सी शून्यता भरी थी। वहीं भारतीय संस्कृति के इतिहास में प्रसिद्ध कापालिक सम्प्रदाय का मूक-साक्षी, अपने समय में तूफानी हलचल मचा देने वाली भयंकर कठोर और तामसिक तंत्र-साधना का प्रतीक नाग वासुकी मठ खण्डहर जैसा होकर भी अतीत की स्मृति के रूप में बाँकी भंगिमा से सिर ऊँचा किये खड़ा था।

काफी बड़ा मठ था वह। लम्बे-चौड़े विस्तृत आँगन के चारों ओर छोटे-छोटे साधना गृह बने थे और बीच में काफी ऊँची प्रस्तर वेदी पर लगभग बारह फुट लम्बी एक

प्रस्तर प्रतिमा स्थापित थी। वह प्रतिमा शायद किसी तांत्रिक देवी की थी। वह जितनी भव्य थी, उतनी ही भयंकर भी थी।

उस मूर्ति का मुख दस फण वाले सर्प का था। उसके चार हाथ थे। ऊपर वाले दो हाथों में खड्ग एवं नागपाश था और नीचे के हाथों में खप्पर और नरमुण्ड। गले में नाग-माला के साथ नरमुण्डों की भी माला थी, जो काफी नीचे तक झूल रही थी। प्रतिमा का एक पैर नग्न पुरुष की और दूसरा पैर नग्न स्त्री की छाती पर टिका था और ठीक उनके नीचे तंत्र की प्रसिद्ध हाकिनी-डाकिनी और साकिनी की मूर्तियाँ स्थापित थीं। सामने नर-बलि देने वाला यूथ था।

मठ के भीतर साँय-साँय हो रहा था। एक विचित्र-सी उदासी और अबूझी खिन्नता भरी थी पूरे मठ में। लाल पत्थरों से बनी उस शानदार गढ़ी जैसे मठ की धूल से अटी सीढ़ियाँ चढ़ते समय लगा, जैसे काफी लम्बे अरसे से कोई वहाँ न आया हो। टूटे-फूटे जर्जर दालानों-बरामदों में प्रवेश करते ही दहशत से भर उठा मन। मुझे म्लान, निस्तब्ध मठ में भयमिश्रित अनुभूति होने लगी। मुझे उस म्लान, निस्तब्ध धूल से सनी टूटी-फूटी बुर्जियों पर घूमते समय हर क्षण यही लगता था कि रुँधी हुई हवा की उस अवशता के बीच--लाल रेशमी परिधान में—पैरों में खड़ाऊँ और गले में रुद्राक्ष एवं नरमुण्डों की माला पहने, माथे पर सिन्दूर का गोल टीका और त्रिपुण्ड लगाये कोई भयंकर आकृति वाला जटा-जूटधारी कापालिक संन्यासी धीमे-धीमे चलता हुआ अतीत के जीर्ण-शीर्ण काले पर्दे को उघार देगा और सहज ही उस डरावने अँधियारे वातावरण में मन-प्राणों को एकबारगी स्तम्भित कर देगा। मगर कोई आया नहीं। मैं सतर्कता से मठ में घूमता रहा, पर कोई अनहोनी नहीं हुई। हाँ, मिस एलेक्जेण्डर डेविड नील का अवश्य स्मरण हो आया मुझे उस वातावरण में।

अभी कुछ समय पहले ही उनकी मृत्यु हुयी थी। वे एक फ्रान्सीसी महिला थीं। भिखारिन का भेष धारण कर सन् १९१० में उन्होंने तिब्बत में प्रवेश किया था, फिर १५ वर्ष तक वहीं रही थीं। मिस नील ने उस यात्रा और अनुभवों का वर्णन अपनी पुस्तक 'माई जर्नी टू ल्हासा' में किया है। मिस नील हिन्दू धर्म और संस्कृति के प्रति अत्यधिक आकर्षित थीं। उनसे मेरा परिचय वाराणसी में उस समय हुआ था, जब वे वाराणसी के प्रसिद्ध रामायणी श्री विजयानन्द त्रिपाठी से रामायण पढ़ने के लिए आयी थीं। उसके बाद मैं कई बार दार्जिलिंग और कलकत्ता में उनसे मिला। सच तो यह है कि मैंने भी मिस नील से ही प्रेरित होकर तिब्बत की यात्रा की थी। चलते समय मिस नील ने मुझे बतलाया था कि तिब्बत में कुछ ऐसे मठ हैं जो सुनसान और निर्जन हैं, मगर वे अभी भी सूक्ष्म शरीरधारी तांत्रिक की अदृश्य साधना-उपासना के केन्द्र बने हुए हैं। उन्होंने बताया था कि सूक्ष्म शरीरधारी तांत्रिक आकाशमार्ग से उन उजाड़ और सुनसान मठों में किसी निश्चित समय पर आते हैं, पर उन्हें न कोई देख सकता है और न उनकी पूजा-साधना आदि को ही। मेरे मस्तिष्क में सहसा वह बात कौंध गई—क्या यह मठ भी ऐसा ही है?

मैं उसी दिन चार मील दूर एक गाँव में जाने वाला था। मेरे ठहरने की व्यवस्था उसी गाँव में थी, पर थोड़ी ही देर बाद नीला आकाश काले-भूरे बादलों से अट कर काला हो गया। निस्तब्धता और अधिक गहरी हो गयी। खण्डहर जैसा मठ अँधेरे में अतीत पर सिर धुनता-सा प्रतीत होने लगा। गहन निःश्वास जैसे हवा हाहाकार करती हुई मठ की दीवारों से टकराने लगी।

अब क्या होगा? बुरी तरह फँस गया था मैं उस मठ में। रात यहीं गुजारनी पड़ेगी—यह सोचकर एक बार दिल दहल उठा। सामान के नाम पर मेरे पास सत्तू की पोटली, एक लोटा और दो कम्बल भर थे। आखिर पश्चिम वाले बरामदे से सटे एक कमरे में फर्श पर कम्बल बिछा कर मैं लेट गया।

थोड़ी ही देर में तूफानी हवा के साथ तेज वर्षा शुरू हो गयी। रात धीरे-धीरे सरकने लगी। मुझे कब झपकी आ गयी और कब मैं गहरी नींद में सो गया, पता न चला। अचानक मठ में निस्तब्ध वातावरण में एक भयंकर चीख गूँज उठी। चौंक कर मैं उठ बैठा। किसी नारी-कण्ठ से निकला था वह आर्तनाद! चारों तरफ आँखें घुमा कर अँधेरे में देखा मगर कुछ समझ में नहीं आया। उसी समय फिर चीख सुनाई पड़ी। मैं उठकर कमरे के बाहर निकल आया। कलाई घड़ी देखी—रेडियमयुक्त अंक हरी आग की तरह दमक रहे थे—बारह बजकर चालीस मिनट। मैं स्तब्ध रह गया। इतनी रात गये इस अंधकाराच्छन्न मठ में कौन चीख रहा है? किसका था वह आर्तनाद?

अचानक मेरी दृष्टि विशाल आँगन में बलि-यूथ पर पड़ गई। स्याह अँधेरे में भी वहाँ मैंने जो कुछ देखा, उससे सिहर उठा—

बलि-यूथ के कठोर शिकंजे में एक नग्न युवती का सिर फँसा था। हाथ पीछे की ओर रस्सी से बँधे थे। पैर भी शायद बँधे थे। उसके पास ही ऊँची-चौड़ी काठी का काले रंग का दानव जैसा एक व्यक्ति खड़ा था। उसका सिर मुँड़ा हुआ था। आँखें गूलर के फूल की तरह लाल थीं। हाथ में एक भयंकर खड्ग लिये हुए था वह पिशाच।

मैं आगे बढ़ूँ, इसके पहले ही वह भयंकर दृश्य अचानक मेरी आँखों के सामने से गायब हो गया और उसकी जगह दप् से चारों ओर प्रकाश हो गया। ऐसा लगा मानो सहसा सौ-सौ वाट के कई बल्ब जल उठे हों। थोड़ी देर बाद उस प्रकाश में एक दूसरा दृश्य उभरा बहुत ही विचित्र और अविश्वसनीय था वह दृश्य!

लम्बे-चौड़े विशाल आँगन में चारों तरफ लाल रंग की कालीन बिछी थी, जिस पर पचासों की संख्या में जटा-जूटधारी कापालिक संन्यासी बैठे हुए थे। उन सबके गलों में नरमुण्डों की मालाएँ थीं। मस्तक पर लाल सिन्दूर के टीके लगे थे। ऐसा लग रहा था मानो सभी ने गले तक शराब पी रखी हो। कोई किसी से बोल नहीं रहा था, पर अपनी-अपनी जगह नशे में सभी झूम रहे थे। सहसा मठ के किसी कोने में रखा नगाड़ा बजने लगा लगातार। बड़ी भयंकर आवाज थी नगाड़े की। सारे शरीर में रोमांच हो आया।

फिसलती हुई मेरी दृष्टि तांत्रिक देवी की भयंकर प्रतिमा की ओर चली गयी। देखा तो प्रतिमा अब अलंकृत थी। रंग-बिरंगे फूलों और वस्त्रों से उसे खूब सजा दिया गया था।

उस समय देवी के मुख-मण्डल पर एक विचित्र तेज दमक रहा था। उसके क्रूर भयावने नेत्र मुझे सजीव लगने लगे। सहसा जान पड़ा मानो उस प्रस्तर-प्रतिमा के होंठ भी फड़क रहे हों और किसी भी क्षण वह बोल पड़ेगी।

प्रतिमा के ठीक सामने एक बड़ा-सा त्रिकोण हवन-कुण्ड बना था, जिसमें अग्नि प्रज्ज्वलित थी। कुण्ड के चारों तरफ बैठे हुए भयानक शक्ल के कापालिकों के होंठ इस प्रकार हिल रहे थे, जैसे वे कोई मंत्र पढ़ रहे हों। बीच-बीच में हवन-कुण्ड में मदिरा से सने मांस के टुकड़ों की आहुति भी छोड़ते जा रहे थे। कुण्ड से लाल-लाल लपटें निकल रही थीं, और वायुमण्डल में जलते हुए कच्चे मांस की दुर्गन्ध फैल रही थी। समीप ही भयंकर आकार-प्रकार का एक लम्बा-सा खड्ग भी रखा हुआ था।

एकाएक मुझे चेत आया। बाप रे, यह तो कापालिकों का भैरवी-पूजा और नर-बलि का ढंग है। मैंने चीखना चाहा, मगर कण्ठ से आवाज ही नहीं निकली। गुम-सुम खड़ा रह गया अपनी जगह पर।

सहसा नगाड़े की भयंकर आवाज तेज हो गयी और उसके साथ ही मठ के फाटक पर शोरगुल सुनाई पड़ा। उधर देखा तो एक सजी हुयी पालकी भीतर आ रही थी, जिस पर रत्नजड़ित रेशमी पर्दा पड़ा हुआ था।

कौन होगा इस मूल्यवान पालकी में? फिर सोचा, होगा कोई कापालिकों का गुरु। मगर नहीं, दूसरे ही क्षण मेरा भ्रम टूट गया। हवन-कुण्ड के पास लाकर पालकी जमीन पर रख दी गयी। उसके बाद हे भगवान्! यह क्या देख रहा था मैं!

पालकी का रेशमी पर्दा धीरे से हटा। उसमें से एक युवती बाहर निकली। उसकी उम्र अठारह वर्ष से अधिक नहीं थी। अनिद्य सुन्दरी थी वह—सुगठित देह, चम्पई रंग, पुष्ट-उन्नत वक्ष, नितंबों तक लहराती काली-घनी केश-राशि, मोर जैसी आँखों में काजल की तीखी रेखाएँ, अनार के फूल जैसे कोमल लाल होंठ। उसके गले में हीरे-मोतियों की मालायें पड़ी हुई थीं।

इतना रूप, ऐसा अनिर्वचनीय सौन्दर्य और ऐसा उद्दाम यौवन किसी एक ही नारी में हो सकता है—इसकी कल्पना भी मैंने कभी नहीं की थी।

पालकी से निकल कर उस युवती ने एक बार चारों तरफ देखा, फिर हवन-कुण्ड के सामने रखे मखमल के आसन पर बैठ गयी।

'राजकुमारी सी-च्यांग की जय!' सभी कापालिक एक साथ बोल पड़े।

कहाँ की राजकुमारी हैं यह? समझ में नहीं आया। कापालिकों की तांत्रिक क्रियाओं से मैं पहले से ही कुछ परिचित था। उनकी साधना-विधि मैंने कहीं किसी ग्रन्थ में पढ़ी थी, इसलिए समझने में देर नहीं लगी—कापालिकों की भैरवी-पूजा ही थी वह।

राजकुमारी सी-च्यांग की तांत्रिक विधि से पूजा होने लगी। पूजा के बाद वहाँ एक बड़ा-सा सोने का घड़ा लाकर रखा गया। उस घड़े में सुरा भरी हुई थी। प्रधान कापालिक ने उसमें से एक स्वर्ण-पात्र में सुरा निकाल कर राजकुमारी को दिया और पीने का आग्रह

किया। राजकुमारी धीरे-धीरे मदिरा पी गयी। उसके बाद सब कापालिकों ने एक साथ सुरा-पान किया। अन्त में खड्ग की पूजा हुई, फिर बलि-यूथ पर घी का दीप जला दिया गया।

सहसा लम्बा-चौड़ा भयंकर आकृति वाला एक व्यक्ति राजकुमारी के पीछे आकर खड़ा हो गया और उसने देखते-ही-देखते राजकुमारी सी-च्यांग के दोनों हाथों को पीछे की ओर कस कर बाँध दिया।

एकाएक राजकुमारी के मुँह से कातर चीख निकली, पर वह नगाड़े की आवाज में डूब गयी। अपने को बंधन-मुक्त करने के लिए वह बराबर छटपटा रही थी, लेकिन निष्फल रही। फिर राजकुमारी को जबरदस्ती लाकर 'बलि-यूथ' के सामने खड़ा कर दिया गया और उसका सिर शिकंजे में फँसा दिया गया। मैं समझ गया कि राजकुमारी को धोखा देकर लाया गया है और अब उसकी बलि दी जाएगी। अब मेरे सामने पहले वाला दृश्य था।

राजकुमारी बराबर चीख रही थी। रो रही थी। विलाप कर रही थी। उसके करुण क्रन्दन से वातावरण गूँज रहा था मगर उसे सुनने वाला वहाँ मेरे सिवा और कोई नहीं। सभी कापालिक उन्मत्त होकर नाच रहे थे और घड़े से निकाल-निकाल कर सुरा पी रहे थे। वह वीभत्स और तामसिक दृश्य देख कर मेरे सारे शरीर में सिहरन समा गयी। एकाएक मैं चीख पड़ा और जोर से चिल्ला कर बोला, 'छोड़ दो राजकुमारी को!'

मगर मेरी ओर किसी का ध्यान नहीं गया।

अब क्या किया जाय?

मैं असहाय की तरह राजकुमारी को देखता रहा। इतने में बलि देने वाला वह दानव भी आकर वहाँ खड़ा हो गया। उसके हाथ में चमचमाता हुआ भयंकर खड्ग था। उसने राजकुमारी के मस्तक का स्पर्श किया फिर उसे प्रणाम किया। राजकुमारी के भय-विस्फारित नेत्रों में जाने कितनी कातरता थी। जैसे वह नेत्रों की मूक भाषा में कह रही हो—'मुझे क्यों मार रहे हो? मैंने क्या बिगाड़ा है तुम लोगों का? तंत्र-मंत्र के नाम पर एक निस्सहाय युवती की बलि देकर तुम सबको आखिर कौन सा स्वर्ग-फल मिलेगा?'

अब मुझसे नहीं रहा गया। आखिर मैं दौड़ कर राजकुमारी के पास पहुँचा और उसकी बलि का विरोध करने लगा। मैं किस प्रेरणा से और किस शक्ति से वह विरोध कर रहा था—यह स्वयं मुझे भी ज्ञात नहीं था। एक कापालिक संन्यासी, जो अन्य कापालिकों का गुरु लगता था, झुक कर मेरी ओर देखने लगा। उसके नेत्र लाल और खिंचे से थे। नाक तिरछी थी। गालों की हड्डियाँ उभरी हुई थीं। वह झुक कर मेरी तरफ देखने लगा तो मैं भी टकटकी बाँधे उसकी तरफ देखता रह गया। उसने मुझको सिर से पैर तक निहारा फिर बलि देने वाले व्यक्ति को कोई इशारा किया, जिसका परिणाम तुरन्त सामने आया। मन-प्राण को कँपा देने वाला एक भयंकर आर्तनाद गूँज उठा वातावरण में। फिर जो दृश्य देखा, वह अत्यन्त लोमहर्षक और हृदय-विदारक था।

राजकुमारी का कटा हुआ सिर उस तांत्रिक देवी की प्रतिमा के चरणों पर पड़ा था और निष्प्राण काया भूमि पर छटपटा रही थी।

मैं जोर से चिल्ला पड़ा, 'खून खून '

आँगन की धरती राजकुमारी सी-च्यांग के खून से डूब गयी थी।

मैं लपक कर राजकुमारी की निष्प्राण काया से लिपट गया और फूट-फूट कर रोने लगा। ऐसा लगा जैसे जनम-जनम से मैं राजकुमारी से परिचित रहा होऊँ और वह मानो मेरी कोई अपनी सगी है। खून से मेरा शरीर भींग उठा—मगर मैं शव से लिपटा रोता ही रहा। फिर न जाने कब उसी अवस्था में बेहोश हो गया। मेरी बाह्य चेतना एकदम लुप्त हो गयी।

और जब फिर चेतना लौटी तो सवेरा हो चुका था। तुषारपात हो रहा था और मैं बर्फ से ढँक गया था। चेतना लौटते ही रात के सारे दृश्य एक-एक कर मानस में उभर आये। एकाएक मुझे ऐसा लगा कि मैं किसी चीज से लिपटा हुआ था। वह मेरा भ्रम नहीं था। मैं सचमुच एक नर-कंकाल से पूरी रात लिपटा रहा।

क्या वह राजकुमारी सी-च्यांग का ही कंकाल था? क्या रात में जो कुछ मैंने देखा वह कापालिकों की प्रेत-लीला थी?

जी हाँ।

वह कंकाल राजकुमारी का ही था, जिसके साथ हर अमावस्या की रात भयंकर प्रेत-लीला के रूप में दो सौ वर्ष पुरानी तांत्रिक साधना अनुष्ठित होती थी।

बाद में विस्तार से मालूम हुआ। डुप्पा लामा ने ही मुझे सब कुछ बतलाया था। सी-च्यांग भोट राज्य की इकलौती राजकुमारी थी। भोटिया भाषा में 'च्यांग' का अर्थ होता है—गुलाब का फूल। राजकुमारी च्यांग वास्तव में गुलाब की तरह कोमल और सुन्दर थी। वह राजकुमार मस्तांग-स्टेट से प्रेम करती थी। राजकुमार भी च्यांग को दिल से चाहते थे। शीघ्र ही दोनों का विवाह भी होने वाला था, मगर रूपसी च्यांग की यौवन से भरपूर देहवल्लरी पर अचानक कापालिकों के गुरु की गृद्ध-दृष्टि लग गयी। वह पंच मकार की तामसिक क्रियाओं द्वारा कोई भयंकर तांत्रिक अनुष्ठान पूरा करना चाहता था, जिसमें किसी अक्षत नवयौवना सुन्दरी की आवश्यकता थी, इसके लिए सी-च्यांग से बढ़ कर भला और कौन सुपात्री मिलती!

सी-च्यांग को मठ में यह कह कर लाया गया था कि वह तांत्रिक दीक्षा ले ले, वर्ना एक वर्ष के भीतर विधवा हो जायेगी। सी-च्यांग भला कब चाहती कि उसका प्रियतम उससे बिछुड़ जाय, और वह भी विवाह होने के तुरन्त बाद। उस समय उसने सोचा भी नहीं होगा कि

मगर जो होना था, वह होकर रहा। राजकुमारी के अक्षत यौवन का छक कर पान करने के बाद तंत्र-मंत्र के नाम पर दस फण वाली सर्वमुखी देवी के सामने उसकी बलि दे दी गयी।

कापालिकों को सिद्धि मिली या नहीं, यह तो पता नहीं, मगर मुझे राजकुमारी का दो सौ साल पुराना कंकाल जरूर मिल गया। मेरे लिए उस कंकाल का बड़ा महत्त्व था।

पुरातत्व की दृष्टि से भी उसका कम महत्त्व और मूल्य नहीं था इसलिए किसी तरह उसे मैं अपने साथ ही ले आया।

मैं उस समय क्या जानता था कि कितनी विषम स्थिति में पड़ने वाला हूँ, नहीं तो उस कंकाल को कदापि न लाता। जब मैंने उसे लिए हुए तिब्बत की सीमा लाँघ कर भारत में प्रवेश किया, उसी क्षण पास ही कहीं नियति ने अदृश्य रूप से ठहाका लगाया। कापालिकों के गुरु, जिसने राजकुमारी की बलि दी थी की अतृप्त आत्मा मेरे पीछे पड़ गयी। उस कंकाल को तो मैंने पुरातत्व विभाग को सौंप दिया—मगर उस भयंकर कापालिक गुरु की आत्मा से अपना पिण्ड नहीं छुड़ा सका मैं। उसकी लाल-लाल और खिंची-खिंची सी आँखें आज भी मुझे घूरती रहती हैं। न चाहते हुए और न माँगते हुए भी वह रौद्र दानव रूपी कापालिक मुझे तमोमयी तांत्रिक शक्ति प्रदान करता रहता है, मगर उसके बदले मुझे न चाहते हुये भी शराब पीनी पड़ती है। यह सब दीर्घकाल से चलता आ रहा है, अब तो मेरा शरीर भी जर्जर हो गया है। फेफड़े खराब हो गये हैं। यक्ष्मा के जानलेवा भयंकर रोग से पीड़ित हूँ। कब-किस समय शरीर छूट जायेगा, कहा नहीं जा सकता।

ooo

३

एक लामा योगी का अविश्वसनीय पुनर्जन्म

मारिया बहुत खुश थी उस दिन। उसके चेहरे पर अनोखी चमक थी। मारिया के पति पाको टोरेस ने उसे विशेष रूप से प्रसन्न देखकर पूछा, क्या बात है मारिया, आज बहुत प्रसन्न नजर आ रही हो?

हाँ, आज रात मैंने एक स्वप्न देखा है। मारिया चहकते हुए बोली।

कैसा स्वप्न?

स्वप्न में मुझे लामा थुब्तेन यशी दिखाई दिये थे। उन्होंने मुझे आशीर्वाद भी दिया।

क्या! लामा ? टोरेस ने चौंककर पूछा।

हाँ-हाँ, लामा थुब्तेन यशी। विश्वास नहीं हो रहा क्या? मारिया बोली।

बात यह है कि मुझे भी कुछ दिनों से उनकी बहुत याद आ रही है। तुम्हें स्वप्न में लामा यशी ने दर्शन दिये, यह बड़ी शुभ बात है। टोरेस ने बताया।

मारिया और टोरेस लामा थुब्तेन यशी के शिष्य थे। मारिया लामा यशी से बहुत अधिक प्रभावित थी। कुछ समय पूर्व लामा यशी उनके पास आये थे। वे काफी समय से बीमार थे और बहुत कमजोर दिखाई दे रहे थे। टोरेस ने उनके स्वास्थ्य के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए उनसे वहाँ कुछ दिन ठहरने का आग्रह किया था। लेकिन लामा यशी उन दिनों बहुत व्यस्त थे। धार्मिक प्रवचन के सिलसिले में उन्हें विभिन्न स्थानों पर जाना पड़ता था। अपने स्वास्थ्य के प्रति उन्हें कोई मोह नहीं था। लामा यशी की बातों से मारिया को यह आभास हुआ था कि शायद लामा यशी से उसकी यह अंतिम भेंट हो। उन्हें विदा करते उसकी आँखें नम हो गयी थीं। लामा यशी अपनी शिष्या की मनोदशा भाँप गये थे। उन्होंने उसके सिर पर स्नेह से हाथ फेरते हुए कहा था, मारिया, मैं तुम्हारे घर जरूर जाऊँगा।

इस भेंट के कुछ समय बाद ही लामा थुब्तेन यशी परलोक सिधार गये। उनकी मौत से उनके हजारों शिष्य शोक में डूब गये थे।

बौद्ध धर्म के कई मत हैं, जिनमें एक मत 'गेलुपा' है। इसी मत के मध्यवर्गीय किसान परिवार में थुब्तेन यशी का जन्म सन् १९३५ में हुआ था। थुब्तेन यशी के माता-पिता परम धार्मिक थे। वे ल्हासा के समीप तोलुंग नामक गाँव में रहते थे। थुब्तेन यशी बचपन में ही धार्मिक क्रियाकलाप में रुचि दिखाने लगे थे। वह खेलने की अपेक्षा डमरू बजाते, या माला फेरते। थुब्तेन यशी ने सात वर्ष की आयु में ही धार्मिक शिक्षा आरंभ कर दी थी। १३ वर्ष तक धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन के बाद थुब्तेन यशी गेलुपा मत के धर्माचार्य बन गये।

सन् १९५६ से वे प्रमुख लामा के रूप में शिक्षक का कार्य करने लगे थे। तिब्बत छोड़ने पर वे काफी समय तक बक्सा मठ (पश्चिम बंगाल) में रहे। यहाँ उन्होंने धर्मग्रन्थों का अध्ययन करने के साथ-साथ काव्य, व्याकरण, कला और लेखन में गहरी रुचि ली।

लामा थुब्तेन यशी और लामा जोपा ने 'गेलुपा' मत के प्रचार-प्रसार के लिए नेपाल में काठमांडू के निकट 'कोपन बौद्ध मठ' की स्थापना की। इस मठ में विदेशों से सैकड़ों युवक-युवतियाँ आध्यात्मिक ज्ञान और शांति पाने के लिए आने लगे।

लामा थुब्तेन यशी तथा लामा जोपा ने कोपन बौद्ध मठ में विदेशी शिष्यों के आग्रह पर बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए एफ पी एम टी (फाउण्डेशन फार दि प्रिजर्वेशन आफ दि महायान ट्रेडिशन) संस्था की स्थापना की। इस संस्था की शाखाएँ आस्ट्रेलिया, इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, हालैण्ड, हांगकांग, भारत, इटली, न्यूजीलैण्ड, नॉर्दर्न आयरलैण्ड, स्पेन और अमेरिका आदि में हैं। लामा थुब्तेन यशी तथा लामा जोपा वर्ष में छः माह विदेशों में स्थापित अपने ३५ केन्द्रों का दौरा कर अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते थे। स्पेन के तुवियोन ग्रनाडा स्थित ओ सेल लिंग स्ट्रीट में टोरेस और उसकी पत्नी मारिया बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर वहाँ प्रचार-कार्य करते थे।

लामा थुब्तेन यशी का स्वास्थ्य सन् १९७० के बाद गिरने लगा था। उनके हृदय के दो वाल्व हो गये थे। १९७४ में उनका इलाज कर रहे पश्चिमी चिकित्सकों की रिपोर्ट में इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया गया था कि लामा थुब्तेन यशी अब तक जीवित कैसे हैं? इस बारे में स्वयं लामा यशी ने १९७४ में कहा था कि वे चिकित्सा साधनों से नहीं, मंत्रशक्ति द्वारा जीवित हैं। उन्होंने उस समय यह तथ्य उद्घाटित कर कि वे दस वर्ष और जीवित रहेंगे, सबको आश्चर्य में डाल दिया था। पश्चिमी चिकित्सकों के लिए यह बात चमत्कार से कम नहीं थी, क्योंकि उनकी नजर में लामा यशी किसी भी दिन दिवंगत हो सकते थे। लेकिन लामा थुब्तेन यशी की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। पूरे दस वर्ष बाद ३ मार्च, १९८४ को तिब्बती नये वर्ष के शुरू होने के साथ सूर्योदय से बीस मिनट पूर्व सेनफ्रांसिसको के अस्पताल में उनका देहांत हो गया। इससे पूर्व दिल्ली में भी उनका इलाज होता रहा था।

बौद्ध धर्म में यह विश्वास मान्य है कि अपने शिष्यों तथा अनुयायियों के मार्गदर्शन और कल्याण के लिए धर्मगुरु तथा धर्माचार्य पुनः जन्म लेते रहते हैं और कुछ विशेष चिह्नों से युक्त होने के कारण अल्पायु में ढूँढ़ भी लिए जाते हैं। तिब्बतियों

के सर्वोच्च धर्मगुरु महामना दलाई लामा १४वें ने अपनी आत्मकथा 'मेरा देश मेरे देशवासी' में लिखा है—

हम विश्वास करते हैं कि विभिन्न रूपों में प्रत्येक प्राणी मृत्यु के बाद फिर जन्म लेते हैं। प्रत्येक जीवन में, जो सुख और दु:ख वे भोगते हैं, उसका अनुपात उनके जन्म में किये गये अच्छे और बुरे कर्मों द्वारा निश्चित होता है। वे अपने वर्तमान जीवन में अपने प्रयासों द्वारा अनुपात में कुछ परिवर्तन भी कर सकते हैं। इसे कर्म का नियम कहते हैं। प्राणी कर्म के क्षेत्र में ऊपर या नीचे हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, पशु जीवन से मनुष्य जीवन में, या मनुष्य जीवन से पशु जीवन में आ-जा सकते हैं। अंतत: ज्ञान के प्रभाव से जब उनका पुनर्जन्म बंद हो जाता है, तब उन्हें निर्वाण मिल जाता है। निर्वाण में ज्ञान की सीढ़ियाँ हैं। सबसे ऊँची सीढ़ी बौद्धत्व है। अवतार वे प्राणी हैं, जिन्होंने या तो निर्वाण की विभिन्न श्रेणियों को प्राप्त कर लिया है, या निर्वाण से नीचे की पीढ़ी अर्हत प्राप्त कर ली है। वे दूसरे लोगों को निर्वाण की ओर उठाने में सहायता करने के लिए पुन: अवतरित होते हैं।

पुनरावतार केवल दूसरों की सहायता करने के लिए होता है। पुनरावतार जब कभी परिस्थितियाँ उपयुक्त होती हैं, तभी होते हैं। ऐसे अवतारी पुरुष प्रत्येक जीवन में अपनी स्वयं की इच्छाओं द्वारा अपने पुनर्जन्म के स्थान और समय के विषय में प्रभाव डाल सकते हैं और प्रत्येक जन्म के बाद उनको अपने पूर्वजीवन की स्मृति रहती है, जिसके द्वारा दूसरे उन्हें पहचान लेते हैं।

लामा थुब्तेन यशी की मौत के बाद कोपन मठ में लामा जोपा अस्थायी तौर पर मठ का संचालन करने लगे। साथ ही लामा थुब्तेन यशी के अवतार की खोज भी शुरू हो गयी। बौद्ध धर्माचार्यों को इस बात का पूर्वाभास हो जाता है कि भावी लामा कब और कहाँ अवतरित होंगे। यही नहीं, उनमें अलौकिक शक्ति के द्वारा यह जानने की क्षमता रहती है कि अमुक गाँव या कस्बे में अमुक नाम या शक्ल का नवजात शिशु ही उनका अगला धर्मप्रमुख होगा। लामा थुब्तेन यशी के पुनरावतार का आभास जोपा तथा लामा यशी के एक अन्य शिष्य सोवा को आध्यात्मिक शक्ति द्वारा हो गया था।

उधर स्पेन में मारिया को स्वप्न में लामा यशी दिखाई दिये थे। टोरेस और मारिया इस स्वप्न से प्रसन्न अवश्य हुए, पर वे स्वप्न की गहराई में न गये थे। इस स्वप्न के बाद मारिया को एक रोज फिर स्वप्न में लामा थुब्तेन यशी दिखाई दिये। उन्होंने मारिया को पुन: आशीर्वाद देते हुए कहा कि उससे जन्म लेने वाला बालक कोपन मठ का प्रमुख लामा होगा। उस समय लामा थुब्तेन यशी के आशीर्वाद स्वरूप उठे हाथ से प्रकाश की तेज किरणें भी निकली थीं। हालाँकि मारिया उस समय गर्भवती न थी, पर इस स्वप्न के बाद उसे गर्भ रह गया था। १२ फरवरी, १९८५ को मारिया ने ओजल इजा टोरेस को जन्म दिया।

शिशु के चेहरे पर अनोखा तेज था। जो भी बालक को देखता, नजर न हटा पाता। बालक में कुछ ऐसा सम्मोहन था कि धीरे-धीरे बालक की चर्चा दूर-दूर तक फैल गयी।

उसे देखने के लिए हजारों लोग उत्सुक हो उठे। यों ओजल इजा टोरेस ने बचपन से ही धर्म में रुचि दिखानी शुरू कर दी थी। अन्य बच्चों के विपरीत, वह घण्टों अपने स्थान पर ध्यान मुद्रा में बैठे रहते।

ज्यों-ज्यों ओजल इजा टोरेस बढ़ने लगा, उसमें विशेष लक्षण दिखाई देने लगे। अक्सर वह लामा यशी के चित्र को देर तक निहारता रहता। मारिया को बार-बार स्वप्न में लामा यशी आशीर्वाद देते दिखायी देते। मारिया के स्वप्न की चर्चा कोपन मठ के लामाओं तक भी पहुँची। उन्हें मारिया के स्वप्न में सत्यता नजर आयी, क्योंकि उन्हें जो संकेत आध्यात्मिक शक्ति द्वारा प्राप्त हुए थे, उसमें लामा यशी का अवतार हजारों मील दूर होना था। मारिया की बातों की सच्चाई परखने के लिए उसे तथा ओजल इजा टोरेस को ५ मई १९८६ को मकलोडगंज (धर्मशाला) बुलाया गया, जहाँ लामा थुब्तेन यशी से संबंधित कई चीजें रखी थीं।

उस रोज मकलोडगंज की तुशिता रिट्रीट में विचित्र दृश्य था। कई छोटे-छोटे तिब्बती बच्चे, जो ओजल की आयु के थे, वहाँ लाये गये थे। उनमें ओजल को भी शामिल किया गया था। लामा यशी के प्रतीक चिह्नों माला, डमरू, पूजा की घण्टी आदि को कई मालाओं, डमरुओं तथा पूजा की घण्टियों आदि के बीच रख दिया गया था। मन लुभाने वाले कई खिलौने भी वहाँ पड़े थे। अन्य बच्चे जबकि खिलौना तथा दूसरी आकर्षक चीजों की ओर लपक रहे थे, ओजल इजा टोरेस लामा थुब्तेन यशी के प्रतीक चिह्नों—उनकी माला, डमरू, घण्टी आदि को निकाल कर अलग रखने लगा था। यही नहीं, ओजल इजा टोरेस ने लामा थुब्तेन यशी के बड़े भाई जशेतरिंग को भी पहचान लिया और उनकी गोद में जा बैठा। जशेतरिंग नन्हें ओजल इजा टोरेस को अपने भाई के रूप में पाकर निहाल हो उठे। लामा थुब्तेन यशी के रूप में ओजल इजा टोरेस अवतरित प्रमाणित हो गया था। फिर उसे स्पेन वापस भेज दिया गया। उसे कोपन बौद्ध मठ के प्रमुख लामा थुब्तेन यशी की गद्दी पर बिठाने के लिए बौद्ध ज्योतिषियों ने १२ मार्च, १९८७ का दिन निश्चित किया। बालक ओजल इजा टोरेस को फरवरी १९८७ के प्रथम सप्ताह में स्पेन से दिल्ली लाया गया, जहाँ उसका भव्य स्वागत किया गया। दूरदर्शन की समाचार बुलेटिन में इस अद्‌भुत बालक को विशेष रूप से दिखाया गया। दिल्ली से ओजल को बोधगया ले जाया गया, जहाँ उसका महाचक्र पर अभिषेक होना था।

फिर १२ मार्च, १९८७ को कोपन बौद्ध मठ में एक भव्य समारोह के बीच ओजल इजा टोरेस को लामा थुब्तेन यशी की गद्दी पर बिठाया गया। इस समारोह में एफ पी एम टी के ३५ केंद्रों से सैकड़ों शिष्य कोपन मठ पधारे ओजल इजा टोरेस की शिक्षा पाँच वर्ष बाद शुरू होगी। तब तक उसके माता-पिता और भाई-बहन उसके साथ ही रहेंगे। यह पहली बार हुआ है कि एक लामा का पुनर्जन्म अपने देश से हजारों मील दूर एक विदेशी शिष्य के घर हुआ।

ooo

४

लामा का जीवित शव

उस समय हम भारत-तिब्बत सीमा से कोई पंद्रह मील दूर लद्दाख में थे। जहाँ और जिधर नजर जाती थी, ऊँची-ऊँची पर्वत-श्रेणियाँ दिखायी देती थीं। वे पर्वत-श्रेणियाँ कई प्रकार और कई रंगों की थीं। कुछ बहुत निकट दिखायी देती थीं और कुछ बहुत दूर थीं। लेकिन वे कितनी निकट और कितनी दूर थीं, यह बताना कठिन था। पहाड़ी क्षेत्रों में इस बात का अनुमान लगाने के लिए काफी अनुभव की आवश्यकता होती है, जो हमें नहीं था।

स्ताकून, कारू, चुम्तांग और सौमुरारी होते हुए चुमार गोंपा का यह रास्ता बड़ा ऊबड़-खाबड़ है। पूरे मार्ग पर ऐसी शांति छायी हुई है जैसे वह कहीं टूटी ही न हो। कदाचित् इस शांति से प्रभावित होकर बौद्ध भिक्षुओं ने इसे अपनी उपासना का केन्द्र बनाया हो।

हमारी मंजिल अब बहुत दूर न थी। हमारी उत्सुकता चरम सीमा पर थी। हम मंजिल को करीब पाकर सफर की थकान और परेशानी भूल गये। मठ के दिखाई पड़ते ही हमारे कदम अपने-आप तेज हो गये। एक चढ़ाई और चढ़कर हम मठ में पहुँच गये।

मठ में वह प्रमुख लामा पद्मासन लगाये बैठे थे। उनकी शांत-ठण्डी दृष्टि हमारे अंदर तक धँसती चली गयी। उनके चेहरे पर स्वर्ण-चूर्ण तथा सुगंधित पदार्थों का लेप था। शरीर पर परंपरागत परिधान था। हम सब उन्हें मंत्रमुग्ध-से देखते रहे।

मुझे लगा कि अभी प्रमुख लामा उठकर अपनी शांत मुस्कराहट से हमारा स्वागत करेंगे और हमें आशीर्वाद देंगे। लेकिन ऐसा कैसे हो सकता था ? प्रमुख लामा को मरे तो २० साल से ऊपर हो चुके थे।

किन्तु जो वास्तविकता हमारी आँखों के सामने थी, उसे हम जादुई कैसे समझ सकते हैं ? हम आत्मविभोर हो गये थे। प्रमुख लामा की उस जीवन्त मुद्रा से जैसे हम बँध गये थे। लगता था कि हमारे मन में जो विचार उठ रहे थे, वे वास्तविकता से ही प्रेरित थे। जैसे हम किसी अन्य लोक में पहुँच गये हों, जहाँ जीवन केवल शान्ति का नाम हो और

मौन ही वाणी हो। पद्मासन लगाये गौतम बुद्ध की मूर्ति के समक्ष खड़े होने पर जो अनुभूति हमें हुयी वही प्रमुख लामा की 'ममी' को देखकर हुई।

प्रमुख लामा के शव को सुरक्षित रखने की एक कहानी है। कहते हैं कि अपने निर्वाण से पहले लामा ने शिष्यों को यह आदेश दिया था, 'तुम लोग मेरे शरीर को सुरक्षित रखना। मैं तथागत के आदेश के अनुसार फिर जन्म लूँगा और मेरी आत्मा मेरी इसी शरीर में प्रवेश करेगी।'

कहते हैं कि शिष्यों को यह आदेश देने के कुछ समय बाद ही लामा का निर्वाण हो गया था। तब उनके आदेशानुसार उनके शरीर पर स्वर्ण-चूर्ण तथा सुगंधित पदार्थों की लेप लगा कर और उन्हें परंपरागत वस्त्र पहना कर पद्मासन की मुद्रा में बैठा दिया गया था। उसी मुद्रा में वे आज भी विराजमान हैं।

स्थानीय ग्रामीण कहते हैं कि इस बीच प्रमुख लामा की दाढ़ी के बाल कुछ बढ़ गये थे।

मठ बहुत छोटा है। उसमें तीन कक्ष हैं। पहले ही कक्ष में, जो प्रवेशद्वार के पास ही है, प्रमुख लामा पद्मासन लगाये बैठे हैं। दूसरा कक्ष प्रार्थना के लिए है और तीसरे कक्ष में पुस्तकालय है।

लामा के पुनर्जन्म लेने की कहानी प्रसिद्ध है। इसके संबंध में उस क्षेत्र में बहुत सी कथाएँ प्रचलित हैं। हाल में एक अफवाह यह फैली है कि प्रमुख लामा ने कालिम्पोंग में जन्म ले लिया है। उनकी आयु अभी बहुत कम है और वे भूटान के एक तांत्रिक दोजाम रिम्पोशे के पास अध्ययन कर रहे हैं।

मठ के पुस्तकालय वाले कक्ष में स्वर्ण-चूर्ण तथा सुगंधित पदार्थों की लेप लगे दो नारी हाथ भी हैं। ये हाथ भी उतने ही पुराने हैं और देखने में उतने ही सजीव हैं, जितना प्रमुख लामा का शरीर है। इन हाथों की कथा भी बड़ी विचित्र है।

यह कथा करीब २० साल पुरानी है। एक दिन चुमार गाँव के निवासी एक मैदान में जमा थे। उनके चेहरों पर एक विचित्र प्रकार की व्यग्रता और आक्रोश झलक रहा था। उनके सामने एक सुन्दर युवती रस्सियों से एक पेड़ के साथ बँधी हुई थी और एक पुजारी देवताओं से प्रार्थना कर रहा था कि वे ऐसी औरत से उनके गाँव की रक्षा करें। पेड़ से बँधी युवती दहाड़ें मार-मार कर रो रही थी। वह गाँव वालों को पुकार-पुकार कर कह रही थी, 'मुझे बचाओ!' लेकिन किसी ने उसकी चीख-पुकार पर ध्यान नहीं दिया।

वहाँ उपस्थित हर आदमी एक ही बात कर रहा था, 'अब देर क्यों? जितनी जल्दी हो इसे मार डाला जाए, उतना ही अच्छा। इसे जल्दी से जल्दी नरक भेज देना चाहिए।'

महिलाएँ भी यही चाहती थीं।

आखिर पूजा-पाठ समाप्त हुआ। वाद्यों और लोगों के शोर में उस युवती का चीखना-चिल्लाना दब गया था। वह जान गयी थी कि अब उसकी मृत्यु निश्चित थी,

उसकी कोई रक्षा नहीं कर सकता था। वह आतंक से भयभीत होती जा रही थी और उसका कण्ठ सूखकर अवरुद्ध होता जा रहा था।

रंग-बिरंगे कपड़े पहने एक युवक धीरे-धीरे पेड़ की तरफ बढ़ा। उसके हाथ में एक कटार थी। जैसे-जैसे वह पेड़ की ओर बढ़ता जा रहा था, लोगों का शोर भी बढ़ता जा रहा था। वाद्यों का शोर तेज होता जा रहा था।

युवती आँखें फाड़कर अपनी मौत को अपनी ओर आते देख रही थी। आतंक से उसका चेहरा विकृत हो गया था।

युवती उसी गाँव में जन्मी और पली-पुसी थी। भीड़ में कितने ही युवक और युवतियाँ थीं, जिनके साथ वह खेली थी। गाँव के और आस-पास के कई गाँवों के कई युवक उससे प्रेम की भीख माँग चुके थे। आस-पास के गाँवों में वह सब लड़कियों में सुन्दर थी।

युवक की कटार युवती के पेट में घुसकर उसके दिल को चीरती हुई निकल गयी। युवती के मुख से एक चीख भी न निकल सकी। खून का फौआरा फूट पड़ा और उसका सिर एक ओर झुक गया। लोग पेड़ को घेर कर नाचने लगे। उसके बाद पुजारी ने सबको प्रसाद बाँटा।

अब केवल एक अनुष्ठान शेष था। एक तलवार लायी गयी और उससे युवती के दोनों हाथ काट कर अलग कर दिये गये। उसके बाद उसका शव गाँव के बाहर ले जाकर जला दिया गया और इन हाथों को मठ में ले जाकर उन पर स्वर्ण-चूर्ण और सुगन्धित पदार्थों की लेप कर उन्हें पुस्तकालय कक्ष में रख दिया गया।

युवती को यह सजा उसके १२वें पति के मरने के बाद दी गयी थी। एक-एक कर एक एक पति के मरने के बाद युवती ने अपनी ग्यारह शादियाँ की थी। उसका बारहवाँ पति भी जब मर गया, तो गाँव वालों ने पंचायत की और पंचायत ने सर्वसम्मति से यह फैसला सुनाया कि वह युवती चुड़ैल थी और वह अपने पतियों को खा गयी थी। अगर वह जीवित रही, तो जाने और कितने पुरुषों को खा जाएगी। वह इतनी सुन्दर थी कि कोई भी पुरुष उसके साथ विवाह करने से इन्कार ही नहीं कर सकता था।

उसके हाथ काट कर इसलिए सुरक्षित रख लिये गये, ताकि वहाँ की स्त्रियों को यह चेतावनी मिलती रहे कि चुड़ैल को क्या दण्ड मिलता है।

लद्दाख के गाँवों में कई जगह कई शव शताब्दियों से सुरक्षित पड़े हुए हैं। उनमें से कई स्वर्ण-चूर्णों और सुगन्धित पदार्थों की लेप से सुरक्षित नहीं रखे गये हैं। वे प्रकृति की कृपा से ही आज भी ज्यों के त्यों हैं। यहाँ की कई घाटियों में बारहों महीने भयानक ठण्ड रहती है, जिसके कारण शव सड़ते-गलते नहीं।

दौलत बेग ओल्दी का किस्सा भी बहुत मशहूर है। दौलत बेग ओल्दी एक डकैत था। उसके नाम पर ही इस स्थान का नाम पड़ा है। वह तिब्बत 'सिल्क-रूट' पर

आने-जाने वाले व्यापारियों को घेर कर उनसे नजराना वसूल करता था। जो व्यापारी उसे नजराना नहीं देता था, उसे मार कर वह उसके शव को मार्ग पर खड़ा कर देता था। वे शव उसी तरह हमेशा खड़े रहते थे और यात्रियों को बताते रहते थे कि ओल्दी को नजराना न देने का परिणाम क्या होता है। कहते हैं कि वे शव और प्राकृतिक दुर्घटनाओं से मरे हुए कितने ही व्यक्तियों के शव आज भी बर्फों से हमेशा ढकी रहने वाली घाटियों में सुरक्षित पड़े हैं। इनमें से कई तो शताब्दियों पुराने हैं।

OOO

५

दीपावली की वह रहस्यमयी तांत्रिक रात

(१)

मैं जो अपनी विलक्षण और चमत्कारपूर्ण अनुभव कथा सुनाने जा रहा हूँ उसका प्रारम्भ लगभग पैंतीस वर्ष पूर्व होता है—जब मैं योगाभ्यास के लिए उपयुक्त शान्त और एकान्त स्थान की खोज में था। एक दिन दशाश्वमेध घाट पर मेरे एक सुपरिचित तांत्रिक मित्र मिल गये। नाम था ताराशंकर भट्टाचार्य। वह काली के उपासक और भक्त थे। अपनी तांत्रिक साधना के लिए उन्होंने कई दुर्गम स्थानों की यात्रा भी की थी।

मैंने भट्टाचार्य महाशय से अपने मन की बात बतलायी। तुरन्त मेरी समस्या हल हो गयी। उन्होंने मुझे बतलाया कि ब्रह्मपुत्र और पद्मा के किनारे देवी एकांगनशा का अति प्राचीन मन्दिर है। मन्दिर के पुजारी उनके परिचित हैं। विभिन्न प्रकार के फूलों, फलों के वृक्षों, वनस्पतियों तथा पहाड़ों से घिरा वह स्थान अति सुरम्य, रमणीक और शान्त है। योगाभ्यास के लिए निश्चय ही वहाँ का वातावरण उत्तम है। वे स्वयं वहाँ कुछ समय रह चुके थे। उन्होंने पुजारी जी के नाम एक पत्र भी लिखकर दे दिया मुझे।

एक सप्ताह के अन्दर ही कालीपाड़ा के लिए प्रस्थान हो गया मैं। पूरे पाँच दिनों की यात्रा के पश्चात् पहुँचा मैं कालीपाड़ा। देवी एकांगनशा का मन्दिर खोजने में कोई खास परेशानी नहीं हुई। बिल्कुल पद्मा के किनारे—थोड़ा हटकर था मन्दिर। पुजारी जी बंगदेशीय थे। सज्जन, विनम्र और सहृदय। आयु बस यही साठ के लगभग। उन्होंने पत्र पढ़ते ही तुरंत मन्दिर से सटे एक कमरे में मेरे ठहरने की उचित व्यवस्था कर दी।

भट्टाचार्य महाशय ने स्थान के बारे में जो कुछ बतलाया था मुझे, उससे कहीं अधिक शान्त और रमणीक लगा वह। मीलों तक दूसरा कोई गाँव नहीं था। कोई आबादी नहीं थी। एक ओर घने जंगलों का सिलसिला और दूसरी ओर छोटी-छोटी पहाड़ियों की शृंखला। बीच में कल-कल निनाद करती हुई पद्मा की चौड़ी शुभ्र धारा। मन्दिर के ठीक थोड़ी दूर पद्मा के किनारे श्मशान था, जिसके एक ओर पक्का घाट था और घाट से सटे ही यमराज का एक छोटा-सा जीर्ण-शीर्ण मन्दिर था। मन्दिर के पीछे पत्थर का एक काफी लम्बा-चौड़ा चबूतरा था—जिसके समीप गूलर और पीपल के कई वृक्ष खड़े थे।

कभी-कदा साँझ के समय मैं उसी चबूतरे पर जाकर बैठ जाता था। वृक्षों की छाया में और पद्मा के तट पर बड़ी शान्ति मिलती थी मुझे। पीपल की डालों पर बँधे यमघण्टों को देखकर जीवन और जगत् की निस्सारता पर गालों पर हाथ धरे घण्टों विचार करता रहता मैं।

एक दिन मैं ऐसे ही विचारों में डूबा बैठा था। साँझ की स्याह चादर धीरे-धीरे फैलती जा रही थी श्मशान-भूमि पर। सहसा विचार भंग हुआ। आँखें ऊपर उठीं, देखा तो सामने काषाय वस्त्रों में लिपटा एक व्यक्ति खड़ा मेरी ओर अपलक देख रहा था।

साँझ की सुरमई में पहले तो उसका रूप बड़ा अस्पष्ट लगा मुझे, पर जरा ध्यान से देखने पर आकृति एकदम स्पष्ट हो गई। लम्बा, दुबला, जीर्ण-शीर्ण-सा शरीर, तीखी नाक, भावहीन-सी विस्फारित आँखें, कोरों पर गहरी स्याही, विवर्ण रक्तहीन-सा मुख। न जाने कैसी दृष्टि से देख रहा था वह व्यक्ति मुझे। थोड़ा डर-सा लगा।

वह बड़ी देर तक मानो दुविधाभरी आँखों से मेरी ओर ताकता रहा। फिर क्षीण हँसी हँसकर बोला—'घबराइये मत! मैं तांत्रिक संन्यासी कृष्णकाली मण्डल हूँ। इस स्थान से मेरा बहुत लगाव है। इसलिए टहलता हुआ इधर चला आता हूँ कभी-कभी।' फिर थोड़ा आत्मस्थ होकर उसने पूछा—'आप काशी से चल कर आये हैं न?'

'जी हाँ।'

तांत्रिक संन्यासी ने मेरा उत्तर सुनकर जोर से साँस छोड़ी। उसके विवर्ण मुख की ओर ताककर मैंने पूछा—'आप कहाँ रहते हैं?'

वह हँसा—'आपने देखा नहीं, यह पूरा इलाका निर्जन और सुनसान है। यहाँ कोई नहीं रहता। केवल मैं हूँ। केवल मैं। समझ गये न।'

मुझे विस्मय हुआ। यह पागल-वागल तो नहीं है। वह शायद मेरे मनोभाव को समझ गया। कौतुक भरे स्वर में बोला—'आप मुझे सनकी समझ रहे हैं क्या? मैं पहले देवी के मन्दिर में ही रहता था—जिस कमरे में इस समय आप हैं—उसी कमरे में मैं रहता था। इस कमरे में मैंने अपने जीवन के पूरे तीस वर्ष व्यतीत किये हैं।'

'मुझे आश्चर्य हुआ। मैं काशी से आया हूँ। मन्दिर के कमरे में रहता हूँ। यह सब कैसे जान गया यह तांत्रिक संन्यासी?' मैंने भीत दृष्टि से उसकी ओर देखा। वह एकटक बिना पलक झपकाये मेरी ओर विषण्ण भाव से देख रहा था। जीर्ण क्लान्त मुख ...... पर उसकी दृष्टि में अजीब-सा सम्मोहन भरा हुआ था जैसे। उसके बाद उस तांत्रिक संन्यासी से प्रायः रोज ही भेंट होने लगी। कभी उसी चबूतरे पर, कभी श्मशान में, तो कभी यमराज के मन्दिर में। कभी-कदा वह मेरे कमरे में भी आ जाया करता था। मगर तभी आया करता था जब पुजारी जी कहीं बाहर गये रहते।

तांत्रिक संन्यासी की उपस्थिति मुझे बड़ी अनोखी लगती। कभी-कभी उसके बात करने और हँसने का ढंग भी बड़ा विचित्र लगता मुझे। एक दिन दोपहर के समय मेरे कमरे में आया वह। मैंने उसकी ओर देखा। अजीब-सी वेदना थी उसके क्लान्त विवर्ण

मुख पर। सूनी-सूनी आँखों में दुःख की छाया तैर रही थी। आते ही बुझे हुए स्वर में कहने लगा। आप शुरू से ही मेरे विषय में जानने-समझने के लिए व्याकुल हैं न? आज मैं अपने बारे में सब कुछ बतलाने के लिए ही आया हूँ आपके पास। अधिक समय नहीं लगेगा इसमें। बड़ी अनोखी और विचित्र कथा है मेरे जीवन की। आपको निश्चय ही यह बड़ी विस्मयजनक और रहस्यमय लगेगी।

सहसा तांत्रिक संन्यासी की आँखें मशाल की तरह दप् से जल उठीं और फिर देखते बुझ गयीं। फिर उसने जो व्यथाभरी कथा सुनायी वह निश्चय ही अलौकिक और रहस्यमयी थी।

(२)

तांत्रिक संन्यासी ने कहना शुरू किया—मेरे माता-पिता कौन थे, यह मैं नहीं जानता। मैं कहाँ का रहने वाला हूँ, यह भी नहीं जानता। जब मैंने होश सम्हाला तो अपने को साधु-संन्यासी की टोली में पाया। उन्हीं की छत्रच्छाया में पल-पुसकर बड़ा हुआ। अठारह वर्ष की उम्र तक उसी टोली में रहा। इतनी कम उम्र में ही टोली के साथ मैंने अनेक देवस्थानों और तीर्थों की यात्रा कर ली। उसके बाद जीवन के छह वर्ष खुलना के एक नेपाली तांत्रिक के साथ बीता। ये छह वर्ष मेरे जीवन के विचित्र अध्याय थे। इस अवधि में मेरे जीवन की दिशा ही बदल गयी। खुलना का वह नेपाली तांत्रिक उच्चकोटि का साधक था, इसमें सन्देह नहीं। उसे कई प्रकार की दुर्लभ तांत्रिक सिद्धियाँ प्राप्त थीं। कभी वह विषधर सर्प का रूप धारण कर रेंगने लगता था तो कभी शेर-भालू बनकर जंगल में घुस जाता था। एक बार तो वह मेरी आँखों के सामने ही पक्षी का रूप धारण कर आकाश विद्याएँ बतलायीं। उनकी साधना और सिद्धि भी करायी। ज्योतिष के भी अनेक रहस्य बतलाये। थोड़े ही समय में तंत्र-मंत्र और ज्योतिष में पारंगत हो गया मैं। फिर उसने मुझे अपने गुरु से मिलवाया। गुरु कापालिक संन्यासी थे। उनकी आयु बहुत थी। नाम था ब्रह्मेश्वरानन्द। वे मुझे अपना शिष्य बनाकर हिमालय ले गये। हिमालय के एक अज्ञात स्थान पर उनका मठ था। वह मठ काफी बड़ा था और था अलौकिक शक्तियों का केन्द्र। साधारण लोग तो उस दुर्गम स्थान पर पहुँच ही नहीं सकते। मठ की भौगोलिक स्थिति भी नहीं बतलायी जा सकती। मठ में अनेक साधक-साधिकाएँ थीं। उन सबकी आयु बहुत अधिक थी। लेकिन देखने में सभी युवा प्रतीत होते थे। कोई किसी से बातचीत नहीं करता था। सभी प्रायः मौन ही रहते थे। भूख-प्यास बहुत कम लगती थी। नींद भी जल्दी नहीं आती थी।

निश्चय ही उस रहस्यमय मठ का संबंध किसी रहस्यमय लोक-लोकान्तर से था। कई बार मैंने मठ में ऐसे प्राणियों को देखा था—जो किसी भी दृष्टि से मानव नहीं थे। उनका रूप-रंग, गति-मति और वेश-भूषा देखकर ऐसा लगता था कि वे भूलोक के नहीं, बल्कि किसी अन्य लोक के निवासी हैं। उनकी भाषा केवल ब्रह्मेश्वरानन्द ही समझ पाते थे।

मठ के साधकों को साधना में सहायता करने के लिए इसी प्रकार उस रहस्यमय अज्ञात लोक से भैरवियाँ भी आया करती थीं। मगर उनका प्राकट्य मानवीय रूप में होता था। उनके रूप और सौन्दर्य की कल्पना मनुष्य कदापि नहीं कर सकता। उच्चकोटि की तांत्रिक साधना में भैरवी का स्थान अति गरिमामय और अति महत्वपूर्ण है। बिना भैरवी के सहयोग के साधना-मार्ग में सफलता सन्दिग्ध है। भैरवी के अभाव में कुछ भी सम्भव नहीं। आपको मेरी कथा अवश्य विचित्र और अविश्वसनीय लगती होगी। मगर सत्य ही है। मठ में समय का पता नहीं चलता था। कब दिन हुआ और कब रात हुई। इसी कारण मैं कितना समय मठ में रहा—इसका अनुभव मुझे नहीं हुआ। मेरी साधना को देखते हुए मेरे गुरु ने मेरे लिये भी एक भैरवी की व्यवस्था कर दी। वह भैरवी भी उसी अज्ञात लोक से सम्बन्धित थी। लेकिन बन्धु, मैं यह भूल गया कि जो भैरवी मेरी साधना में सहयोगिनी है—वह एक ऐसी अमानवीय सत्ता है—जो मानव-शरीर के बन्धन में कभी नहीं बँध सकती। मैं यह भी भूल गया कि मठ के प्रबल आकर्षण के वशीभूत होकर यह भैरवी अपनी प्रबल मानवेतर इच्छा-शक्ति के बल पर स्थूल नारीरूप में अवतरित हुई। इसकी पार्थिव काया मनुष्य की नहीं, बल्कि उसी की इच्छा-शक्ति की देन है।

पलभर रुककर तांत्रिक संन्यासी ने फिर कहना शुरू किया, तांत्रिक साधना विकट साधना है। तांत्रिक साधना का मतलब है, शक्ति-साधना। एक ऐसी शक्ति की साधना जिसे कुण्डलिनी शक्ति का जागरण और षट्चक्र-भेदन तांत्रिक साधना का एकमात्र मुख्य विषय है। लेकिन बिना बिन्दु-सिद्धि के कुण्डलिनी शक्ति का जागरण सम्भव नहीं।

'बिन्दु-सिद्धि क्या है ?' मेरे इस प्रश्न के उत्तर में तांत्रिक संन्यासी ने बतलाया कि तांत्रिक साधना की बहुत-सी दिशाएँ हैं। इस साधना का मुख्य लक्ष्य है—'बिन्दु-सिद्धि।' बिन्दु किसे कहते हैं, पहले आपको बतला दूँ। वैसे तो पाँच कोष हैं। लेकिन साधारणतः मनुष्य के तीन कोष—मनोमय कोष, प्राणमय कोष, और अन्नमय कोष सक्रिय रहते हैं। शेष दो कोष सुप्तावस्था में रहते हैं। सक्रिय तीनों कोष क्रम से मनोमय शरीर, प्राणमय शरीर (जिसे सूक्ष्म शरीर भी कहते हैं) और अन्नमय शरीर यानी स्थूल भौतिक शरीर—के केन्द्र हैं। तीनों शरीरों के बीज इन्हीं तीनों कोषों में हैं। अब आपको आगे मालूम होना चाहिए कि मनोमय कोष का सारांश 'मन' है। प्राणमय कोष का सारांश 'ओजस्' है और अन्नमय कोष का सारांश 'वीर्य' या 'शुक्र' है। तंत्र में इसी का नाम 'बिन्दु' है। बौद्ध तांत्रिक लोग इसी को बोधिचित्त के नाम से सम्बोधित करते हैं। मनुष्य के तीनों कोष चंचल और अस्थिर रहते हैं। मन भी, प्राण भी और बिन्दु भी। जब तक तीनों चंचल और अस्थिर हैं तब तक गूढ़ साधना और इन साधनाओं में भैरवी का सहयोग सापेक्ष है। भैरवी के अभाव में साधना अनुष्ठित नहीं हो सकती। भैरवी के सहयोग से सर्वप्रथम बिन्दु पर चित्त को आरोपित करना पड़ता है, फिर प्राण पर और अन्त में मन पर। आरोपण की जो प्रक्रिया है—वह समाधि है, जिसकी चर्चा आगे करूँगा।

तंत्र की यह बिन्दु-साधना वैदिक-युग की रहस्य-साधना है। बिन्दु-साधना के तीन क्रमिक चरण हैं। प्रथम चरण में विभिन्न यौगिक एवं तांत्रिक क्रियाओं के बल पर

भैरवी के सहयोग से बिन्दु स्थिर होता है। दूसरे चरण में बिन्दु की प्रतिष्ठा होती है। वैदिक-युग में ब्रह्मचर्याश्रम और गृहस्थाश्रम में रहस्य-साधना का स्थान अपना महत्त्व रखता था। पहले आश्रम का लक्ष्य था बिन्दु-शोधन और दूसरे आश्रम का लक्ष्य था बिन्दु-प्रतिष्ठा। उस समय सभी प्रकार के बिन्दु क्षोभ निषिद्ध था। क्योंकि चंचल अस्थिर बिन्दु माना जाता है। और अशुद्ध बिन्दु के क्षुब्ध यानी पतित होने पर प्राकृतिक नियम के अनुसार अधोगति की ओर उन्मुख होता है। इसी का नाम च्युति या पतन—जिसका फल है—एकमात्र मृत्यु। समझ गये न? संशोधित और प्रतिष्ठित बिन्दु—भैरवी के सहयोग से अधोगति के बजाय ऊर्ध्वगति की ओर उन्मुख होता है—जिसकी उपलब्धि है—'अमरत्व लाभ।' 'ऊर्ध्वरेता तपस्विनः'—वैदिक-युग का यह वाक्य सभी को ज्ञात है।

वैदिक-युग की रहस्य-साधना तंत्र-युग की बिन्दु-साधना और बौद्ध-युग की 'रस-साधना' वास्तव में एक ही चीज है। हीनयान-मार्ग में बोधि-चित्त को 'वज्रमणि' कहते हैं।

थोड़ा थमकर वह तांत्रिक संन्यासी आगे कहने लगा—मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्—यह सिद्धान्त सर्वसम्मत है।—ऊर्ध्वरेता की अवस्था का लाभ करने के लिए बिन्दु का ऊर्ध्वगामित्व होना आवश्यक है। ऊर्ध्वरेता की अवस्था में साधक का अन्तःस्रोत सदैव ऊर्ध्वगामी रहता है। तांत्रिक-साधना की यही दिव्य अवस्था है। वैदिक-युग में गृहस्थाश्रम में नवपरिणीता धर्मपत्नी का सहयोग इस साधना में लिया जाता था। 'स्त्री को धर्ममाचरेत्' इस वचन का आन्तरिक तात्पर्य यही है। उस समय पारिवारिक जीवन रस-साधना यानी रहस्य-साधना के अनुकूल था। आधार-भेद से नैष्ठिक ब्रह्मचारी के लिये यह साधना आवश्यक नहीं होता था। संयम और कठोर ब्रह्मचर्य के मार्ग से चलने से ही रस-साधना में, रहस्य-साधना में अथवा बिन्दु-साधना में सिद्धि-लाभ हो सकता है, अन्यथा नहीं। बौद्धों का महासुख साधन इस गुप्त रस-साधन का प्रकार-भेद मात्र है। औपनिषद् साधन-भूमि में पंचाग्नि विद्या का नाम प्रसिद्ध है। वास्तव में उसका भी तात्पर्य रस-साक्षात्कार के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

(३)

तांत्रिक संन्यासी तंत्र का इतना गूढ़ ज्ञान रखता है, यह मैंने सोचा तक न था। उसने आगे कहा—जो लोग काम-कला रहस्य से परिचित होंगे—वे ही बिन्दु-साधना के मार्ग पर अग्रसर हो सकते हैं। काम-कला मूल भित्ति है बिन्दु-साधना की। एक बात बतला दूँ आपको, वास्तव में 'तंत्र-योग' कामयोग है। तंत्र-योग में नवपरिणीता धर्मपत्नी का स्थान भैरवी ने ले लिया। लेकिन फिर भी पत्नी का महत्त्व साधना में बराबर बना रहा। साधना की गुह्यता की दृष्टि से एक भैरवी-दीक्षा है और दूसरी है महाभैरवी-दीक्षा। पहली दीक्षा स्वकीया नायिका अथवा पत्नी को दी जाती है और दूसरी दीक्षा परकीया नायिका को दी जाती है। तंत्र में परकीया नायिका का अपना विशिष्ट स्थान और महत्त्व है। कृष्ण की राधा भी तो परकीया नायिका ही थी। भैरवी दीक्षाप्राप्त स्वकीया नायिका के सहयोग से बिन्दु-

शोधन और महाभैरवी दीक्षाप्राप्त परकीया नायिका के सहयोग से विन्दु-प्रतिष्ठा का कार्य सम्पन्न होता है। मगर बन्धु! मेरा यह दोनों कार्य उसी भैरवी द्वारा सम्पन्न हो गया, जिसके फलस्वरूप मुझे दिव्य भाव की उपलब्धि हुई। दिव्य भाव यानी दिव्य अवस्था—तंत्र की एक विशेष अवस्था है। इस अवस्था में जिस आनन्द की अनुभूति होती है—वह परम आनन्द है और है बौद्धो का महासुख। मैं उस परम आनन्द में मग्न होकर एक प्रकार से समाधि में लीन रहने लगा। मेरे गुरुदेव मुझ पर अति प्रसन्न थे। मगर मुझसे एक भारी गलती हो गयी।

कौन-सी गलती ? मैंने पूछा।

अपने दोनों हाथों की उँगलियों को आपस में फँसाकर फिर अलग करते हुए वह तांत्रिक संन्यासी आगे बोला—मैं उस भैरवी पर मुग्ध हो गया बन्धु! उसकी अनुपम मोहक रूप-छटा मेरे मन में बस गयी। वह अतिलावण्यमयी थी। उसकी मुस्कराहट अनुपम थी—मीठी, मधुर, स्निग्ध और मन को लुभाने वाली। उसके प्रति मेरा आकर्षण बराबर बढ़ता ही गया और अन्त में प्रेम का रूप धारण कर लिया उसने।

मानव-जगत् और मानव-शरीर व मानव-जीवन में भी भारी आकर्षण है। सभी मानवेतर प्राणी इस जगत्, इस शरीर और इस जीवन को प्राप्त करने के लिए बराबर लालायित रहते हैं। शायद उसी आकर्षण के व्यामोह में पड़कर भैरवी भी मुझ पर मुग्ध हो गयी और अन्त में वह भी मुझसे प्रेम करने लगी।

हम दोनों का प्रेम शरीर और मन के तल का नहीं, आत्मा के तल का प्रेम था, जिसकी कल्पना भौतिक धरातल पर नहीं की जा सकती। उसकी अनुभूति को भी शब्द-रूप नहीं दिया जा सकता। उसकी अभिव्यक्ति के लिए वाणी भी मूक हो जाती है। मैं मठ में रहकर अनेक दुर्लभ तांत्रिक विद्याओं में पूर्ण पारंगत उपलब्धियों से प्रसन्न था, दूसरी ओर भैरवी के वियोग की पीड़ा और वेदना भी थी। प्रस्थान के क्षणों में वह मेरे पास आयी। मेरी आँखों में आँसू थे, किन्तु वह मुस्करा रही थी। उसने सहज स्वर में कहा—घबराओ मत! दुखी होने की भी आवश्यकता नहीं। अगोचर रूप से, अदृश्य भाव से मैं सदैव तुम्हारे साथ हूँ। जीवन-यात्रा में सदैव मेरी सहायता और सहयोग मिलता रहेगा तुम्हें। मैं तुम्हें सिद्ध हूँ। जब स्मरण करोगे, तब पार्थिव या अपार्थिव रूप में उपस्थित हो जाऊँगी तुम्हारे सामने।

तांत्रिक साधना में इसी को 'भैरवी-सिद्धि' कहते है। मुझे भैरवी सिद्ध हो गई थी। मैंने अपने तंत्र-बल और भैरवी की सहायता से यश, कीर्ति, मान, प्रतिष्ठा, धन, ऐश्वर्य—सब कुछ चरम सीमा तक प्राप्त किया और उसका उपभोग भी किया। मगर अपने चरित्र की रक्षा बराबर करता रहा। क्योंकि योगी और साधकों के लिए एकमात्र चरित्र ही बल है। मेरी अदृश्य सहयोगिनी ने भी कहा था—जिस दिन तुम अपने चरित्र-बल को गँवा दोगे, उसी दिन मुझे भी खो बैठोगे हमेशा के लिए।

फिर गलती किस बात की हुई ? मैंने जरा उत्सुक होकर पूछा।

वह कुछ देर तक खिड़की के बाहर शून्य में ताकता रहा। फिर बोला—सहसा मेरे जीवन में एक अकल्पनीय घटना घट गयी। लोगों का भविष्य जानने वाला मैं स्वयं अपना भविष्य न जान सका। इसी को कहते हैं नियति। उसने मेरे जीवन की अमृतमयी धारा में सहसा ही विष घोल दिया बन्धु! जिसका परिणाम यह हुआ कि घोर विरक्ति भर गयी मुझमें। अभिशप्त हो गया मेरा जीवन। सर्वस्व त्यागकर संन्यास ले लिया मैंने।

कहते-कहते तांत्रिक संन्यासी की आँखें आग की तरह जलने लगीं। चेहरा लाल हो गया। थोड़ा मौन रहकर उसने जैसे एक अमानवीय चेष्टा से अपने आपको सँभाल लिया। फिर बोला—चलिए, शेष कथा पद्मा के किनारे एकान्त में बैठकर सुनाऊँगा।

दुपहरी ढल चुकी थी। पुजारी जी के आने का भी समय हो गया था। रास्ते में हम दोनों मौन रहे। जब नदी के किनारे पहुँचे तो वहाँ श्मशान में दो-तीन चिताएँ जल रही थीं। तांत्रिक संन्यासी काफी देर तक निहारता रहा—जलती हुई चिताओं की ओर! फिर एकाएक आगे की कथा शुरू कर दी उसने। कहने लगा—मैं उन दिनों कलकत्ता में था। नित्य की भाँति अपना-अपना भविष्य जानने के लिए लोगों की भीड़ लगी हुई थी। उसी भीड़ में एक सुन्दर युवती भी थी। जब उसकी बारी आयी तो मैंने पूछा—कहिये, क्या पूछना है आपको?

युवती ने एक बार चारों तरफ देखा और फिर धीरे से कहा—'बस, मैं आपको इसलिए कष्ट देने आयी हूँ कि मेरे भाग्य में क्या लिखा है? जरा अच्छी तरह देखकर बतला दें। आपकी जो भी दक्षिणा होगी—दूँगी मैं।'

मैंने युवती को अपने निकट आने का संकेत किया। वह खिसक कर मेरे बिल्कुल निकट आ गयी और सोने की चूड़ियों से भरा अपना एक कोमल हाथ निस्संकोच मेरी ओर बढ़ा दिया उसने।

मैंने पूछा—क्या नाम है आपका?

कविता, कविता नाम है मेरा।

नाम सुनकर मैंने सहज भाव से उसकी ओर देखा। निश्चय ही वह किसी कवि की कल्पनामयी कविता जैसी ही थी। मैंने कविता की गुलाब के फूल जैसी कोमल कलाई को चुपचाप थाम लिया। कब तक पकड़े रहा—पता नहीं। फिर उसे छोड़ता हुआ बोला—मैं आपकी हस्तरेखा देखकर नहीं, आपके मस्तक की रेखा देखकर भविष्य बतलाऊँगा। फिर मैंने अपनी दृष्टि कविता के चाँद जैसे चेहरे पर टिका दी। कब-कितना समय व्यतीत हो गया—हम दोनों को पता न चला।

अचानक कविता के कपाल-पटल पर अन्त में जो दृश्य उभरा—उसको देखकर मैं एकदम विचलित हो उठा। हे भगवान् मैंने यह क्या देखा? अकाल मृत्यु भयंकर—अति भयंकर मृत्यु के लक्षण। मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि कविता जैसी सुन्दरी सरल, पवित्र युवती का भविष्य इतना अन्धकारमय है? उसका भावी जीवन अपने आप में इतना मर्मान्तक मृत्यु का अमंगल लपेटे हुए है।

कविता ने शायद मेरे चेहरे के भावों को पढ़ लिया। अनिश्चय से काँपते स्वर में

उसने पूछा—महाशय! आपने मेरे मस्तक की रेखा को देखकर क्या-क्या जाना? और क्या-क्या समझा?

मगर मैं सत्य बात बतला न सका। बतलाने में मन ने मुझे मना कर दिया। आत्मा भी बाधा दी। मैंने उल्टी बात बतलायी। चेहरे पर यथासम्भव प्रसन्नता लाते हुए कहा—सब ठीक है। मंगलमय है। भविष्य सुन्दर और सुखद है।

आयु कितनी है? कविता ने मेरी ओर देखते हुए पूछा।

बहुत है। पूर्ण आयु समझिये।

लेकिन कालीघाट के ज्योतिषी रमापद बाबू ने हाथ देखकर कहा था कि असमय में मेरी मृत्यु होगी यानी अकाल मृत्यु ।

ठीक ही कहा था। अगर

उत्सुकतापूर्वक बीच में ही कविता पूछ बैठी—अगर क्या?

मैंने कविता के सुन्दर मुख की ओर देखा। उसकी कजरारी आँखों में चमक थी। जवाकुसुम जैसे गालों पर लावण्य के कण बिखरे थे। देखकर मेरा हृदय करुणा से भर गया एकबारगी। मैंने शब्दों में ममता उड़ेलते हुए कहा, अगर कोई आपको भरपूर चाहे, आपको भरपूर प्रेम करे और प्रतिदान के रूप में आप भी उससे उतना ही प्रेम कर सकें तो ।

यह सुनकर कविता के चेहरे पर प्रसन्नता छा गयी और लाल हो आये चेहरे को आँचल से पोंछने लगी। क्यों पोंछने लगी वही जाने। जाते समय उसने एक बार पलट कर भरपूर दृष्टि से मेरी ओर देखा और धीरे से मुस्करा दी।

न जाने क्यों मैं हौले से पूछ बैठा—मैं तांत्रिक हूँ। आपको मुझसे भय तो नहीं लग रहा है न?

मुस्कराकर कविता ने उत्तर दिया—नहीं! अब नहीं लग रहा है। मैंने पूछा—कब से? कुछ क्षण मौन रहकर अस्फुट स्वर में कविता ने कहा—जब से आपने मेरा हाथ थामा है। फिर वह खिलखिलाकर एकबारगी हँस पड़ी। बड़ी मोहक हँसी थी वह।

मैं मानो अघा-सा फिर कविता के इस मधुर शब्द को हृदय से सँजोये दूसरे का भविष्य जानने में लग गया।

कलकत्ते में चार-पाँच महीने रहा। कविता प्रायः रोज ही मेरे यहाँ आने लगी। हम दोनों एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट होते चले गये। मैं कविता से प्रेम करने लगा। एक दिन कौन-सा ऐसा क्षण था, कौन-सा संयोग था ऐसा कि सहसा कविता को अपने आलिंगन में ले लिया और उसके रक्तिम, कोमल होंठों पर अपना होंठ रख दिया मैंने। उसने कोई विरोध नहीं किया और फिर न जाने कब मैं अपना आपा खो बैठा। दूसरे ही क्षण एक-दूसरे के मन, प्राण और शरीर एकाकार हो गये। अब तक मुझे अशरीरी नारी का प्रेम मिला था, किन्तु उस समय मन, प्राण, आत्मा के सुख के साथ-साथ नारी-शरीर का भी सुख मिला, जिसकी अनुभूति में खो-सा गया मैं।

(४)

चिताएँ बुझ चुकी थीं। साँझ की सुरमई फैल गयी थी धरती पर। यमराज के मन्दिर का टूटा घण्टा टन्-टन् कर बजने लगा था। आरती हो रही थी काल के प्रतिनिधि की। तांत्रिक संन्यासी ने थोड़ा ठहरकर अपनी कथा आगे सुनानी शुरू की।

एक दिन कविता ने बतलाया कि रात के समय उसे भय-सा लगता है। जैसे कोई नारी छाया चुपचाप उसके आसपास घूम रही है। कभी-कभी वातावरण में कोई विचित्र-सी गन्ध फैल जाती है। तब वह पूरी रात सो नहीं पाती। मुझे समझते देर न लगी। वह भैरवी की ही छाया थी। सहसा मुझे उसके अन्तिम शब्द याद हो आये—जिस दिन तुम अपने चरित्र-बल को गँवा बैठोगे, उसी दिन मैं भी तुम्हारा साथ छोड़ दूँगी हमेशा-हमेशा के लिए। मैं भैरवी को गँवाना नहीं चाहता था। वह मेरी बहुत अमानवीय शक्ति थी। उसी के बल पर मैंने इतना सब कुछ प्राप्त किया था। किसी भी मूल्य पर उसको मैं अपने-आप से अलग नहीं होने देना चाहता था।

मैंने कविता के सामने दूसरे ही दिन विवाह का प्रस्ताव रख दिया। ऐसा लगा मानो इसके लिए वह पहले से ही तैयार थी। उसने तुरन्त मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उसी मास की पूर्णिमा को हम दोनों विवाह-सूत्र में बँध गये।

जीवन अचानक इस मोड़ पर घूम जायेगा—मैं क्या जानता था? मैंने क्या यह सोचा था कि इस संसार में जिसका अपना कोई नहीं है—उसी का इस नगर में सबसे अधिक अपना कोई हो जायेगा।

मैं कविता को लेकर ढाका आ गया। स्थायी रूप से ही ढाका में रहने का विचार कर लिया था मैंने। बड़े सुख से जीवन व्यतीत हो रहा था। विवाह करके मैंने अपने चरित्र को बचा लिया था। इससे भैरवी मेरे हाथ से निकल तो न सकी, फिर भी उसकी शक्ति मेरे लिए अवश्य कम हो गयी। मधुर कोमल सम्बन्ध में भी थोड़ा अन्तर आ गया था। मगर मैंने कविता के प्रेम के सामने इसकी विशेष चिन्ता नहीं की।

ढाका में ढाकेश्वरी देवी का सिद्धपीठ है। वहाँ का वातावरण आध्यात्मिक लगा मुझे और मैंने कविता को भैरवी-दीक्षा देकर उसके सहयोग से अपनी आगे की साधना शुरू कर दी। एक लम्बी साँस लेकर तांत्रिक संन्यासी बोला—बस बन्धु! यही गलती हो गयी मुझसे। मुझे कविता को भैरवी नहीं बनाना चाहिए था। दीपावली की महानिशा बेला में कविता की सहायता से एक विशेष साधना का आयोजन किया था मैंने। क्या मेरी वह आयोजन सफल हुई? नहीं। उस दिन सायंकाल के समय एक आवश्यक कार्य से श्मशान की ओर जाना पड़ गया मुझे। कविता घर पर थी और साधना के लिए सामग्री की व्यवस्था में जुटी थी। उसकी सहायता के लिए मेरा शिष्य रघुनाथ भी था। मैं थोड़ी देर में वापस लौटा। रास्ते में रघुनाथ घबराया हुआ मुझे मिला।

क्या बात है रघुनाथ! तुम इतने घबराये हुए क्यों हो? मैंने पूछा।

मेरे पूछने पर रुँआसे स्वर में बोला रघुनाथ—गुरुजी! इतना कहकर रोने लगा वह।

फिर किसी तरह अपने को सँभालकर आगे बोला—माता जी को काली नागिन ने डस लिया है। वह पूजा-घर में बेहोश पड़ी हुई हैं।

यह सुनकर मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। साथ ही छाती धड़कने लगी। मैं तीर की तरह भागा। पूजा-घर में जाकर देखा—कविता जमीन पर पड़ी हुई थी। सारा शरीर काला पड़ गया था उसका। वह मर चुकी थी। मेरा साथ छोड़कर हमेशा के लिए वहाँ चली गयी थी जहाँ से कोई वापस नहीं लौटता। कविता की निर्जीव काया पर काफी देर तक सिर धुनता रहा मैं। दीपावली की रात का सारा अंधकार मेरे जीवन में उतर आया था। समझते देर न लगी मुझे।

काली नागिन के रूप में भैरवी ने ही डसा था कविता को। पत्नी रूप को तो वह सहन कर गयी थी। लेकिन उसका भैरवी रूप सहन न कर सकी वह।

इतना सुना चुकने के बाद वह रहस्यमय तांत्रिक संन्यासी सहसा मौन साध गया और एकटक श्मशान में जलती हुई चिता की ओर देखने लगा। उस समय उसके मुख पर असीम वेदना, पीड़ा और व्यथा के मिले-जुले भाव एक साथ तैर रहे थे।

(५)

रात का पहला पहर गुजर चुका था। चौथ का पीला चाँद जंगलों के झुरमुट की ओर से झाँकने लगा था। चारों ओर साँय-साँय हो रहा था। पद्‌मा के किनारे की झाड़ियों में छिपे झींगुरों का अनवरत क्रन्दन शुरू हो गया था। सहसा यमराज के मन्दिर के पीछे से समवेत स्वर में सियारों के रोने की आवाज आयी। उसी समय तांत्रिक संन्यासी ने बुझे हुए स्वर में आगे कहना शुरू किया।

बन्धु! प्रश्न यह उठता है कि क्या सचमुच भैरवी नागिन का रूप धारण कर सकती है? क्या हिमालय में ऐसे रहस्यमय गुप्त तांत्रिक मठ हैं? क्या ऐसे मठों में दूसरे लोक की आत्माएँ नारीरूप धारण करके भैरवी के वेश में आती हैं? क्या तंत्र-मंत्र में ऐसी अलौकिक शक्ति होती है?

आप कहेंगे कि नहीं जानता। किन्तु बन्धु! भारतीय संस्कृति का इतिहास कहता है कि तांत्रिक विद्या असत्य नहीं है। आज के विज्ञान की दृष्टि से दूर भी अनेक ऐसे सत्य विद्यमान हैं जिनकी मनुष्य कल्पना भी नहीं कर सकता। उनकी खोज में विज्ञान कभी सक्षम नहीं हो सकता। मैंने ऐसे ही सत्यों को देखा है और उनका अनुभव भी किया है।

(६)

उस समय मेरे मन में अनेक प्रकार के भाव और अनेक प्रकार की जिज्ञासाएँ उठ रही थीं, जिनमें संशय की ही मात्रा अधिक थी। शायद मेरे संशय को तांत्रिक संन्यासी समझ गया। बोला—क्या आपको मेरी कथा की सत्यता पर संशय अथवा सन्देह है? क्या मेरी बातों को कल्पना समझ रहे हैं आप?

नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है।

संन्यासी एकबारगी हो-हो कर हँसने लगा। बड़ी ही विचित्र हँसी थी। शायद मेरी दुर्बलता पकड़ी गयी थी। चिता से उठ रही लाल-लाल लपटों का हल्का पीला प्रकाश उस समय उसके मुख पर पड़ रहा था। सहसा किसी अतीन्द्रिय ज्योति से उसकी आँखें दप् से जल उठीं और उसी के साथ उसके पाण्डु मुख पर एक अमानवीय भाव भी तैर गया। फिर भी बड़े ही शान्त और निर्विकार स्वर में वह बोला—कविता से भले ही मेरा सारा संबंध टूट गया, लेकिन बन्धु! उस भैरवी से और उस अलौकिक तांत्रिक मठ से मेरा आज भी अगोचर सम्बन्ध है। प्रत्येक वर्ष दीपावली की महानिशा में वह भैरवी इसी श्मशान में मिलने के लिए आती है मुझसे।

क्या कहा आपने ?

हाँ बन्धु! सत्य कह रहा हूँ। यदि आप उसे देखना चाहें तो देख सकते हैं।

अगर देखना सम्भव है तो मैं अवश्य दीपावली तक यहाँ रुकूँगा। मैंने कहा।

अवश्य रुकिये।

मगर दीपावली को तो अभी पूरे दस दिन शेष हैं। मैं चाहता हूँ कि इस अवधि में आप मुझे बिन्दु-साधना के गूढ़ और गोपनीय रहस्यों से भलीभाँति परिचित करा दें। मैं इस बात से पूर्ण रूप से अवगत हूँ कि तंत्र के जितने भी गुह्य आयाम हैं—उन सबके मूल में एकमात्र बिन्दु-साधना ही है। इस रहस्यमयी साधना के विषय में कहीं भी प्रचुर और पूर्ण उपलब्ध नहीं है और न तो कोई बतलाने वाला ही है। अगर किसी साधक को उसका ज्ञान और अनुभव प्राप्त भी है तो वह उसे प्रकाशित करना नहीं चाहता। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपको इस गोपनीय साधना का सांगोपांग ज्ञान और अनुभव दोनों ही उपलब्ध हैं। यदि आपने मेरे अनुरोध की उपेक्षा कर दी तो निश्चय ही इस गम्भीर विषय पर कोई भी प्रकाश डालने वाला नहीं मिलेगा मुझे।

तांत्रिक संन्यासी से टाला न गया मेरा अनुरोध। मुस्कराकर स्वीकृति में सिर हिला दिया उसने। फिर पूरे दस दिनों की अवधि में बिन्दु-साधना से सम्बन्धित जिन गूढ़ गोपनीय और रहस्यमय विषयों पर चर्चा हुई, उन पर एक स्वतंत्र ग्रन्थ लिखा जा सकता है। स्थानाभाव के कारण यहाँ उनके कतिपय मुख्य अंश पर ही संक्षिप्त में प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है।

(७)

दूसरे दिन सायंकाल निश्चित समय पर वह तांत्रिक आ गया। मैं यमराज के मन्दिर के चबूतरे पर पहले से ही बैठा इन्तजार कर रहा था उसका। आते ही वह कहने लगा—आप बिन्दु-साधना के रहस्यों से परिचित होना चाहते हैं न। मगर इसके पहले आपको कुछ समझना होगा।

तंत्र अद्वैत-मार्ग का शास्त्र है। तांत्रिक साधना, द्वैत से अद्वैत की यात्रा है। तंत्र का मुख्य साधना-विषय है—कुण्डलिनी-योग और बिन्दु-योग—दोनों एक ही है। इसी प्रकार कुण्डलिनी-साधना और बिन्दु-साधना भी एक ही है। केवल बाह्य दृष्टि से थोड़ा भेद जान पड़ता है।

तंत्र का गुप्त उपदेश यह है कि बिना दीक्षा के सत्य ज्ञान का उदय सम्भव नहीं है और बिना अभिषेक के उस ज्ञान के अन्यत्र संचार की सामर्थ्य भी उपलब्ध नहीं होती। इसलिए जिसका यथार्थ पूर्णाभिषेक नहीं हुआ है—वह गुरुपद में आसीन होने के योग्य नहीं है।

अभिषेक क्या है ? मेरे इस प्रश्न के उत्तर में तांत्रिक संन्यासी ने कहा—अभिषेक-तत्व एक गम्भीर और गहन रहस्य है, जिसका उद्‌घाटन न उचित है और न तो सम्भव ही है।

जैसा कि मैंने कहा, कुण्डलिनी-योग तंत्र-साधन का एकमात्र विषय है। कुण्डलिनी-योग के अनुसार सत्य की खोज जीवन के अस्तित्व के रहस्यों की खोज है। जीवन है—जगत् है—अस्तित्व है—होश है—इन्द्रियाँ हैं—यानी सब कुछ है—लेकिन इन सबके होते हुए भी जीवन के सत्य से मनुष्य अज्ञात और अपरिचित है। जीवन का यह अज्ञान और यह अपरिचय मनुष्य के लिए पीड़ादायी है। अभी तक जीवन-प्रवाह में मनुष्य विकास की जिस स्थिति में पहुँचा है—वह वास्तव में अपर्याप्त और अधूरा है। विराट् की सम्भावना की तुलना में मनुष्य एक बीजमात्र है। लेकिन बन्धु, उस बीज में गुप्त रूप से बहुत कुछ छिपा हुआ है। उसी बहुत कुछ को प्रकाश में लाना कुण्डलिनी-योग का लक्ष्य है।

मनुष्य के अस्तित्वगत अन्तर्विकास व अन्तर्यात्रा की जो प्रक्रिया जानी-समझी गयी और खोजी-पहचानी गयी उसी से 'धर्म' का निर्माण हुआ है। जैसे विज्ञान ने पदार्थ जगत् और स्थूल जीवन के रहस्यों की खोज की है, उसी प्रकार एक अस्तित्वगत अन्तरात्म जगत् व अन्तश्चेतना जगत् की भी खोज की गयी है जिसके पराविज्ञान को धर्म ने विकसित किया है। इसी खोज को धर्म 'साधना' कहता है और उसकी अन्त:प्रक्रियाओं को कहता है योग। समझ गये न ? योग के जितने भी आयाम हैं उनमें कुण्डलिनी-योग सर्वाधिक महत्वपूर्ण और उपयोगी सिद्ध हुआ है। कुण्डलिनी की अन्तर्यात्रा स्थूलतम आधार से शुरू होकर सूक्ष्म-से-सूक्ष्म होती हुई—सूक्ष्मातिसूक्ष्म का भी अतिक्रमण कर परम सत्य तक मनुष्य को पहुँचाती है। कुण्डलिनी-साधना अपने विकास की ऊँचाइयों में योग के अनेक आयामों को और विभिन्न प्रक्रियाओं को अपने में समाहित कर लेती है। इसीलिए इस साधना को सिद्धयोग-महायोग नाम भी दिया गया है। सच पूछा जाय तो कुण्डलिनी-साधना अथवा बिन्दु-साधना आन्तरिक रूपान्तरण और जागरण की वैज्ञानिक प्रक्रिया है।

(८)

कुण्डलिनी-योग की यात्रा छह शरीर और छह चक्रों के भेदन की यात्रा है। इस यात्रा में प्रथम चार शरीर और चार चक्र की साधना को 'बिन्दु-साधना' कहते हैं। इसलिए कि प्रथम चार शरीर और चार चक्र की साधना का आधार एकमात्र बिन्दु होता है। उसके बाद साधना का आधार होती है आत्मा।

पंचकोष के संबंध में आपका क्या विचार है इस प्रसंग में ?

पंचकोष उन तत्वों के कोष हैं—जिनके द्वारा छह शरीरों का निर्माण होता है। अन्नमय कोष का सारांश वीर्य, शुक्रधातु अथवा शुक्रबिन्दु है और है रजोबिन्दु। प्राणमय कोष का सारांश ओजस्, तेज, कान्ति, लावण्य, आभा, प्राण आदि है। इसी प्रकार मनोमय कोष का सारांश मनस्तत्व अथवा मन है। अन्नमय कोष से स्थूल शरीर और भाव शरीर का—प्राणमय कोष से सूक्ष्मशरीर का—मनोमय कोष से मन:शरीर का—विज्ञानमय कोष से आत्मशरीर का तथा आनन्दमय कोष से ब्रह्मशरीर का निर्माण होता है। कुण्डलिनी योग के अनुसार शुक्रबिन्दु पुरुषतत्व है और रजोबिन्दु स्त्रीतत्व है। शिव और शक्ति विश्व के मूलाधार तत्व हैं। शिव-तत्व और शक्ति-तत्व का पर्याय पुरुष-तत्व और स्त्री-तत्व है। शिव प्रकाश है और शक्ति है स्फूर्ति। प्रकाशरूप शिव-तत्व जब स्फूर्तिरूप शक्ति-तत्व के साथ सामंजस्य भाव स्थापित करता है तो बिन्दुरूप धारण करता है। इसी प्रकार स्फूर्तिरूप शक्ति-तत्व जब प्रकाशरूप शिव-तत्व के साथ सामंजस्य स्थापित करता है तो 'नादरूप' धारण करता है। आगे बिन्दु और नाद आपस में संयुक्त होकर मिश्रित रूप धारण करते हैं। आपको मालूम होना चाहिए कि इसी मिश्रित रूप का नाम 'काम' है। यह मिश्रित रूप देवपरक और देवीपरक दोनों है। उसमें दोनों तत्वों का तादात्म्य है।

शिव-तत्व का वर्ण श्वेत है और शक्ति-तत्व का वर्ण है रक्त। इन दोनों वर्ण-बिन्दुओं के मिश्रित रूप को 'कला' की संज्ञा दी गयी। पुन: इन वर्ण-बिन्दुओं के साथ उस मिश्रबिन्दु के साहचर्य से एक अति विलक्षण तत्व का निर्माण होता है, जिसे 'कामकला' कहते हैं। इस प्रकार इन चार प्रकार की शक्तियों से सृष्टि प्रारम्भ होती है। इस सम्बन्ध में कवि कालिदास का निम्न श्लोक अत्यन्त मार्मिक है—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥

(९)

उपर्युक्त 'कामकला' जो मिश्रित बिन्दु है वह तंत्रशास्त्र में पराशक्ति अथवा कुण्डलिनी शक्ति के रूप में परिकल्पित है। अब मैं आपको सात शरीरों के सम्बन्ध में बतलाऊँगा। स्थूलशरीर, भावशरीर, सूक्ष्मशरीर, मन:शरीर, आत्मशरीर, ब्रह्मशरीर और निर्वाणशरीर—ये सात शरीर हैं। इन सातों शरीरों के जो अपने केन्द्र हैं—योग की भाषा में उन्हें चक्र कहते हैं। वे सातों चक्र नाड़ीगुच्छ के रूप में मेरुदण्ड में स्थित हैं। इडा, पिंगला और सुषुम्ना इन तीन महत्वपूर्ण नाड़ियों द्वारा वे सातों चक्र एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। बिन्दु-साधना का सम्बन्ध प्रथम चार चक्र और शरीर से है। पुरुष और स्त्री का भेद समाप्त हो जाता है। फिर न कोई रहता है पुरुष और न तो फिर कोई रहती है स्त्री।

जैसा कि मैंने कहा है—बिन्दु-साधना में प्रथम चार शरीर का महत्त्व और उसकी उपयोगिता है। साधना का साधन है वे चारों शरीर। आपको मालूम होना चाहिए कि पुरुष के चारों शरीर केवल पुरुष के ही नहीं हैं। स्त्री के भी चारों शरीर केवल स्त्री के ही नहीं

हैं। पुरुष का पहला और तीसरा शरीर पुरुष का है, और दूसरा व चौथा शरीर स्त्री का है। इसी प्रकार स्त्री का पहला और तीसरा शरीर तो है स्त्री का और दूसरा व चौथा शरीर है पुरुष का। समझ में आया न आपके ?

पुरुष का पहला और तीसरा शरीर ऋणात्मक है और दूसरा व चौथा शरीर धनात्मक है। इसी प्रकार स्त्री का पहला और तीसरा शरीर धनात्मक है और दूसरा व चौथा शरीर ऋणात्मक है। इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो पुरुष आधा पुरुष और आधा स्त्री तथा स्त्री भी आधी स्त्री और आधी पुरुष है। न पुरुष ही पूर्ण है अपने स्थान पर और न तो स्त्री ही पूर्ण है अपने स्थान पर। दोनों ही अपूर्ण हैं।

दोनों पूर्ण कब होते हैं ? प्रश्न किया मैंने।

पुरुष का आधा शरीर और स्त्री का आधा शरीर आपस में मिलकर पूरा एक शरीर बनता है। वह शरीर पुरुष का भी हो सकता है और स्त्री का भी।

(१०)

पुल्लिग-शरीर में ऋणात्मक और स्त्रीलिग-शरीर में धनात्मक विद्युत्-धारा होती है।

इन दोनों प्रकार की विद्युत्-धाराओं का मूलस्रोत एकमात्र कुण्डलिनी-शक्ति ही हैं। दोनों धाराएँ एक-दूसरे के विपरीत गुण-स्वभाव की हैं। लेकिन जब पुरुष का आधा शरीर और स्त्री का आधा शरीर आपस में संयुक्त होते हैं और उनका मिलन होता है तो दोनों विद्युत्-धाराओं की एक इकाई (एक यूनिट) बनती है। एक सर्किल बनता है और बनता है एक आवर्तन।

आपका 'मिलन' शब्द से क्या तात्पर्य हैं ?

यहाँ 'मिलन' शब्द का प्रयोग 'सम्भोग' अथवा 'सहवास' के लिए किया गया है। मिलन दो प्रकार का है—बहिर्मिलन और अन्तर्मिलन। जब पुरुष का पहला शरीर और स्त्री का पहला शरीर आपस में संयुक्त होते हैं तो उसे 'बहिर्मिलन' कहते हैं। मिलन की यह पहली दिशा है। और यह दिशा प्रकृति की दिशा है क्योंकि इससे प्रकृति का कार्य होता है, जिसका परिणाम है सन्तानोत्पत्ति। मगर यह उपलब्धि तभी सम्भव है जबकि दोनों धाराओं का प्रवाह समान होगा। यहाँ एक बात और समझ लेनी चाहिए कि ऋणात्मक विद्युत का प्रवाह शुक्रबिन्दु में और धनात्मक विद्युत का प्रवाह रजोबिन्दु में होता है और जिस केन्द्र में इकाई बनती है वह केन्द्र है मूलाधार चक्र।

अन्तर्मिलन किसे कहते हैं ?

स्त्री-पुरुष के दूसरे, तीसरे और चौथे शरीर के मिलन को अन्तर्मिलन कहते हैं। जैसे बहिर्मिलन प्रकृति की दिशा में है उसी प्रकार अन्तर्मिलन है परमात्मा की दिशा में। पहला है भोग की दिशा और दूसरा है योग की दिशा। एक है प्रवृत्ति का मार्ग और दूसरा है निवृत्ति का मार्ग। पहला बन्धन है और दूसरा है मुक्ति यानी मोक्ष।

बिन्दु-साधना के चार चरण और भैरवी तथा महाभैरवी

मूलाधार चक्र पृथ्वीतत्वप्रधान होने के कारण स्थूल शरीर के निर्माण का केन्द्र है। स्त्री-पुरुष के स्थूल शरीर के मिलन से जो विद्युत-ऊर्जा इस चक्र में उत्पन्न होती है, उसी के परिणामस्वरूप स्थूल शरीर का बीज निर्मित होता है। बिन्दुयोग का एकमात्र लक्ष्य है इसी बहिर्मिलन का आश्रय लेकर अन्तर्मिलन की दिशा में उन्मुख होना। सूक्ष्म में प्रवेश करने के लिए स्थूल का ही आश्रय लिया जाता है। अस्तु।

तांत्रिक संन्यासी थोड़ा रुककर आगे बतलाने लगा—बिन्दु-साधना के मुख्यत: चार चरण हैं। स्त्री-पुरुष के प्रथम शरीर का मिलन साधना के प्रथम चरण का विषय है। प्रथम चरण की इस साधना-भूमि में विशेष योग-तांत्रिक क्रियाओं द्वारा पारद की तरह चंचल और अस्थिर शुक्रबिन्दु और रजोबिन्दु—दोनों स्थिर हो जाते हैं। उनके पतित होने की सारी सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं। योग की भाषा में इसी स्थिर अवस्था को बिन्दुप्रतिष्ठा कहते हैं। आपको मालूम होना चाहिए कि बिन्दुप्रतिष्ठा तभी सम्भव है जबकि वह पूर्णतया संशोधित हुई रहती है और इसके लिए एक गुह्य योग-तांत्रिक क्रिया की आवश्यकता पड़ती है।

वह 'गुह्यक्रिया' क्या है?

उस पर प्रकाश डालने की अनुमति नहीं है।

(११)

साधना के दूसरे चरण में पुरुष का दूसरा शरीर—जो स्त्री का होता है और स्त्री का दूसरा शरीर—जो पुरुष का होता है—संयुक्त होते हैं। इस अन्तर्मिलन की अवस्था में दोनों विद्युत्-धाराओं का केन्द्र होता है स्वराधिष्ठान चक्र। इस केन्द्र में दोनों धाराओं के संयोग से जो ऊर्जा उत्पन्न होती है उसके प्रभाव से दोनों स्थिर अथवा प्रतिष्ठित बिन्दु ऊर्ध्वगामी होते हैं। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि जिस मार्ग से स्त्री-पुरुष के बिन्दुओं का पतन होता है—उसी मार्ग से उनका उत्थान भी होता है।

(१२)

साधना के तीसरे चरण में पुरुष का तीसरा शरीर—जो पुरुष का होता है और स्त्री का तीसरा शरीर—जो स्त्री का होता है—संयुक्त होते हैं। इस अन्तर्मिलन की अवस्था में दोनों विद्युत्-धाराओं की इकाई का केन्द्र होता है मणिपूर चक्र। उसमें उत्पन्न ऊर्जा के प्रभाव से—जैसे दूसरे चरण में दोनों बिन्दुओं की मूलाधार से स्वाधिष्ठान तक की यात्रा होती है—उसी प्रकार इस तीसरे चरण में दोनों की यात्रा होती है—स्वाधिष्ठान से मणिपूरक तक।

(१३)

साधना के चौथे चरण में पुरुष का चौथा शरीर—जो स्त्री का होता है और स्त्री का चौथा शरीर—जो पुरुष का होता है—संयुक्त होते हैं। अन्तर्मिलन की इस अवस्था में दोनों विद्युत्-धाराओं की इकाई का केन्द्र होता है अनाहत चक्र। इस चक्र में जो ऊर्जा उत्पन्न होती है उसके प्रभाव से दोनों बिन्दुओं का उत्थान मणिपूर से अनाहत तक होता है। साधना के इस अन्तिम चरण में बिन्दुयोग का एक अति महत्वपूर्ण लक्ष्य पूरा होता है। इस लक्ष्य की पूर्ति योग-तंत्र की अतिमूल्यवान उपलब्धि समझी जाती है। इसका कारण अतिशय महत्वपूर्ण है और वह यह कि अनाहत चक्र मन:शरीर से सम्बन्धित चक्र है और मन:शरीर की घटना है कुण्डलिनी-शक्ति का जागरण। अनाहत चक्र में जो विद्युत्-ऊर्जा उत्पन्न होती है—वह अन्य केन्द्रों की ऊर्जाओं से कई गुना अधिक शक्तिशालिनी होती है। उसी की प्रचण्ड ऊष्मा से प्रसुप्त कुण्डलिनी जागृत हो उठती है।

कुण्डलिनी-योग में शक्तिपात-दीक्षा का भारी महत्त्व है। इस संबंध में आपका क्या विचार है ? प्रश्न किया मैंने।

शक्तिपात-दीक्षा में तीन शब्द हैं। पहला है 'शक्ति' जिसका अभिप्राय 'कुण्डलिनी शक्ति' से है। दूसरा शब्द 'पात' है। 'पात' का अभिप्राय है कुण्डलिनी-शक्ति का जागरण। तीसरा शब्द है 'दीक्षा', जिसका अभिप्राय है—एक ऐसी गुह्यक्रिया—जिसके द्वारा कुण्डलिनी-शक्ति का जागरण होता है।

शक्तिपात-दीक्षा सभी के लिए सम्भव नहीं है। क्योंकि यह अतिगुह्य दीक्षा है। सद्‌गुरु द्वारा यह दीक्षा उसी व्यक्ति को प्राप्त होती है—जिसने कभी किसी जन्म में चार शरीर तक बिन्दु-साधना की तो अवश्य है लेकिन शक्ति का जागरण नहीं हुआ है। अथवा उस सीमा पर नहीं पहुँच सका है—जहाँ 'जागरण' सम्भव है। सद्‌गुरु ऐसे व्यक्ति की खोज में बराबर रहते हैं और साक्षात्कार होते ही उसे दीक्षा प्रदान करते हैं, जिसके फलस्वरूप 'सद्‌गुरु' की ऊर्जा की ऊष्मा से उस व्यक्ति की 'शक्ति' जागृत हो जाती है।

तंत्र-मार्ग शक्ति का मार्ग है और शक्ति-मार्ग आत्मा का मार्ग है। इसी प्रकार योग-मार्ग शिव का मार्ग है और शिव-मार्ग है शरीर का मार्ग। शिवरूपी शरीरशक्ति शक्ति-रूपी आत्मा के साक्षात्कार का एकमात्र साधन है। एक है आधार और दूसरा है आधेय। एक साधन है और दूसरा है साध्य। लेकिन योगपरक तन्त्र-साधना के सभी मार्गों में दीक्षा की अपनी गरिमा है और है अपना महत्त्व। बिना दीक्षा के कुछ भी सम्भव नहीं। बिन्दु-साधना मार्ग के लिए भी ऐसा ही समझना होगा। इसकी साधना-भूमि में सद्‌गुरु साधक को योजनिका-दीक्षा और उसकी नवपरिणीता पत्नी को क्रम से भैरवी और महाभैरवी की दीक्षा प्रदान करते हैं। अगर महाभैरवी की दीक्षा के समय किसी कारणवश सद्‌गुरु उपस्थित नहीं हुए तो ऐसी अवस्था में स्वयं साधक को महाभैरवी दीक्षा प्रदान करने का अधिकार है।

यहाँ मेरी एक जिज्ञासा है और वह यह कि यदि नवपरिणीता पत्नी में साधना की दृष्टि से भैरवी बनने की योग्यता न हो, उसमें अनुकूल लक्षण का अभाव हो तो ऐसी स्थिति में ।

मेरा वाक्य पूरा न हो पाया, बीच में ही बोल पड़ा वह तांत्रिक संन्यासी—'ऐसी स्थिति में जिस परकीया कुमारी स्त्री में योग्यता और लक्षण हो—उसे साधना-भूमि स्वीकार कर लिया जाता है, सद्गुरु के आदेश से। मगर सद्गुरु आदेश तभी प्रदान करते हैं जब नवपरिणीता पत्नी में योग्यता और लक्षण न हो। या फिर उस अवस्था में देते हैं जबकि पत्नी का किसी कारणवश अभाव हो। सम्भवत: आप मुझसे यह भी जानना चाहेंगे कि साधना-भूमि में 'स्त्री' की आवश्यकता का अनुभव क्यों होता है ?

हाँ! यह भी मेरी एक जिज्ञासा है। मैंने कहा।

समयाभाव के कारण मैं इस विषय पर थोड़ा-सा ही प्रकाश डालूँगा। बिन्दुयोग के जितने भी उद्देश्य हैं, उनमें एक उद्देश्य 'पूर्णता-लाभ' भी है। आपको मालूम होना चाहिए कि स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों एक-दूसरे के अभाव में अपूर्ण हैं। जब तक वे अपूर्ण हैं, जब तक वे अपूर्ण रहेंगे—तब तक उनकी 'त्रिपुटी' का नाश न होगा और वे अपने-अपने अभाव की पूर्ति के उद्देश्य से बार-बार जन्म लेते रहेंगे। उनकी पूर्णता के दो आधार हैं। पहला है भौतिक तथा दूसरा है आध्यात्मिक। हमारी संस्कृति में 'प्रणय' और 'परिणय' ये दो शब्द अति महत्वपूर्ण और अति मूल्यवान हैं। पहला 'प्रेम' का पर्याय है और दूसरा है 'विवाह' का पर्याय। 'विवाह' एक सामाजिक और धार्मिक 'कृत्य' तो है, लेकिन उसमें अध्यात्म की भी सुगन्ध है। सामाजिक नियमों के अनुसार और धार्मिक सिद्धान्तों के आधार पर 'परिणय-सूत्र' में बँधना 'विवाह-संस्कार' है। आध्यात्मिक दृष्टि से यहाँ 'परिणय' शब्द विवाह के अतिरिक्त अपना एक विशिष्ट अर्थ रखता है जिसका संकेत 'प्रणय' की ओर है। परिणय-सूत्र में बँधने का एकमात्र कारण यह है कि वह आध्यात्मिक अद्वयानन्द को प्राप्त करने का तात्कालिक भौतिक साधन है। इससे 'त्रिपुटी' का नाश हो जाता है। यह स्त्री-पुरुष के पूर्णत्वलाभ का जागतिक आधार है। लेकिन फिर भी वह सन्दिग्ध है। इसलिए कि स्त्री-पुरुष में पूर्ण सामंजस्य पूर्ण तादात्म्य और साथ ही पूर्ण सामरस्य का होना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। साधना द्वारा अन्तर्मिलन की जिस व्यवस्था के सम्बन्ध में मैं आपको बतला रहा हूँ—वह है—'पूर्णत्वलाभ' का आध्यात्मिक आधार।

(१४)

मैं अब आपको बिन्दु-उत्थान की उपलब्धियाँ क्या हैं, इस सम्बन्ध में बतलाऊँगा। इस संसार में सब कुछ है, लेकिन शान्ति और आनन्द ये दो वस्तुएँ नहीं हैं। जिसे हम शान्ति समझते हैं वह वास्तविक शान्ति नहीं है। जिसे हम आनन्द समझते हैं, वह भी वास्तविक आनन्द नहीं है। बिन्दुयोग का दूसरा उद्देश्य है शान्ति और आनन्द की उपलब्धि—वैसे दोनों की हल्की-सी झलक और हल्की-सी अनुभूति निद्रा और संभोग

की अवस्था में प्राप्त अवश्य होती है। लेकिन वह प्रतीक मात्र है। वास्तविक शान्ति कहीं उपलब्ध होती है तो 'समाधि' में और वास्तविक आनन्द कहीं उपलब्ध होता है तो बिन्दु के ऊर्ध्वगमन की अवस्था में। योग के अनुसार 'आनन्द' पाँच प्रकार का है—सहजानन्द, परमानन्द, नित्यानन्द, दिव्यानन्द और ब्रह्मानन्द। इनसे सम्बन्धित पाँच प्रकार की विभिन्न समाधियाँ भी हैं।

सहजानन्द

मूलाधार चक्र से स्वराधिष्ठान चक्र पर्यन्त तक की बिन्दु-यात्रा की अवस्था में जिस आनन्द की अनुभूति होती है, उसे 'सहजानन्द' कहते हैं। बिन्दु की पतितावस्था में जिस क्षणिक आनन्द की अनुभूति होती है उससे इस सहजानन्द की अनुभूति दस गुनी अधिक होती है।

परमानन्द

स्वाधिष्ठान से मणिपूर चक्र पर्यन्त तक की ऊर्ध्वमुखी बिन्दु-यात्रा की अवस्था में जिस आनन्द की अनुभूति होती है, उसे 'परमानन्द' कहते हैं। सहजानन्द से इस आनन्द की अनुभूति बीस गुनी अधिक होती है।

नित्यानन्द

मणिपूर से अनाहत चक्र पर्यन्त तक की ऊर्ध्वमुखी बिन्दुयात्रा की अवस्था में जिस आनन्द की अनुभूति होती है, उसे 'नित्यानन्द' कहते हैं। परमानन्द से इस आनन्द की अनुभूति पचास गुनी अधिक होती है।

दिव्यानन्द और ब्रह्मानन्द

अनाहत से विशुद्धारण्य चक्र पर्यन्त तक की बिन्दुयात्रा में जिस आनन्द की अनुभूति होती है, उसे 'दिव्यानन्द' कहते हैं। नित्यानन्द से इस आनन्द की अनुभूति पचहत्तर गुनी अधिक होती है। इसी प्रकार विशुद्धारण्य से आज्ञाचक्र पर्यन्त तक की बिन्दुयात्रा में जिस आनन्द की अनुभूति होती है, उसे 'ब्रह्मानन्द' कहते हैं। इसे पूर्णानन्द भी कहते हैं।

चिदानन्द और सच्चिदानन्द

आज्ञाचक्र से सहस्रार चक्र पर्यन्त तक की बिन्दुयात्रा अति महत्वपूर्ण है। योग की दृष्टि से उसकी उपलब्धि अति मूल्यवान समझी जाती है। इस यात्रा में ब्रह्मानन्द उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ क्रमशः 'चिदानन्द' और 'सच्चिदानन्द' में परिवर्तित हो जाता है। सच्चिदानन्द चरम पराकाष्ठा का आनन्द है। वास्तव में ये दोनों आनन्द ब्रह्मानन्दानुभूति के ही गहनतम से भी गहनतम रूप हैं।

(१५)

अधोमुख विन्दु का पतन तो त्वरित होता है। लेकिन ऊर्ध्वमुखी विन्दु का एक चक्र से दूसरे चक्र पर्यन्त उत्थान अत्यन्त मन्दगति से होता है। अब जरा समझने की बात है कि जिस क्षणिक आनन्द को पाने के लिए संसार पागल है, उन्मत्त है और पशु बन जाता है—उसी आनन्द को एक योगी अथवा एक साधक अपने साधना-बल पर स्थायी रूप से न जाने कितना गुना अधिक प्राप्त कर लेता है। ऐसे ही 'आनन्द' को परमेश्वर का स्वरूप बतलाया गया है। तात्पर्य यह कि परमेश्वर आनन्दस्वरूप है और उस स्वरूप का गहनतम बोध उस अवस्था में होता है।

(१६)

रात गहरा गयी थी। चौथ का चाँद पहाड़ी के पीछे छिप गया था। वातावरण में और अधिक नीरवता गहरा गयी थी। तांत्रिक संन्यासी शून्य में ताकते हुए बोला—आज बस, यहीं तक। कल फिर चर्चा होगी। इतना कहकर वह उठा और अँधेरे में न जाने कहाँ गायब हो गया।

साँझ का समय था। मेरे पहले ही आकर बैठ गया था यमराज के मन्दिर के चबूतरे पर वह तांत्रिक संन्यासी। मुझे देखते ही बोल पड़ा—आज आपको तंत्र का एक गूढ़ पक्ष बतलाऊँगा। मनुष्य की सारी वासनाओं अथवा मूल प्रवृत्तियों पर गहराई से विचार किया जाय तो उन सबको तीन मुख्य भागों में विभक्त किया जा सकता है—वित्तैषणा, दारैषणा और लोकैषणा। इन तीनों में दारैषणा प्रमुख है क्योंकि इसमें सब अन्तर्भूत हैं। दारैषणा का सार आकर्षण है और आकर्षण स्त्री-पुरुष संयुति में पर्यवसित होता है। आकर्षण मिथुनजन्य है। तंत्र में जिसे आदिशक्ति कहा गया है—उसका स्वरूप काम है। काम यानी सहचर की कामना। वह सहचर स्त्री या पुरुष होता है। मनुष्य की जितनी भी प्रवृत्तियाँ हैं—उन सभी का लक्ष्य एकमात्र आनन्द प्राप्त करना है। आनन्द सभी कामना और वासना का प्राण है। आनन्द ही सभी कार्यों की प्रेरणा-शक्ति है। इसी पर अस्तित्व, वृद्धि और नाश आदि निर्भर हैं। इसका स्थूल और प्रत्यक्ष अनुभव 'सम्भोग' में होता है। सम्भोग का आनन्द जीवन में पराकाष्ठा का आनन्द है। जितने भी आनन्द हैं उन सबको तांत्रिक साधना शास्त्र सम्भोग का ही रूपान्तरण समझता है, दारैषणा अथवा कामैषणा सम्बन्धी आनन्द की खोज सार्वभौम है। अखिल मानस जगत् इसी दारैषणा अथवा कामैषणा से ओतप्रोत है। सम्पूर्ण मानस जगत् इसी कामशक्ति में लिप्त है। यही सभी वासनाओं का 'बीज' है। इसी से सभी वासनाएँ और प्रवृत्तियाँ जाग्रत होती हैं और इसी में लीन भी होती हैं। बच्चों के कोमल हृदय स्पन्द में, कामुक के तीव्र से ज्वर में, भक्त के हृदयस्पर्शी भक्ति-स्रोत में, कवि की विश्व-मोहिनी विपंचिका में, इसी वासना की मंजुल हृदयद्रावी ध्वनि फूट निकलती है। यह विश्व-वासना है और विश्व-वासना की 'मूर्ति' स्त्री है।

भूमि पर हम गिरते हैं और जब उठना होता है तो भूमि का ही सहारा लेकर उठते हैं। जो वस्तु गिराने वाली होती है वही उठाने वाली भी सिद्ध होती है। बाह्य विषयों के भोग द्वारा तृप्त होने के बाद ही व्यक्ति बन सकता है। भौतिक विषयों का अनुभव आवश्यक है, लेकिन साधनरूप में।

'आपका मतलब समझा नहीं।' मैंने कहा।

मतलब स्पष्ट है। विश्ववासना और उस विश्ववासना की मूर्ति 'स्त्री' का सहारा लेकर ही बिन्दु-साधना की यात्रा शुरू होती है। उसकी मूलभित्ति यही दोनों हैं। बिन्दु-साधना की पहली यात्रा की चर्चा अब तक की मैंने। अब मैं आपको उसकी दूसरी यात्रा के विषय में बतलाऊँगा।

यह भी अन्तर्मिलन की ही यात्रा है। लेकिन दोनों में भिन्नता है और भिन्नता यह है कि इस यात्रा में पुरुष और स्त्री को एक-दूसरे के आश्रय की आवश्यकता नहीं पड़ती। दोनों का साधना-मार्ग स्वतन्त्र होता है। दोनों अपने ही विपरीत शरीर के साथ संयुक्त होते हैं।

'समझा नहीं'—जरा सहिष्णु होकर बोला मैं।

समझाता हूँ बन्धु! इतना आतुर न हो। इतना कौतूहल ठीक नहीं। तांत्रिक संन्यासी ने थोड़ा रुककर आगे कहना शुरू किया—अन्तर्मिलन की इस साधना-यात्रा में पुरुष का पहला शरीर और दूसरा शरीर संयुक्त होकर विद्युत की पहली इकाई पहले केन्द्र में बनाते हैं। फिर दूसरा और तीसरा शरीर संयुक्त होकर विद्युत की दूसरी इकाई दूसरे केन्द्र में बनाते हैं। उसके बाद तीसरा शरीर चौथे शरीर से संयुक्त होकर विद्युत की तीसरी इकाई तीसरे केन्द्र में बनाते हैं। इसी प्रकार स्त्री के भी सम्बन्ध में समझना चाहिए।

पुरुष और स्त्री के मूलाधार, स्वाधिष्ठान और मणिपूर के इन तीनों चक्रों यानी केन्द्रों में बनने वाली विद्युत इकाइयाँ अति रहस्यमयी हैं। उनसे उत्पन्न होने वाली विद्युत्-ऊर्जाओं की ऊष्माएँ अत्यन्त प्रबल और प्रखर होती हैं जिसके प्रभाव से जागृत कुण्डलिनी का उत्थान और क्रमशः मूलाधार स्वाधिष्ठान और मणिपूर—इन तीनों चक्रों का भेदन होता है।

(१७)

कुण्डलिनी-जागरण उत्थान और चक्र-भेदन के विषय में मुझे सर्वथा नयी जानकारी मिली थी। 'कुण्डलिनी' से सम्बन्धित पुस्तकों में किसी भी लेखक अथवा विचारक ने इतना स्पष्ट कहीं कुछ नहीं लिखा है। सभी जगह गोलमोल भाषा का प्रयोग किया गया है।

रात आधी गुजर चुकी थी। तांत्रिक संन्यासी दूसरे दिन मिलने के लिए कहकर चला गया। वह कहाँ रहता था? कहाँ से आता था और रात की गहन कालिमा में अचानक कहाँ गायब हो जाता था? आज तक मैं समझ न सका था।

दूसरे दिन तांत्रिक संन्यासी कहने लगा— इस अन्तर्मिलन की अवस्था में केन्द्रों में बनने वाली विद्युत्-इकाइयाँ बड़ी ही अद्भुत हैं। सांसारिक दृष्टि से बहिर्मिलन की अवस्था का आनन्द क्षणिक है। लेकिन वियोग का दुःख काफी लम्बा है और उस दुःख से फिर मिलन की आकांक्षा जन्म लेती है। मगर फिर भी मिलन क्षणिक ही होता है। वह मिलन फिर लम्बे दुःख का कारण बनता है। मगर मैंने जिस अन्तर्मिलन की चर्चा की है उसमें असीम आनन्द की अन्तर्धारा निर्बाध गति से और स्थायी रूप से प्रवाहित होने लग जाती है। यह आनन्द अन्य आनन्द और उसके प्रकार से भिन्न है। योग की दृष्टि में यह आनन्दानुभूति उच्चतम ध्यान का अति महत्वपूर्ण आधार है। साधक का चित्त बिना किसी प्रयास के इस अनुभूति में एकाग्र होकर मग्न हो जाता है। अन्त में चित्त ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है—जिसे योग 'धर्ममेघ' समाधि कहता है जिसकी उपलब्धि है परम शान्ति। पहले अन्तर्मिलन की उपलब्धि है आनन्द और दूसरे अन्तर्मिलन की उपलब्धि है शान्ति।

यहाँ एक बात बतला दूँ आपको, वह यह कि अन्य जितनी भी समाधियाँ हैं—वे अपने निश्चित समय पर भंग हो जाती हैं लेकिन धर्ममेघ समाधि कब भंग होगी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इस समाधि में योगी और साधकगण सौ से पाँच सौ वर्ष तक रह जाते हैं। कोई-कोई तो हजार वर्ष तक भी रह जाते हैं। हिमालय की गिरि-कन्दराओं में इस प्रकार के योगी और साधक आज भी समाधिस्थ बैठे हुए हैं, न जाने कब से?

(१८)

यह दूसरा 'अन्तर्मिलन' तंत्र के लिए अति महत्वपूर्ण रहा है। तंत्र की कई ऐसी गुह्य और गोपनीय साधनाएँ हैं—जो इसी अन्तर्मिलन की सम्भावनाओं और उपलब्धियों पर निर्भर हैं। मध्ययुग में—जिसे तंत्र का युग कहा जाता है—इस अन्तर्मिलन को लेकर कई महत्त्वपूर्ण प्रयोग किये गये। सच पूछा जाय तो उन प्रयोगों के गूढ़ तत्वों और रहस्यमयी तांत्रिक क्रियाओं को भलीभाँति न समझ सकने के कारण ही जनसाधारण में तंत्र और उसकी साधनाओं के प्रति भ्रान्त धारणाएँ फैलीं और कलुषित भावनाओं का जन्म हुआ।

मध्ययुग तंत्र का स्वर्णयुग था। वास्तविक तंत्र-युग ५०० ई० से ९०० ई० तक माना जाता है, जबकि डॉ० गोपीनाथ कविराज १२०० ई० तक मानते हैं। इस युग की चार मुख्य विशेषताएँ रही हैं—देवी के रूप में शक्ति के महत्त्व की वृद्धि, मन्त्र-प्रयोग-वृद्धि, कुण्डलिनी योग में विश्वास की वृद्धि, और पंचमकारोपासना की प्रभाव-वृद्धि। कहने की आवश्यकता नहीं इन चारों वृद्धियों का श्रेय इसी अन्तर्मिलन को ही है। जैसे-जैसे अन्तर्मिलन की दिशा में उन्नति होती गयी—वैसे ही वैसे चारों विशेषताओं के महत्त्व में भी वृद्धि होती गयी, जिसके फलस्वरूप उसी काल में शाक्त-सम्प्रदाय से सम्बन्धित ६३ तंत्र, ३२७ उपतंत्र और उनके यामल, डामर, संहितादि की रचना हुई। इसी प्रकार

शैव-सम्प्रदाय के ३३२ तंत्र, १२५ उपतंत्र और उनके यामल, डामर, पुराणादि की भी रचना हुई। इनके अतिरिक्त वैष्णव-सम्प्रदाय के ७५ तंत्र, ६०५ उपतंत्र और उनके यामल, डामर, संहितादि की भी रचना हुई। इतना ही नहीं, बौद्ध, जैन, पाशुपत, कापालिक, पांचरात्र और भैरव आदि २२ आगमों के लगभग ५०० तंत्रों तथा इतने ही उपतंत्रों का भी आविर्भाव हुआ उस युग में। कहने की आवश्यकता नहीं, इन समस्त महत्वपूर्ण तंत्रों के आविर्भाव के मूल में 'अन्तर्मिलन' ही एकमात्र है।'

इस दिशा में योग-तंत्रपरक 'बहिर्मिलन' का भी कम महत्त्व नहीं है। तंत्र में 'पंचमकारोपासना' का अपना गरिमामय और महत्वपूर्ण स्थान है। इस रहस्यमयी और गोपनीय तांत्रिक उपासना का आधार 'बहिर्मिलन' ही है। पाठोपासना, मंत्रोपासना, मुण्डासन-सिद्धि, दैवीराज्य से सम्बन्ध, भावराज्य की सूक्ष्मात्माओं से सम्पर्क, मंत्र-तंत्र-यंत्र की सिद्धि के अतिरिक्त मारण-मोहन, वशीकरण आदि, षट्कर्म साधन इसी बहिर्मिलन द्वारा ही सम्भव हैं। खैर, अब इस प्रसंग को यहीं छोड़ो। मेरे पास समय बहुत कम है। इसलिए मुख्य-मुख्य बात ही बतलाऊँगा आपको। तांत्रिक संन्यासी इतना कहकर थोड़ी देर मौन रहा। फिर कहने लगा—दूसरे 'अन्तर्मिलन' की जितनी भी उपलब्धियाँ हैं उनमें सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है 'पूर्णत्वलाभ'। पूर्णत्वलाभ का मतलब है 'स्त्री' और 'पुरुष' अपने-आप में 'पूर्ण' होना। पुरुष है तो 'पूर्ण पुरुष' हो। स्त्री है तो 'पूर्ण स्त्री' हो। आप तो जानते ही हैं कि चार शरीरों में दो पुरुषतत्वप्रधान और दो स्त्रीतत्वप्रधान होते हैं। पुरुष के चारों शरीर अपने से विपरीत शरीर से संयुक्त होते हैं—तो एक नये पुरुष का जन्म होता है, जिसे 'पूर्ण पुरुष' कहेंगे। इसी प्रकार स्त्री के चारों शरीर अपने से विपरीत शरीर से संयुक्त होते हैं—तो एक नयी स्त्री का जन्म होता है जिसे 'पूर्ण स्त्री' कहा जायेगा। साधारण लोगों को पूर्ण स्त्री और पूर्ण पुरुष का कोई अन्दाज नहीं हो सकता, क्योंकि सभी पुरुष और सभी स्त्रियाँ अपने-आप में अधूरे हैं। जिस समय स्त्री-पुरुष के अपने ही विपरीत शरीर अन्तर्मिलन की अवस्था में संयुक्त होते हैं—उस समय स्त्री और पुरुष को अपने-आप में परम सन्तोष, परम सुख और परम तृप्ति का अनुभव होता है। यह अनुभव अखण्ड होता है। फिर न स्त्री को पुरुष की और न तो पुरुष को स्त्री की ही आवश्यकता रह जाती है। उनके लिए बहिर्मिलन का कोई मूल्य या महत्त्व नहीं रह जाता। कोई अर्थ नहीं रह जाता। लेकिन एक बात अवश्य है, वह यह कि ऐसे पूर्ण 'स्त्री-पुरुष' का बहिर्मिलन अवश्य सम्भव है—मगर दूसरे अर्थ में।

यह मैं आपको बतला ही चुका हूँ कि मन:शरीर तक ही स्त्री-पुरुष का भेद है। द्वन्द्व है। द्वैतभाव है। पूर्णत्वलाभ होते ही स्त्री-पुरुष आत्मशरीर को उपलब्ध हो जाते हैं। फिर स्त्री के लिए संसार में न कोई पुरुष रह जाता है और न तो रह जाती है पुरुष के लिए कोई स्त्री ही। स्त्री या पुरुष होने का भाव समाप्त हो जाता है हमेशा के लिए और हमेशा के लिए समाप्त हो जाता है द्वन्द्व अथवा द्वैतभाव। सर्वत्र अद्वैतभाव का विस्तार हो जाता है। 'पूर्णत्वलाभ' के पश्चात बिन्दुयोग की महत्वपूर्ण उपलब्धि है 'अद्वैतलाभ'।

मेरी दो-एक जिज्ञासाएँ हैं। मैं उनका समाधान चाहता हूँ।—मैंने कहा।

बतलाइये, कौन-सी जिज्ञासा है ?

पहली यह कि पुरुष की तरह स्त्री को भी समान रूप से सब कुछ साधना-मार्ग में उपलब्ध होता है। लेकिन स्त्री में कुण्डलिनी तो होती नहीं, फिर उसका किस चीज का जागरण और उत्थान होता है ? इसी जिज्ञासा से सम्बद्ध एक और जिज्ञासा है, वह यह कि स्त्रियों में क्या षट्चक्र होता है पुरुषों की तरह ?

हाँ, षट्चक्र होता है।—तांत्रिक संन्यासी बोला—कुण्डलिनी तो नहीं होती, लेकिन कामशक्ति तो होती है पुरुषों की तरह। कुण्डलिनी-शक्ति, बिन्दुशक्ति 'कामशक्ति' के ही पर्याय हैं।

कुण्डलिनी-शक्ति

कुण्डलिनी के विषय में लोगों में बड़ी भ्रान्त धारणा है। यह बात ठीक है कि भ्रान्ति के निवारण के लिए समय-समय पर बराबर प्रयास किया गया, लेकिन प्रयुक्त होने वाली भाषा इतनी जटिल और दुरूह रही कि साधारण लोग 'अभिप्राय' को समझ सकने में असफल रहे। आपको मालूम होना चाहिए कि चेतना और शरीर का जो मिलन-बिन्दु है (मूलाधार चक्र) उस पर वह शक्ति है जिसे 'आत्मशक्ति' कहते हैं। आत्मशक्ति की जो ऊर्जा है उसकी अभिव्यक्ति शुक्रबिन्दु और रजोबिन्दु में होती है। उसके दो रूप हैं—जब वह अधोमुख होकर प्रवाहित होती है तो 'कामशक्ति' बन जाती है और वही जब साधना-बल पर ऊर्ध्वमुख होकर प्रवाहित होने लग जाती है तो कुण्डलिनी-शक्ति बन जाती है। स्त्री-पुरुष की दृष्टि से भेद यही है कि स्त्री में वह अपनी दोनों अवस्थाओं में 'कामशक्ति' ही बनी रहती है। कुण्डलिनी संज्ञक नहीं होती है।

अब और कौन-सी जिज्ञासा है ?

पाँचवें आत्मशरीर की उपलब्धि क्या है ?

आत्मशरीर की पहली उपलब्धि तो अद्वैत-लाभ ही है। जो आत्मशरीर को उपलब्ध होता है उसकी निद्रा हमेशा के लिए समाप्त हो जाती है। वह सतत जागता ही रहेगा। हर अवस्था में और हर समय वह जाग्रत रहेगा। अगर सोयेगा भी तो उसका शरीर ही सोयेगा। उसके भीतर सतत कोई जागता रहेगा। तीसरी उपलब्धि है 'मैं कौन हूँ' का उत्तर प्राप्त होना आत्मशरीर को उपलब्ध व्यक्ति को पहली बार इस बात का पता चलता है कि वह कौन है ? कहाँ से आया है और कहाँ जायेगा ? चौथी उपलब्धि है—'मैं' का मिट जाना।

समझा नहीं मैं।

'मैं हूँ' अहंकार का बोधक है। पाँचवें आत्मशरीर को जिसने प्राप्त कर लिया है—उसका अहंकार तो मिट जाता है, 'मैं' का भाव भी मिट जाता है लेकिन 'हूँ' का भाव नहीं मिटता है। 'मैं हूँ' इसमें दो चीजें हैं—'मैं' तो अहंकार है और 'हूँ' अस्मिता है यानी होने का बोध मैं तो मिट जाता है मगर 'होना' रह जाता है—'हूँ' रह जाता है—अस्मिता रह

जाती है। एक प्रकार की यह समाधि की अवस्था समझी जायेगी। समाधि में केवल 'अस्मिता' रहती है 'मैं' का बोध समाप्त हो जाता है।

आपने पूर्ण स्त्री और पूर्ण पुरुष के बहिर्मिलन की सम्भावना की चर्चा की थी। मेरी इस सम्बन्ध में यह जिज्ञासा है कि उससे कौन-सा आध्यात्मिक लाभ होता है?

आध्यात्मिक लाभ की बहुत सारी सम्भावनाएँ हैं, समझे न। अजन्ता, एलोरा की गुफाओं में उत्कीर्ण चित्र और कोणार्क के मन्दिर की पाषाण मूर्तियाँ इसी बहिर्मिलन का प्रतिनिधित्व करती हैं। सच पूछा जाय तो 'तंत्र' का सम्पूर्ण अस्तित्व इसी बहिर्मिलन पर निर्भर है। तंत्र न इस बहिर्मिलन को लेकर कई महत्वपूर्ण प्रयोग किये जिस कारण मध्ययुग के बाद उसे काफी परेशानी और उलझनों का सामना करना पड़ा। उसकी चरम सीमा तक बदनामी भी हुई। क्योंकि हम समझ न सके कि वह क्या कर रहे हैं? हमारी समझ के बाहर की बात थी। बाहर होना स्वाभाविक भी था, क्योंकि अगर एक पूर्ण स्त्री और एक पूर्ण पुरुष बहिर्मिलन की अवस्था में हैं तो वह हमारे लिए सम्भोग ही होगा। सम्भोग ही समझेंगे हम उसे। हम सोच भी नहीं सकेंगे कि वास्तव में यह हो क्या रहा है? लेकिन तंत्र-साधना-भूमि की सबसे महत्वपूर्ण घटना है। यह घटना साधक के लिए अति मूल्यवान और सहयोगी हैं। यह एक नये मिलन का सूत्रपात है। यह विन्दुयोग की चौथी और अन्तिम यात्रा है। पूर्ण स्त्री और पूर्ण पुरुष के इस बहिर्मिलन की अवस्था में जिस रस और जिस आनन्द का अनुभव होता है उसका सीधा सम्बन्ध आत्मा से है। मिलन की इसी भूमि में आत्मानुभूति और आत्मसाक्षात्कार होता है। इसी सन्दर्भ में आपको मैं एक अति महत्वपूर्ण बात बतलाता हूँ। वह यह कि इस अवस्था में स्त्री-पुरुष की विद्युत्-ऊर्जाओं को एक वर्तुल बनाता है—जो आगे चलकर वलयाकार प्रकाश-पुंज में परिवर्तित हो जाता है। मगर वह दिखलाई नहीं पड़ता। वह अव्यक्त होता है। लेकिन उसमें देवात्माओं को आकर्षित करने की अपूर्व क्षमता होती है। आपको मालूम होना चाहिए कि उसी आकर्षण के वशीभूत होकर स्त्री के माध्यम से उच्चकोटि की देवात्माएँ लोक कल्याण के लिए मानव-शरीर ग्रहण करती हैं।

अब तक न जाने कितने स्त्री-पुरुष पूर्णत्वलाभ किये होंगे, बतलाया नहीं जा सकता। यहाँ मैं उदाहरण के रूप में सीता और मीरा की चर्चा करूँगा, जिनको हम 'सती' की संज्ञा देते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि जिनकी दृष्टि किसी परपुरुष पर नहीं उठती। जो परपुरुष की ओर आकर्षित नहीं होती। किसी परपुरुष से प्रेम नहीं करती। गुह्यविद्या की दृष्टि से सती का मतलब है कि जिसके पास 'स्त्री' होने का भाव ही नहीं है। जिसके पास अब स्त्री ही नहीं बची है कि किसी परपुरुष पर दृष्टि उठाये, परपुरुष की ओर आकर्षित हो या किसी परपुरुष से प्रेम करे।

अगर कोई स्त्री किसी साधारण पुरुष के प्रेम में भी तन-मन से, प्राण से, विचार से, भाव से और आत्मा से पूर्णतया समर्पित हो जाय तो उसे बिन्दु-साधना की इतनी लम्बी यात्रा करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। स्वयं वह चारों शरीरों का अतिक्रमण कर

पाँचवें आत्मशरीर को उपलब्ध हो जायेगी। जिसने यह अनुभव किया था, उसने कहा— पति 'परमेश्वर' है। पति को 'परमेश्वर' कहने का उनका मतलब पुरुष को 'परमेश्वर' बनाने का नहीं था। लेकिन उनके लिए 'पति' के माध्यम से आत्मशरीर का दरवाजा खुल गया था। बिना किसी साधना के उन्हें आत्मशरीर उपलब्ध हो गया था। पूर्णत्व की स्थिति उपलब्ध हो गयी थी। अद्वैत-लाभ हो गया था। इसलिए 'पति' को 'परमेश्वर' कहना कोई अनुचित बात नहीं थी। पति को परमेश्वर के रूप में स्वीकार करना कोई भूल न थी। क्योंकि जो साधना बड़ी मेहनत और परिश्रम से उपलब्ध होता है—वह उनको 'प्रेम' से ही प्राप्त हो गया था। साधना से भी ऊपर 'प्रेम' है। इसलिए जितने भी योग हैं उनमें 'प्रेमयोग' भी है। 'प्रेम' स्वयं अपने-आप में एक पूर्ण योग है।

अब जैसे सीता हैं। सीता को हम सती की श्रेणी में रखते हैं। प्रेम में उनका समर्पण-भाव बड़ा ही अनूठा था। राम के प्रेम में वह पूर्ण समर्पिता थीं। समर्पण की दृष्टि से वह पूर्ण थीं। उनका समग्र समर्पण था। यही कारण था कि बिना किसी साधना के उन्होंने पाँचवें शरीर को प्राप्त कर लिया था। रावण उनका स्पर्श तक न कर सका था। आँख उठाकर देख भी न सका था। वास्तव में रावण था अपूर्ण पुरुष और जबकि सीता थीं पूर्ण स्त्री। पूर्णत्वप्राप्त स्त्री की तेजस्विता, प्रखरता थी उनमें। सीता के लिए रावण का कोई अर्थ नहीं था। कोई मूल्य या महत्त्व भी नहीं था। लेकिन फिर भी उन्होंने अग्नि-परीक्षा देने से इन्कार नहीं किया। यदि इन्कार कर देती तो उनकी 'सती' मर्यादा और हैसियत समाप्त हो जाती। सीता राम से कह सकती थी कि आप भी तो अकेले थे। अवश्य आयी होगी आपके भी जीवन में कोई न कोई स्त्री। परीक्षा मेरी अकेली की ही क्यों? मेरे साथ आपकी भी परीक्षा होनी चाहिए। लेकिन सीता के मन में यह प्रश्न ही नहीं उठा। अगर एक बार प्रश्न उठाया होता तो फिर अग्नि से गुजरती तो अवश्य ही जल जाती, इसमें सन्देह नहीं। लेकिन उनका समर्पण पूर्ण था। कोई दूसरा पुरुष नहीं था सीता के लिए।

क्या पुरुष के लिए प्रेम में पूर्ण समर्पण की सम्भावना नहीं है? क्या वह बिना किसी साधना के 'स्त्री' की तरह प्रेम में पूर्ण समर्पित होकर पाँचवें शरीर को उपलब्ध नहीं हो सकता? मैंने प्रश्न किया।

नहीं, पुरुष के लिए यह सम्भावना कठिन है। असम्भव ही समझें। क्योंकि पुरुष के पास समर्पण चित्त नहीं है। आक्रामक चित्त है उसके पास। वह समर्पक नहीं। इसलिए मनुष्य किसी को भी पूर्ण रूप से प्रेम नहीं कर पाता। उसका प्रेम भी अपूर्ण ही होता है। समर्पण चित्त ही पूर्ण रूप से प्रेम करने में समर्थ होता है, आक्रामक चित्त नहीं। क्योंकि आक्रमण के लिए बहुत-सी चीजों की आवश्यकता पड़ती है, समर्पण के लिए नहीं। समर्पण में केवल व्यक्ति ही जिम्मेदार होता है। अन्य किसी भी चीज की उसे आवश्यकता नहीं पड़ती। पूर्ण समर्पण के लिए किसी को किसी से कुछ पूछना नहीं पड़ता। लेकिन यदि आक्रमण करना है तो आक्रमण का जो परिणाम होगा उसमें आक्रामक के साथ-साथ अगला व्यक्ति भी जिम्मेदार होगा। आक्रमण और समर्पण में यही अन्तर है।

(१९)

सीता की तरह जो स्त्री चारों शरीर के रहते हुए जिससे पूर्ण समर्पण-भाव से प्रेम करती है, वह उसके पाँचवें शरीर उपलब्ध होने पर परमात्मस्वरूप हो जाता है। क्योंकि चाहे वह पति हो या प्रेमी, उसी के प्रति पूर्ण समर्पण-भाव से प्रेम करने पर ही तो वह चारों शरीर का अतिक्रमण कर पाँचवें शरीर को उपलब्ध हुई होती है। इसलिए वह परमेश्वर है।

(२०)

मीरा से तो आप परिचित ही होंगे। मीरा और सीता में कोई विशेष अन्तर नहीं है। एक का समर्पण 'प्रेम' का समर्पण था और दूसरे का समर्पण 'भक्ति' का समर्पण था। और भक्ति में पूर्ण समर्पिता होने के कारण मीरा भी बिना किसी साधना के चारों शरीर का अतिक्रमण कर पाँचवें शरीर को उपलब्ध हो गयी थी। उनके लिए भी संसार में कृष्ण के सिवा दूसरा कोई पुरुष नहीं था। एक बार मीरा वृन्दावन गयी। कृष्ण के मन्दिर में पहुँची। मन्दिर के पुजारी ने कहलवा दिया कि मन्दिर में स्त्री का प्रवेश निषिद्ध है। वह स्त्रियों को देखता नहीं। देखना नहीं चाहता वह। लेकिन मीरा मँजीरा बजाती हुई मन्दिर में प्रवेश कर गयी। पाँचवें शरीर को उपलब्ध पूर्ण स्त्री थी वह। उन्होंने पूर्ण समर्पण-भाव से कृष्ण की भक्ति की थी। इसलिए वह परमात्मा हो गये थे मीरा के लिए। मन्दिर में रोका गया मीरा को। तब मीरा ने कहा—'बड़ी ही अद्‌भुत घटना है। बड़ी ही विचित्र बात है। आश्चर्य भी कम नहीं है। मेरे लिए तो इस संसार में केवल एक ही पुरुष है—और वह है कृष्ण। यह दूसरा पुरुष कहाँ से आ गया? मैं तो अब उसे देखना चाहती हूँ। कौन है वह दूसरा पुरुष?'

पुजारी ने जब यह सुना तो भागा-भागा आया और मीरा के चरणों पर गिर पड़ा। बोला—'जिसके लिए संसार में एक ही पुरुष बचा हो अब उसको स्त्री कहना भारी मूर्खता है।'

(२१)

आपके कहने का सारांश यह है कि स्त्री साधना-मार्ग से चलकर भी पूर्णत्वलाभ कर सकती है और प्रेम में पूर्ण समर्पिता होकर भी। लेकिन पुरुष के लिए एक ही मार्ग है और वह है साधना का मार्ग।

हाँ, आपने ठीक समझा।

पूर्ण स्त्री और पूर्ण पुरुष के लिए न कोई पुरुष रह जाता है और न तो रह जाती है कोई स्त्री ही संसार में। सारा भेद-भाव समाप्त हो जाता है। पाँचवें शरीर के तल पर केवल 'ऊर्जा' रह जाती है। पुरुष की आक्रमण-ऊर्जा और स्त्री की समर्पण-ऊर्जा। पुरुष और स्त्री के स्थान पर बस ये ही दोनों ऊर्जायें रह जाती हैं। पुरुष और स्त्री की संज्ञा समाप्त हो जाती है। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि ये दोनों ऊर्जायें भारतीय संस्कृति और साधना की

अतिविलक्षण और अतिअद्‌भुत चीजें हैं। पुरुष की आक्रमण-ऊर्जा स्त्री की समर्पण-ऊर्जा से मिलकर जहाँ एक ओर योग की विभिन्न प्रक्रियाओं के रूप में विकसित हुई वहीं दूसरी ओर स्त्री की समर्पण-ऊर्जा पुरुष की आक्रमण-ऊर्जा से मिलकर 'भक्ति' और प्रेम की बहुत-सी प्रक्रियाओं के रूप में विकसित हुई। इस अवस्था में आक्रमण बन जाता है 'योग' और समर्पण बन जाता है 'भक्ति' अथवा 'प्रेम'। दोनों ऊर्जाएँ दूध और पानी की तरह आपस में मिलकर अद्वैत की जो स्थिति उत्पन्न करती हैं वही है 'योग', वही है 'भक्ति' और वही है 'प्रेम'। इसीलिए अन्य योगों की तरह भक्ति और प्रेम को भी 'योग' कहा गया। जितने भी 'योग' हैं उनमें भक्तियोग और प्रेमयोग भी है।

(२२)

रात आधी से ज्यादा गुजर चुकी थी। शायद स्वाति नक्षत्र लग गया था। आकाश में काले-भूरे बादल छाये हुए थे। हवा में हल्की ठण्डी थी। लगा, किसी भी क्षण पानी बरसने लगेगा। तांत्रिक संन्यासी उठ खड़ा हुआ। मैं भी उसके साथ उठकर खड़ा हो गया। चलते समय उसने बड़े ही विषण्ण मन से कहा—'कल आना—थोड़ा-बहुत और बतला दूँगा आपको। परसों दीपावली है। परसों के बाद मेरा फिर मिलना न होगा। दीपावली की रात हम दोनों के मिलन की अन्तिम रात होगी।'

क्या आप हमेशा के लिए इस स्थान को छोड़कर अन्यत्र कहीं जा रहे हैं?

हाँ, ऐसा ही समझिये। अँधेरे में डूबे शून्य की ओर ताकते हुए बोला वह तांत्रिक संन्यासी—बहुत दूर जा रहा हूँ। वहाँ, जहाँ से किसी का वापस लौटना सम्भव नहीं।

समझा नहीं! क्या कहना चाहते हैं आप?

मेरा प्रश्न निरुत्तरित रह गया। देखा, वह तांत्रिक संन्यासी अँधेरे में गायब हो चुका था।

(२३)

दूसरे दिन अधिक बातें न हो सकीं। काफी देर मौन रहने के बाद तांत्रिक संन्यासी बोला—मेरे पास समय कम रह गया है। मैं आपको बिन्दु-साधना के मूल तत्व के विषय में संक्षिप्त में बतलाऊँगा। मैं आपको बहुत ही कुछ बतलाना चाहता था, मगर क्या करूँ। विवश हूँ।

समय का अभाव और विवशता तांत्रिक संन्यासी की बातें कुछ रहस्यमयी लगीं मुझे। मगर कुछ बोला नहीं मैं।

उसने कहना शुरू किया—तुम्हें मालूम होना चाहिए कि तांत्रिक साधना 'आदि-शक्ति' की साधना है और आदिविकास मैथुन विषयक हैं। कहने का मतलब है—आनन्द के लिए है और हैरति के लिए। यही विश्ववासना है। अधिकार की इच्छा भी इसी विश्ववासना का वेग ही समझा जाता है। जिस वेग से 'काम' अपने को अन्य मार्गों में अभिव्यक्त करता है—वही लोकैषणा है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो समाज में व्यक्ति

का सम्बन्ध मैथुन-संबंध ही है। इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो सारे नियम, चैत्त नियम, वैषयिक प्रीति आदि जितने सामाजिक सम्बन्ध हैं—सब में कामशक्ति ही प्रधान है। यहाँ तक कि देवता, गुरु, भगवान् आदि के प्रति भी यदि कोई सम्बन्ध है तो वह भी आकर्षणात्मक, कामात्मक है और है मैथुनात्मक। रौद्रात्मक, विसर्गात्मक, रजात्मक और आक्रामक प्रवृत्ति पुरुष है। शान्त्यात्मक, आदानात्मक, सहनात्मक और समर्पक प्रवृत्ति स्त्री है। यही नियम सर्वत्र व्याप्त है। अनुकूल परिस्थिति में, शारीरिक संप्रयोग में, संभोग में, अन्य परिस्थितियों में, मानसिक और आत्मिक सम्भोग में वही आदिशक्ति ही परिणत होती है। विषय है और है, दोनों का आकर्षण है। जानते हैं, बाज सबसे अधिक प्रेम कबूतर से करता है। संसार में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो प्रेम की पराकाष्ठा में भिन्नता का नाश नहीं चाहता। सच बात तो यह है कि अद्वयानन्द में अर्हता बाधक है। अमिथुनी भाव में आनन्द का उद्रेक है। इसी को प्रत्यक्ष व्यावहारिक दशा स्त्री-पुरुष संप्रयोग है। तंत्र के अनुसार सारे विश्व में निवृत्ति अपने को प्रवृत्ति के मार्ग में स्थापित करना चाहती है। उसके द्वारा भेद का वरण अभेद-सिद्धि के लिए होता है। यही महामाया है। अज्ञान है और इसी अविद्या में सभी जीव भ्रमण कर रहे हैं। मिथुन के नाश के लिए यदि कोई साधना है, तो वह मैथुन ही है। द्वन्द्व का नाश द्वन्द्व से ही सम्भव है। द्वन्द्व के मार्ग से हमें अद्वैत की ओर चलना पड़ेगा। 'द्वैत' का आश्रय लेकर अद्वैत की स्थिति को उपलब्ध होना होगा। वासना का अवलम्बन ग्रहण कर साधना-मार्ग में अग्रसर होना होगा। जैसा कि मैंने कहा है—जमीन पर गिरने पर उस जमीन के सहारे ही उसका त्याग किया जा सकता है। तंत्र का यही साधना-पक्ष है और है दार्शनिक पक्ष भी।

दीपावली की अँधेरी रात और वह रोमांचकारी अविश्वसनीय दृश्य

दूसरे दिन दीपावली थी। सबेरे से ही स्वाति के काले-भूरे बादल छाये हुए थे आकाश में। पूरा दिन तांत्रिक संन्यासी से अब तक हुई विषय-चर्चा पर ही चिन्तन-मनन करता रहा मैं। साँझ होते ही मैं पहुँच गया श्मशान में। एक लाश न जाने कहाँ से आकर अटक गयी थी श्मशान के किनारे पानी में। कृष्णकाली मण्डल अर्धविक्षिप्त-सा आया और मेरी ओर बिना देखे लाश को पानी से निकालने लगा। लाश किसी युवती की थी। श्मशान का भयंकर वातावरण और भी गहरा गया। पीपल के नीचे बैठे कुत्ते आपस में अकारण लड़ने लगे। पेड़ की डाल पर बैठा गिद्ध अपने परों को फड़फड़ाकर न जाने किधर उड़ गया अँधेरे में। दीपावली की वह काली अँधेरी रात और वह निशा बेला कभी भी भुलायी न जा सकेगी मुझसे।

निर्जन सुनसान इलाका—उजाड़, बीहड़, धूसर। वातावरण में चारों तरफ गहरी निस्तब्धता छायी हुई थी। बादलों से अट कर काला पड़ गया था आकाश। गहन नि:श्वास जैसी हाहाकार करती हवा नदी के तट की झाड़ियों और झुरमुटों को कँपाये दे रही थी।

सहसा श्यामल आकाश में जलती हुई बिजली चमक उठी। सारा विस्तार एक क्षण के लिए प्रखर आलोक से उद्‌भासित हो उठा। उसी क्षणिक प्रकाश में मैंने देखा—वह तांत्रिक युवती की लाश के ऊपर झुका हुआ था। सहसा उसकी आवाज मुझे सुनाई दी। वह शायद मुझसे ही कह रहा था—हर दीपावली की रात्रि में इस प्रकार कोई न कोई लाश चली आती है यहाँ, मेरे लिए। निश्चय ही वह महाभैरवी ही मेरी साधना के निमित्त लाश की व्यवस्था करती है। जब मैं जैसा कहूँ, वैसा ही करियेगा आप। समझ गये न?

हाँ, समझ गया। मैंने उत्तर दिया।

तांत्रिक संन्यासी कृष्णकाली मण्डल अब लाश के ऊपर आसन लगाकर बैठा और एकाग्रचित्त से किसी मंत्र का जप करने लगा था। वह लाश पशु-पक्षियों का आहार न बनकर एक भयंकर तांत्रिक संन्यासी की साधना का आसन बन गई थी अब। लाश का सिर पीछे की ओर लटका हुआ था। उसकी आँखें फैली हुई थीं। मुँह भी थोड़ा-सा खुला हुआ था। शरीर बिल्कुल नग्न था। क्योंकि तांत्रिक संन्यासी ने उसका कफन उतार कर अपनी कमर में लपेट लिया था। सहसा श्मशान के पीपल के पेड़ पर चोंच रगड़ता कोई पक्षी कर्कश स्वर में चीख उठा।

तांत्रिक संन्यासी ने पहले ही मुझे सारी बातें समझा दी थीं। उसका संकेत पाकर मैंने तुरन्त घी के पाँच दीपक जलाकर लाश के सिरहाने रख दिये। फिर मुर्गे का मांस और शराब की भरी बोतल और एक खोपड़ी भी सामने रख दी। तांत्रिक संन्यासी ने थोड़ा-सा मांस खाया, फिर खोपड़ी में उड़ेलकर थोड़ी-सी शराब पी। इसके बाद शेष मांस और शराब लाश के खुले मुख में डाल दी। दूसरे ही क्षण पूरी लाश जोर-जोर से हिलने लगी अपने स्थान पर। मेरा मन भयमिश्रित विस्मय से भर उठा। ऐसा लगा, मानो लाश किसी भी क्षण उठकर बैठ जायेगी।

मेरा अनुमान सत्य निकला। तांत्रिक संन्यासी को पीछे की ओर ढकेलकर सहसा वह लाश उठकर इस प्रकार बैठ गयी—मानो वह भी जीवित प्राणी हो। वास्तव में वह जीवित ही लग रही थी उस समय। उसके चेहरे पर विचित्र-सी शान्ति और तेजोमयी आभा थी। वह अपलक उस तांत्रिक संन्यासी की ओर निहार रही थी।

उस निविड़ गीली स्याह रात में लाश की यह विचित्र स्थिति और उसका रूप देखकर मेरी चेतना जैसे लुप्त होने लगी। मगर फिर भी सँभाले रहा मैं अपने आपको। हवा से काँपते दीपक के मन्द आलोक में मैंने देखा—युवती की लाश नहीं नहीं अब उसे लाश नहीं कहना चाहिए वह तो पूरी तरह जीवित थी। बिल्कुल सजीव और चैतन्य। १८-२० वर्ष की सुन्दर रमणी लग रही थी वह। चम्पा जैसा रंग था शरीर का और उस चम्पई रंग के सुगठित शरीर पर लिपटी हुई थी गुलाबी रंग की रेशमी साड़ी। उन्नत उरोज, उद्दाम यौवन से तरंगित देह-यष्टि, पीठ पर बिखरे हुए शैवाल जैसे काले-घने बाल, दीपक के मन्द आलोक में जगमग करता उज्ज्वल रूप, कुसुम-कोमल गालों पर बिखरे लावण्य के कण, रतनारी आँखें, कवि की कल्पना से परे अप्रतिम सौन्दर्य। देवकन्या जैसी उस यौवना को देखकर विस्मित होना स्वाभाविक था मेरा।

युवती की बाँकी छवि देखकर ऐसा लगा कि जैसे वह इस संसार से परे किसी अनजाने लोक की कन्या हो। मेरा अनुमान सत्य निकला। वह भैरवी थी, तांत्रिक संन्यासी कृष्णकाली मण्डल की भैरवी।

आपा खोकर भैरवी की ओर न जाने कब तक अपलक निहारता रहा मैं। भैरवी का रूप, यौवन और उसकी बाँकी छवि मेरे उष्ण रक्त में घुलती जा रही थी जैसे। काँपते प्राणों से भरनजर देखा तांत्रिक संन्यासी की ओर। कैसी सम्मोहक छवि थी। भैरवी की आँखों में विचित्र-सा सम्मोहन उतर आया था। रक्तिम होंठ फड़क रहे थे। जवाकुसुम जैसे गालों पर आग की लपट खेल रही थी जैसे।

'तुम आ गयी, पूरा एक वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ती है मुझे।'—काँपते प्राणों से नजरभर देखते हुए बोला तांत्रिक संन्यासी।

'मुझे भी तो प्रतीक्षा करनी होती है'—भैरवी ने उत्तर दिया—उसके स्वर में आक्रोश था। अब किसी को प्रतीक्षा नहीं करनी होगी, न तुम्हें और न तो मुझे। आज तुम्हें लेने आयी हूँ मैं। मेरे साथ चलना होगा तुम्हें।—उसी आक्रोश भरे स्वर में बोली वह।

'नहीं, अभी नहीं! अभी मैं नहीं जाऊँगा।'—तांत्रिक संन्यासी प्रकम्पित स्वर में—जरा दूर हटते हुए बोला।

पुरुवा हवा की साँय-साँय रौरव शोर उत्पन्न कर रही थी। धीमे उजाले में श्मशान का पिशाच जैसा लगा मुझे वह तांत्रिक संन्यासी।

'नहीं, चलना ही पड़ेगा तुम्हें।' भैरवी की रतनारी आँखें भावशून्य हो गयीं। वह जल उठी जैसे। एक अतीन्द्रिय ज्योति थी जैसे उसमें उस समय।

आँखें गड़ाकर देखने की कोशिश की मैंने और फिर जैसे सुषुम्ना तक एक हिमप्रवाह दौड़ गया। कौन-सी घटना घटने वाली है इस श्मशान में। आतंक और संशय से बुरी दशा हो रही थी मेरी। एकाएक भैरवी का चेहरा कठोर हो गया। इस्पात जैसा रंग उतर आया उस पर। बोली—'अब तुम्हें नहीं छोड़ूँगी ' उसके चेहरे की कठोरता दूसरे क्षण एक पैशाचिक मुस्कान में बदल गयी। उसके दोनों हाथ तांत्रिक के गर्दन की ओर बढ़ने लगे और दूसरे ही क्षण उसकी जैतून की-सी उँगलियाँ सँड़सी की तरह गर्दन को कसने लगीं। तांत्रिक संन्यासी ने बुझी-बुझी निगाह से भैरवी की ओर देखते हुए भय और आतंक के मिले-जुले स्वर में कहा—'यह यह क्या कर रही हो तुम ?' फिर स्वरभंग हो गया उसका। भयातुर कण्ठ से उसने कुछ कहना चाहा आगे—किन्तु फटे गले से गों-गों का विलाप ही निकला। एक अस्पष्ट-सा प्राण कँपा देने वाला चीत्कार कर वह कटे वृक्ष की तरह जमीन पर गिर पड़ा। भय की अधिकता से उसके प्राण तत्काल निकल गये। विकट अट्टहास कर उस भयानक रात में—भैरवी न जाने कहाँ विलीन हो गयी शून्य में।

मेरे प्राण हिम हो गये जैसे। शिराओं उपशिराओं में रक्त-प्रवाह रुकता-सा जान पड़ने लगा। दूसरे ही क्षण मैं चिल्लाता, ठोकरें खाता, अँधेरे में जमीन पर गिरता और फिर

सँभल कर उठता हुआ भागा—पर श्मशान के पीपल के पास ही चेतनाशून्य होकर गिर पड़ा और फिर जब चेतना लौटी तो सवेरा हो चुका था। एक व्यक्ति मेरे ऊपर झुका हुआ मेरे मुँह पर पानी के छींटे डाल रहा था। वह शायद अपने सम्बन्धियों के साथ कोई शव जलाने के लिए श्मशान में आया था।

चेतना लौटने पर मैंने उस व्यक्ति से पूछा—वह तांत्रिक संन्यासी कहाँ गया?

यहाँ तो कोई साधु-संन्यासी नहीं है बाबूजी।

एकाएक याद आया, वह तो मर गया था, उसकी लाश होनी चाहिए, यहीं कहीं। श्मशान में पागलों की तरह इधर-उधर कई बार चक्कर लगाया, लेकिन लाश कहीं नहीं मिली उसकी। हार-थककर मन्दिर में पहुँचा तो देखा कि पुजारी जी मेरे लिए व्याकुल हो रहे थे। मुझे देखते ही बोल पड़े—पूरी रात कहाँ थे शर्मा जी आप? आधी रात से आपको खोज रहा हूँ मैं। यह बड़ा ही बीहड़ इलाका है। पग-पग पर जंगली जानवरों का खतरा बना रहता है। मैंने समझा कि कहीं पुजारी जी का वाक्य पूरा होता, उसके पहले ही मैं बोल पड़ा—तांत्रिक संन्यासी कृष्णकाली मण्डल के साथ नदी की ओर चला गया था।

इसके अलावा पुजारी जी को और कुछ बतलाना उचित नहीं समझा मैंने। लेकिन पुजारी जी ने आश्चर्य और अविश्वास के मिले-जुले भाव से मेरी ओर देखा। फिर निकट आकर पूछने लगे—किस तांत्रिक के साथ गये थे?

अरे आप! कृष्णकाली मण्डल को नहीं जानते? वे तो इसी मन्दिर में पहले रहते थे। इधर उनसे मेरी घनिष्ठता हो गयी थी। वे प्राय: रोज ही दोपहर के समय मुझसे मिलने चले आया करते थे।

मेरी बात सुनकर पुजारी जी एकदम से चौंक पड़े। उनके चेहरे पर भय-आतंक-विस्मय का मिला-जुला भाव फैल गया। कुछ क्षण तक वह मेरी ओर इस प्रकार देखते रहे जैसे मेरी बातों पर विश्वास ही नहीं रहा हो। आखिर पूछ ही बैठे—आपने जो कुछ कहा, वह सब सत्य है न शर्मा जी?

जी हाँ! क्यों? मैं भला आपसे झूठ क्यों बोलूँगा? मुझसे उनकी तंत्र के गूढ़ प्रसंगों पर काफी चर्चा भी हुई। निश्चय ही वह तंत्र के उद्‌भट विद्वान् हैं, इसमें सन्देह नहीं।

मगर मगर कृष्णकाली मण्डल तो

पुजारी जी की हिचकिचाहट से मैं चौंका।

क्या हुआ कृष्णकाली मण्डल को?

वह इस मन्दिर में रहते अवश्य थे, किन्तु अब तो वह इस संसार में हैं नहीं। उनको शरीर छोड़े लगभग तीस वर्ष हो गये। तभी से मैं यहाँ इस मन्दिर में हूँ।

ऐं! यह क्या कह रहे हैं आप?

जैसे आपकी बात सत्य है उसी प्रकार मेरी भी यह बात अपने-आप में पूर्ण सत्य है। शर्मा जी! आप और मैं दोनों अपने-अपने स्थान पर सत्य हैं। आपने जो कुछ देखा- सुना आत्मा की अविश्वसनीय लीला थी। फिर थोड़ा रुककर पुजारी जी आगे

बोले—कृष्णकाली मण्डल ने इसी श्मशान में पूरे दस वर्ष तक किसी गुह्यतंत्र की कठोर साधना की थी। साधना में उन्हें सफलता और सिद्धि प्राप्त हुई या नहीं, यह तो मैं नहीं जानता लेकिन एक दिन महाशय श्मशान में मृत पाये गये थे। शायद दीपावली की रात थी वह। तभी से उनकी अतृप्त आत्मा इस इलाके में भटक रही है। हे भगवान्! उसे कब मिलेगी शान्ति, कब होगा उसका उद्धार?

पुजारी जी खड़ाऊँ पहनकर खट्-खट् करते मन्दिर की सीढ़ियाँ चढ़कर भीतर चले गये।

लड़खड़ाता हुआ मैं अपने कमरे में पहुँचा। बिस्तर पर तकिया के नीचे टटोलकर देखा—लाल कपड़े में बँधी पाण्डुलिपि और लिफाफा ज्यों के त्यों पड़े हुए थे। सचमुच मेरे सामने एक अविश्वसनीय सत्य था, एक चमत्कारपूर्ण सत्य; जिसके साक्षी थे सौ-सौ के दस नोट और तंत्र की वह दुर्लभ पाण्डुलिपि जो आज भी मेरे पास पड़ी हुई है।

वह दुर्लभ पाण्डुलिपि कृष्णकाली मण्डल की थी। उन्होंने उसे देते हुए मुझसे बड़े ही विनम्र स्वर में कहा था—'यह मेरी अमूल्य आध्यात्मिक सम्पत्ति है। मेरे साधना अनुभव संगृहीत हैं इस पाण्डुलिपि में। यदि सम्भव हो तो इसे प्रकाशित करा दीजिएगा। हो सकता है, साधना-मार्ग के पथिकों के लिए यह प्रकाशस्तम्भ सिद्ध हो।' फिर एक दिन उस तांत्रिक संन्यासी ने इसी प्रकार उन रुपयों को भी देते हुए अत्यन्त विगलित स्वर में कहा था, 'मेरी आत्मा की शान्ति के लिए—मेरी आत्मा के कल्याण के लिए—मेरी आत्मा के उद्धार के लिए काशी में आप साधु-संन्यासियों को भोजन करा दीजिएगा।'

कहने की आवश्यकता नहीं, मैंने वैसा ही किया। उनकी इच्छा पूर्ण कर दी। उस रहस्यमय तांत्रिक संन्यासी की आत्मा को शान्ति मिली कि नहीं, उसका कल्याण हुआ कि नहीं और उसका उद्धार हुआ कि नहीं, भगवान् जाने।

OOO

६

असली-नकली

बेकर एक युवक अंग्रेज पत्रकार था। उसका व्यक्तित्व आकर्षक था। वह अत्यधिक विनम्र और सुसंस्कृत था। उसका व्यवहार और उसके बातचीत करने का ढंग इतना मोहक था कि लोग सहज ही उसकी ओर आकृष्ट हो जाते थे। भारत के प्रति विशेष आकर्षण था बेकर के मन में। उसकी सबसे अधिक रुचि थी आदिवासियों के बीच घूमने-फिरने और रहने में। इस रुचि के पीछे उसका एकमात्र उद्देश्य था—आदिवासियों की सभ्यता और संस्कृति के अलावा उनके पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन को गहरायी से जानना-समझना। अपनी इस रुचि और अपने इस उद्देश्य के कारण कई भयंकर खतरे में पड़ चुका था उसका जीवन। नागालैण्ड, आसाम और मध्य-प्रदेश के घनघोर जंगलों में भटकते-भटकते वह कई बार आदिवासियों के खूँख्वार कबीलों के चंगुल में भी जा फँसा था। लेकिन हर बार वह किसी न किसी प्रकार बच निकलता था। इससे उसको एक लाभ अवश्य हुआ था—वह कितने ही आदिवासियों के आदिम कबीलों की भाषाएँ और संकेत सीख गया था।

साथ ही उनकी परम्पराओं और रीति-रिवाजों के बारे में भी उसे ढेर सारी जानकारी प्राप्त हो चुकी थी।

एक बार बेकर जब हिमालय की घाटियों में घूम रहा था, तो उसे कुछ तिब्बती लामा पकड़कर अपने साथ ले गये थे और अपने किसी गुप्त मठ में रखकर उसे जुडो-कराटे व कुम्फू में प्रशिक्षित किया था उन्होंने। पूरे तीन साल उस गुप्त मठ में रहने के बाद जब वह बाहर आया तो बौद्धकालीन उस गोपनीय कला में पूरी तरह पारंगत हो चुका था। उसके अंग-प्रत्यंग में असीम शक्ति भर गयी थी और उसके चेहरे पर एक अलौकिक तेज उभर आया था। बेकर से मेरी भेंट लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व कलकत्ता में हुई थी। उन दिनों मैं कलकत्ता से निकलने वाले एक हिन्दी दैनिक पत्र से संबंधित था। जिसमें प्रकाशित मेरे किसी तांत्रिक लेख को पढ़कर मुझसे मिलने आया था वह।

बेकर के साथ उसकी आदिवासी पत्नी भी थी। जिसका नाम था टोना। पति-पत्नी में जमीन और आसमान का फर्क था। दोनों में किसी भी प्रकार का ताल-मेल नहीं था। हो भी कैसे सकता था। कहाँ वह पढ़ा-लिखा स्मार्ट अंग्रेज युवक और कहाँ वह असभ्य आदिवासी कबीले की काली-कलूटी जंगली युवती। नाटे कद और गठीले जिस्म की पच्चीस-छब्बीस वर्षीया युवती थी टोना। चौड़ा चेहरा, चिपटी नाक, बाहर को निकली

हुई गोल-गोल आँखें, जिनकी पुतलियाँ बराबर घूमती रहती थीं। होंठ मोटे और नीचे की ओर लटके हुए थे। गर्दन मोटी थी, लेकिन वक्ष सुडौल था और कमर बेहद पतली थी। पर इन सबके बावजूद भी उस आदिवासी युवती में गजब का नारीसुलभ आकर्षण था और गजब की सेक्स अपील भी। मैंने मन ही मन सोचा कि शायद इसी कारण शादी की होगी बेकर ने। मगर नहीं, यह मेरा भ्रम था। शादी का कारण तो कुछ और ही था।

बेकर ने बतलाया कि एक बार मैं एक बड़ी ही अजीब स्थिति में फँस गया। आसाम के जंगलों की भूल-भूलैया में उलझकर मैं रास्ता भूल गया। और ऐसा भूला कि एक महीने से ज्यादा समय बीत जाने पर भी मैं भटकता ही रहा। लाख कोशिश करने पर भी मैं जंगल का कोई छोर न पा सका। जंगली जानवरों से बचता-बचाता मैं किसी तरह खोज में लगा रहा। कितनी ही बार भूख-प्यास के कारण मैं बेहोश होकर गिर पड़ा। फिर किसी छोटे जीव-जन्तु या परिन्दे को पकड़कर मैंने पेट भरने का इन्तजाम किया।

इधर मैं कई दिनों से भूखा ही भटक रहा था कि अचानक जंगल के बीच बहती हुई एक नदी के किनारे पहुँच गया। चारों तरफ सन्नाटा छाया था। कहीं न आदम जात दिखायी पड़ता था न उसकी गन्ध ही मिलती थी। मुझे प्यास लगी थी। मैं नदी के किनारे गया और मुँह-हाथ धोकर जैसे ही पानी पीने लगा कि हे हो का डरावना शोर मचाते हुए चार-पाँच नंग-धड़ंग आदमियों ने झपट कर मुझे धर दबोचा। उनके गठीले जिस्म ताँबई रंग के थे। उनके लम्बे-लम्बे भाले की नोक मेरे सीने और पेट में चुभी। मेरी आँखों में मौत नाच उठी। मैं चाहता तो अपनी कला से उन सबको मिनटों में धराशायी कर सकता था। मगर मेरी शारीरिक हालत काफी कमजोर थी उस समय। किसी तरह बस साँस ले रहा था मैं। खैर, उन लोगों ने मुझे मारा नहीं। मैंने चैन की साँस ली। जिन्दा रहने पर किसी तरह छुटकारा पाने की कोशिश तो की जा सकती है—लेकिन तभी मेरी नजर उन आदिवासियों के गुदनों से भरे जिस्म पर नाचती हुई उनके बाजू पर पहुँच कर अटक गयी—और दूसरे ही क्षण मेरा खून सर्द पड़ गया। बाजू पर गुदनों से जो चिह्न बना था उसे देखते ही मैं समझ गया कि वे जुलू के नरभक्षी कबीले के लोग हैं। जुलू के भयानक हेड हन्टर। वे आदमखोर अपने कबीले के बाहर के किसी भी आदमी को पकड़ पाने पर बड़े यंत्रणादायक ढंग से उसको मारते हैं और फिर खूब चाव से नरमांस का दावत उड़ाते हैं।

इस जानकारी के बाद मेरे लिए जीवन के वे क्षण घोर यातनापूर्ण लगने लगा। वे जंगली मुझे भाले की नोक पर अपने साथ घसीटते और ढकेलते हुए ले चले। कोई घण्टे भर बाद वे झोपड़ियों वाली एक बस्ती में पहुँचे। वहाँ कोई पचास-साठ व्यक्तियों ने मुझे चारों तरफ से घेर कर शोर मचाना शुरू कर दिया। इसी बीच किसी ने शंख और ढोल बजाया। फिर तो देखते ही देखते गाँव के तमाम स्त्री-पुरुष, बूढ़े-बच्चे उमड़ पड़े। वे सबके सब नंगे थे। छोटी बच्चियों से लेकर जवान और बूढ़ी औरतें तक सर्वांग नंगी थीं। लाज और हया नाम की चीज उनके पास जरा-सी भी नहीं थी। उनके जिस्म गठीले और ताँबई रंग के थे। औरतें भी अन्य काली हब्सी जाति की औरतें जैसी बेडौल एवं भोंड़ी न

होकर चमकीले ताँबई वर्ण की थीं। और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि उनकी देह बड़ी ही ठोस और सुडौल थी। युवतियों के सुगठित अंगों पर यौवन की मादकता थी। वे बड़ी ही विचित्र निगाह से मुझको घूर रही थीं। उनकी आँखों में वासना की लोलुपता कौंध रही थी। वे बार-बार कभी मेरे जिस्म की ओर देखतीं तो कभी अपने सुडौल स्तनों की ओर।

मुझे पकड़कर लाने वाले आदमियों ने गाँव में एक भारी-भरकम व्यक्ति को बड़े अदब से गिरफ्तारी की दास्तान सुनायी। वह व्यक्ति शायद गाँव का सबसे अधिक उम्र का आदमी था। उसके रंग-ढंग से मैं समझ गया कि वह गाँव का सरदार होगा। मेरा अनुमान ठीक ही निकला। वह गाँव का सरदार ही था। उसका नाम था तांगले।

अपनी जिन्दगी से मैं निराश हो चला था। गाँव के लोगों को खुशी मनाते देख मैं समझ गया कि वे लोग आज शिकार फँसा देखकर स्वादिष्ट नर-मांस के भोज के लिए उतावले हो रहे हैं। लेकिन मुझको एक बात से कुछ आशा बँधी—मैंने उनकी बातें सुनकर समझा कि मैं स्वयं उनकी भाषा के कुछ टूटे-फूटे शब्दों को जानता हूँ। सरदार तांगले गुस्से से लाल-लाल आँखें निकाल कर मेरी ओर झपटा, तो मैंने सहसा कहा—'दूआ पुलू।' यानी 'मैं रास्ता भूलकर इधर आ गया हूँ।'

इसके साथ ही मैंने हाथ उठाकर इशारा करते हुए टूटी-फूटी भाषा में बताया कि मैं पहाड़ों के उस पार से आया हूँ। फिर पेट पर हाथ रखकर बोला—माकन माकन । अर्थात् भूख के कारण मेरी जान निकल रही है। यह देखकर मेरी जान में जान आयी कि मेरी बातें सुनकर सरदार तांगले का रुख एकाएक काफी हद तक शान्त हो गया था। उसने मुझको बैठने का इशारा किया और अपने आदमियों को खाना लाने का आदेश दिया। कई आदमी सरदार का हुक्म पाते ही दौड़े-दौड़े गये और थोड़ी ही देर बाद चावल, सुअर का गोश्त और शराब ले आये। खा-पीकर मेरी जान में जान आयी। मुझे पहली बार आशा बँधी कि शायद मैं किसी तरह इन आदमखोर लोगों से अपनी जान बचाने में सफल हो सकूँगा। खाने के बाद मैंने सरदार तांगले के सामने आभार प्रकट किया। और टूटी-फूटी भाषा में उसे यह समझाने की कोशिश की कि मैं आप सब लोगों का दोस्त हूँ। और आप लोगों से मिलने के लिए ही तमाम खतरों से खेलता हुआ यहाँ तक आया हूँ।

भाग्य अच्छा था—मुझको सफलता मिली। सरदार मेरा मतलब समझ कर खुश हो गया। उसने मेरी दोस्ती का आदर किया और उठकर उसने हाथ मिलाया फिर तो कबीले के और भी कितने ही लोग उत्साह से भर उठे। उनमें से कितनों ने ही उत्साह के साथ मुझसे हाथ मिलाया। मैंने देखा कि इस प्रसंग से वहाँ की मोहक युवतियाँ विशेष रूप से प्रसन्न दिखायी पड़ रही थीं। उनकी आँखों में उमंग भर गयी। वे अब और भी हसरतभरी निगाह से मुझको देख-देख कर हँस रही थीं।

अन्ततः मेरा भय दूर हो गया। मैं समझ गया कि कबीले ने उसे मित्र के रूप में अपना लिया है। वास्तव में यह भाग्य का ही चमत्कार था कि एक नरभक्षी कबीले

ने अपने शिकार को मित्र बनाकर अपना लिया। मेरी जान बच गयी। लेकिन उस समय मैंने शायद सपने में भी यह कल्पना नहीं की थी कि जीवन के अगले क्षणों में मुझे कैसी-कैसी अलौकिक घटनाओं से गुजरना होगा। वास्तव में शायद यह जीवनदान इसीलिए मिला था कि मुझे संसार के विचित्रतम रहस्यों का रोमांचकारी अनुभव प्राप्त होने वाला था।

मेरी जान तो बच गयी लेकिन वहाँ से छुटकारा नहीं मिला मुझे। वैसे मेरी बड़ी तीव्र इच्छा हो रही थी कि वहाँ से लन्दन चला जाऊँ। और फिर पत्रकारों की टीम को लेकर पूरी तैयारी के साथ आऊँ। और इस नरभक्षी कबीले के रहन-सहन, रीति-रिवाज, परम्पराओं आदि पर विस्तृत पुस्तक लिखूँ। किन्तु रास्ता तो मुझे मालूम नहीं था कि चुपचाप वहाँ से खिसक देता और तत्काल जाने की बात करके मैं कबीले के लोगों को आशंकित भी नहीं करना चाहता था। नरभक्षी लोगों के बीच ऐसा खतरा उठाने का मतलब बड़ा ही भयावह था।

दूसरे ही दिन मुझे एक भयानक स्थिति का सामना करना पड़ा—जिसकी मुझे कल्पना भी नहीं थी। बिल्कुल सवेरे ही दूसरे गाँव के नरभक्षी कबीले के लोगों ने अचानक आक्रमण कर दिया। आक्रमण का कारण मैं ही था। उस कबीले को न जाने कैसे मालूम हो गया कि मुझे वहाँ पकड़ कर लाया गया है। वे मुझे छुड़ाकर अपने साथ ले जाना चाहते थे। इसके पीछे उनका एकमात्र उद्देश्य था—नरमांस का स्वादिष्ट भोजन करना, जो उन्हें काफी दिनों से प्राप्त नहीं हुआ था।

दूसरे गाँव के उस कबीले के सरदार का नाम था तामड़े। शक्ल-सूरत से वह बिल्कुल राक्षस जैसा लग रहा था। शरीर से भी वह काफी मजबूत और मोटा-ताजा था। उसके हाथ में बड़ा-सा बरछा था—जिसके सिरे पर मानव खोपड़ी बँधी हुई थी। उसके आदमियों ने चारों ओर से गाँव को घेर लिया था। वे संख्या में बहुत अधिक थे। तांगले के आदमियों से उनकी जमकर लड़ाई शुरू हो चुकी थी। चारों ओर भयंकर चीख-पुकार और शोर-गुल मचा हुआ था। मैं झोपड़े के बाहर निकला तो देखा—सरदार एक पेड़ से बँधा हुआ था। और तामड़े मैदान में खड़ा होकर अपने चुने हुए साथियों के साथ मुझे ललकार रहा था। उसने मेरी ओर खूनी नजरों से देखा—और फिर जोर से दहाड़ा। मैं उसका इरादा समझ गया। उसने काफी ताकत से मुझ पर अपना बरछा फेंका। मैं सावधान तो था ही। लपक कर बरछा पकड़ लिया मैंने—और तुरन्त मोड़कर एक ओर फेंक दिया। उसी समय उसके साथियों ने चारों ओर से घेरकर मुझ पर अपने-अपने बरछे से वार करने लगे। मैं खाली हाथ था। मगर मेरे पास जो कला थी उससे मैंने पाँच मिनट में सभी को धराशायी कर दिया। मैं फिर तामड़े की ओर लपका—वह अपना बचाव करे कि तब तक लगभग दस-बारह फीट उछलकर मैंने पूरी ताकत से उसके चेहरे पर अपनी लात जमा दी। और दूसरे ही क्षण विद्युत गति से उसकी गर्दन पर हाथ से भरपूर वार कर दिया। तत्काल वह जमीन पर गिरा और बेहोश हो गया। उसकी गर्दन एक ओर झूल गयी थी। नाक और मुँह से खून निकल रहा था।

अपने सरदार की यह हालत देखकर उसके कबीले के लोग भाग खड़े हुए।

मैं सरदार तांगले के करीब पहुँचा। वह मेरी ओर आश्चर्य से देख रहा था। उस समय उसकी आँखों में जिज्ञासा, कौतूहल और कृतज्ञता के मिले-जुले भाव तैर रहे थे। मैंने जल्दी-जल्दी उसकी रस्सी खोली—वह खुशी से लिपट गया मुझसे। तब तक गाँव के सभी लोग वहाँ आ गये थे और विजयोल्लास से नाच-कूद रहे थे।

थोड़ी देर बाद मैंने देखा—तामड़े के कबीले के लोग फिर वहाँ पहुँच गये। वे अपने साथ दर्जनों सुअर, कई हँड़िया शराब और ढेर सारी मछलियाँ ले आये थे। उनका सरदार हार चुका था। अत: कबीले की प्रथा के अनुसार वे सारी चीजें नजराने के तौर पर देकर अपने सरदार को ले जाने के लिए आये थे। उनके साथ एक जवान और खूबसूरत लड़की भी थी। जिसका नाम था निताऊ। वह भी नजराने के तौर पर आयी थी। सरदार तांगले ने उसे मुझे भेंट कर दी। और रात को मुझे और निताऊ को अपने घर ले गया वह। घर में औरतें खाना तैयार कर रही थीं—मुर्गियाँ और सुअर भूने जा रहे थे। औरतों ने मुझे घूर-घूर कर देखा और आपस में बातें करके हँसने लगीं। मेरा खूब स्वागत हुआ। मुझे सोने के लिए अलग कमरा दे दिया गया। रात को निताऊ मेरे साथ रही। पहली बार उस रात मैंने किसी आदिवासी नवयुवती के शारीरिक सुख का आनन्द उठाया था। कुछ ही दिनों में मैं उन लोगों के बीच एकदम घुलमिल गया। पूरे कबीले के लोग मुझे हर तरह से अपना ही समझने लगे। मेरे साथ वहाँ के कई युवकों से गहरी दोस्ती हो गयी। मैं जल्दी ही उनकी भाषा के साथ-साथ वहाँ के आचार-विचार, व्यवहार और रीति-रिवाज की गहरायी में पैठ गया।

मैंने शीघ्र ही अनुभव किया कि मुझे पूरी तरह अब कबीले का ही अंग समझा जाता है। कबीले के किसी भी मामले में मेरे साथ कोई भेद-भाव नहीं रखा जाता था। गाँव में मुझको भी उतने ही अधिकार थे जितने किसी भी कुँवारे युवकों को प्राप्त थे। मैंने समझदारी से काम लिया। मैंने तत्काल निश्चय किया कि अधिकारों का पूरा उपयोग तभी किया जा सकता है जब मैं कबीले के अन्य युवकों की भाँति ही कर्त्तव्यों को भी अपना लूँ और अपने इस निर्णय के साथ ही मैं सक्रिय हो उठा। अब कबीले के युवकों के साथ मैं भी शिकार पर जाया करता था। कभी-कभी खुराक की तलाश में औरतों और बच्चों के साथ जंगल में भी जाया करता। वैसे तो मुझसे सभी खुश थे। लेकिन कबीले की युवतियाँ और बच्चे मुझसे काफी प्रभावित थे। मुझको शीघ्र पता चल गया कि इस कबीले की यौन परम्परायें सभ्य जगत् से बहुत ही अलग थीं। यहाँ कुँवारे पुरुषों और कुँवारी युवतियों को पूरी स्वतंत्रता प्राप्त थी। वे परस्पर मनचाहे व्यक्ति के साथ शारीरिक आनन्द प्राप्त कर सकते थे। विधवा तथा विधुर व्यक्तियों को भी यही सुविधा थी। वे भी कुँवारे ही माने जाते थे। लेकिन विवाह के साथ कठोर प्रतिबंध जुड़ा था। पति-पत्नी बनने के बाद कोई भी पुरुष अथवा स्त्री परगामी नहीं हो सकता था। यदि कोई भी विवाहित व्यक्ति व्यभिचार करता हुआ पकड़ा जाता था तो

उसे खम्भों में बाँधकर जीवित ही जला दिया जाता था। ऐसे पुरुष की खोपड़ी गाँव के बीच लटका दी जाती थी।

इस कबीले की स्त्रियाँ अन्य आदिवासी कबीलों के मुकाबले रंग-रूप में कहीं अधिक आकर्षक थीं। उनके सुगठित, सुडौल अंगों से यौवन की मादकता छलकती रहती थी। मैंने यह भी अनुभव किया कि इस कबीले में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ वासना के मामले में अधिक सक्रिय थीं। उनकी कामुकता का उदाहरण भी मुझे शीघ्र ही मिल गया। कुँवारी युवतियों में से कई अक्सर मेरे पीछे-पीछे लगी रहती थीं।

मुझको यहाँ रहते दो माह से ऊपर निकल गये थे। इस बीच मेरे लिए सरदार ने अलग झोपड़ी बनवा दी थी। निताऊ मेरे साथ थी। अब मैं पूरी तरह इस कबीले का सदस्य था। अत: इस कबीले की हर सुख-सुविधा का अधिकारी था। वासना के मामले में भी मुझे शीघ्र ही कबीले की यौन उदारता से सुख मिलने लगा। यहाँ की युवतियों की मादकता से प्रभावित होते हुए स्वयं तो कोई ऐसी-वैसी चेष्टा करने का साहस कभी नहीं किया लेकिन मैं पूरी तरह कबीले का सदस्य अथवा पुरुष बन चुका था। सो, यहाँ की कुँवारी युवतियों ने स्वयं ही मुझे दैहिक आनन्द देने की उदारता दिखायी। हर रात मेरी झोपड़ी में गाँव की कोई न कोई कुँवारी नवयौवना आकर मेरी शैया-संगिनी बनने लगीं।

धीरे-धीरे मैंने अनुभव किया कि वास्तव में गाँव की कुँवारी युवतियाँ उस पर कृपा नहीं करतीं वरन् वे स्वयं अपने शारीरिक सुख के लिए मेरे पास आती हैं। इस संबंध में मुझे बड़े ही अनोखे अनुभव हुए। मुझे शीघ्र ही इस बात का आभास मिल गया कि युवतियों के लिए मैं विशेष रूप से आकर्षक का केन्द्र बन गया हूँ। वे शायद बाजी लगाकर मेरे पास आया करती हैं। उन युवतियों को इस विषय में गहरी जानकारी थी। उनको ऐसी औषधियाँ मालूम थीं—जिसे शराब के साथ पिला देने पर किसी भी युवक को पौरुष की प्रचण्ड शक्ति प्राप्त हो जाती थी। और ऐसी शराब पीने के कुछ ही पल बाद पुरुष बड़े मजे से एक ही रात में कई युवतियों को सन्तुष्ट कर सकता था। लगातार यौन-क्रीड़ा में रत रहने पर भी न तो वह थकता था न उसके सामर्थ्य में ही कोई कमी दिखायी पड़ती थी। सबसे अजीब बात तो यह थी कि युवतियाँ, पुरुष की अपेक्षा स्वयं ही अधिक सक्रिय होतीं। इसके बाद मैं कबीले का पूरी तरह से अंग बन गया। समय बीतता गया। कबीले के तमाम स्त्री-पुरुषों के साथ अपनापन हो गया था। लेकिन इनमें से एक युवक था इकलामे जो हमेशा अलग-थलग रहता था। उसके प्रति वैसे तो कबीले के लोग बड़े आदर और तत्परता के साथ पेश आते थे लेकिन किसी में उसके लिए अपनापन की भावना नहीं थी। मैंने अनुभव किया कि इकलामे ही एकमात्र गाँव का ऐसा युवक है जो मुझे पसन्द नहीं करता, बल्कि अक्सर वह मुझको द्रोहभरी दृष्टि से घूरा करता था।

इकलामे को प्रभावित करने में मैं एकदम असफल रहा। मैंने उसके बारे में लोगों से पूछताछ की—तब इसका एक अद्भुत-सा रहस्य सामने आया। मुझे पता चला कि

इकलामे एक बड़ा ही भयानक तांत्रिक है। वह कितने ही ऐसे तंत्र-मंत्र जानता है जिनके बल पर वह क्षण भर में बड़े-बड़े अनर्थ कर सकता है। इसी कारण लोग उसे कबीले का सबसे खतरनाक आदमी समझते थे। और उसका नाम लेते भी डरते थे। इकलामे के विषय में एक अलौकिक रहस्य की बात लोगों ने यह बतलायी कि इकलामे 'रूप बदल विद्या' जानता है। इस विद्या के बल पर वह मनचाहा रूप धारण कर सकता था। औरतों और इकलामे में जिस व्यक्ति का रूप धारण कर ले—स्वयं वह आदमी भी अपने रूप का ही दूसरा आदमी देख कर खौफ के मारे पागल हो जाता था।

मैं था सभ्य जगत् का पढ़ा-लिखा अंग्रेज। मुझे ऐसी रूढ़िवादी बातों पर क्यों विश्वास आने लगा। मैंने हँसी उड़ायी तो लोग घबरा उठे। सभी लोग मुझे इकलामे से बचकर रहने की चेतावनी देते रहते। और वैसे भी यही कोशिश करते कि कहीं मैं गलती से इकलामे से भिड़ न जाऊँ।

लेकिन संयोग कुछ ऐसा बना कि एक दिन मेरी इकलामे से भिड़न्त हो ही गयी। तब ऐसी चमत्कारी घटनायें हुईं और कुछ ऐसी विकट परिस्थितियों में फँसना पड़ा कि मैं इकलामे की रहस्यमयी शक्तियों का शिकार होकर रह गया।

घटना बड़े विचित्र ढंग से घटित हुई।

गाँव के बाहर कबीले के किसी जंगली देवता का मन्दिर था। मन्दिर क्या एक पुराना खण्डहर था जिसमें पत्थर की कोई बेडौल-सी मूर्ति रखी हुई थी। उस दिन वहाँ सालाना जलसा था। जिसमें खाने-पीने की दावत थी और नृत्य-समारोह भी था।

खाना-पीना खत्म होने के बाद नृत्य शुरू हो गया। नाचने वाली स्त्रियों में एक अत्यन्त रूपवती और मस्त युवती को देखकर मैं मुग्ध हो गया। इस कबीले में कोई ऐसी रूप की देवी भी होगी—इसकी कल्पना तक मुझको नहीं थी। उसके यौवन से भरपूर अंगों की थिरकन देखकर मैं झूम उठा। और खुलकर उसकी सुन्दरता और यौवन का बखान करने लगा। सरदार तांगले से यह सुनकर तो मैं चकित रह गया कि वह नवयुवती स्वयं सरदार की लड़की कुमारी टोना है। मैंने आश्चर्य व्यक्त किया कि इतने दिनों से यहाँ रहते हुए भी वह आज तक टोना को नहीं देख पाया। मैंने सरदार से फिर टोना के नृत्य एवं सौन्दर्य की प्रशंसा की। रूप-यौवन की देवी टोना वास्तव में किसी भी युवक को पागल कर सकती थी। नृत्य से थिरकती उसकी मादक देह को देखते-देखते मैं सचमुच उस पर आसक्त हो उठा। मेरे मन में टोना की कमनीय देह को बाँहों में भरकर भोगने की लालसा एकबारगी जाग उठी।

यह सुनकर मैंने टोना की ओर भरपूर नजरों से फिर एक बार देखा और मन ही मन सोचने लगा कि टोना में कौन-सा ऐसा सौंदर्य है जिसे देखकर अभिभूत हो उठा था बेकर।

शायद मेरे मन के भाव को बेकर समझ गया। बोला—नारी की कमनीयता और उसके सौंदर्य को देखने-परखने की अपनी-अपनी दृष्टि है। कबीले की जितनी भी युवतियों से मेरा सामना पड़ा था उनमें वह विशिष्ट थी। रूप-यौवन मादकता में अपना

अलग स्थान रखती थी। सहसा सरदार ने गंभीर स्वर में पूछा—क्या टोना तुमको सचमुच सुन्दर लगती है। आस-पास खड़े लोग भी मेरी ओर अजीब दृष्टि से घूरने लगे। मैं सरदार से यह प्रश्न तीसरी बार सुनकर खीझ उठा। मुझे लगा कि लोग मेरी हँसी उड़ा रहे हैं। मैंने और भी जोर से कहा—हाँ, हाँ, सुन्दर ही नहीं, अतिसुन्दर। टोना गाँव की सबसे सुन्दर युवती है।

सुनते ही सरदार ने सहसा—घाटो घाटो घाटो कहा और उठकर चला गया। इसके साथ ही मुझे तमाम लोग घूरने लगे। वातावरण सहसा एकदम भारी हो उठा। मेरी समझ में कुछ नहीं आया। मैं परेशान होकर सोचने लगा कि टोना की सुन्दरता की प्रशंसा करके मैंने ऐसा कौन-सा अपराध कर दिया कि सरदार एकदम नाराज होकर चला गया। लोग उसे घूर-घूर कर देख रहे थे। एक आदमी टोना को मेरी ओर इशारा करके कुछ बतला रहा था। मैंने मुस्करा कर देखा—पर टोना ने तुरन्त आँखें झुका लीं। तभी इकलामे अचानक ही मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। उसकी आकृति बड़ी ही भयावनी थी—लम्बा कद, सूखा-सा इकहरा बदन। काले-सख्त चेहरे पर हजारों रेखाओं का जाल, उलझे बाल, पत्थर की तरह कठोर उभरी हुई मांस-पेशियाँ और रहस्यमयी आँखें। एक तो वैसे ही वह भयानक लगता था—फिर उस समय तो उसकी आँखों में खून-सा उतर आया था। यमदूतों के से उसके डरावने चेहरे पर उसकी दोनों लाल अंगार जैसी आँखें उस समय रह-रहकर जल सी उठती थीं। मुझको उसकी तांत्रिक विद्याओं से जरा-सा भी डर नहीं लगता था—लेकिन अचानक ही तनाव के कारण भारी हो जाने वाले वातावरण में क्रोध से धधकते इकलामे की डरावनी आँखों को देखकर मैं घबरा-सा उठा। मैंने मुँह फेर लिया। इकलामे जाने क्या बड़बड़ाता हुआ पाँव पटकता हुआ चला गया।

दावत खत्म हो गयी थी। लोग नशे में लुढ़क रहे थे। कुछ बहकी-बहकी बातें करने लगे थे। मैं भारी मन से उठकर अपनी झोपड़ी की ओर चला गया। मैं कुछ समझ नहीं पा रहा था। लेकिन शीघ्र ही मैं इस उलझन से छुटकारा पा गया। क्योंकि उसी समय कामोवेग से बहकती कम उम्र की चार युवतियाँ एक साथ मेरी झोपड़ी में आ पहुँचीं। और मुझको खुद सोचने-समझने का अवसर दिये बिना ही उन्होंने मुझे वासना की उफनती लहरों में खींच लिया। चारों नवयुवतियों की चौदह से सोलह साल से ज्यादा उम्र नहीं थी। वह रात मेरे जीवन की सबसे अनोखी याद बनकर रह गयी। उस गाँव में मुझे उस रात का-सा यौन-सुख कभी नहीं मिला था।

सबेरा होने पर मैंने गाँव छोड़कर लौटने की इच्छा एक मित्र युवक के सामने व्यक्त की। सुनते ही वह थोड़ी देर तो मुझको घूरता रहा—फिर उठकर वहाँ से पागल की तरह भागा और थोड़ी देर वह लौटा तो उसके साथ सरदार तांगले था—क्रोध से धधकता हुआ। आज उसका पंजा भाले पर कसा हुआ था। आते ही उसने दहाड़कर पूछा—'मोसी कूड़ी को साऊजा ' यानी मेरी लड़की का क्या होगा—'टोना का।' मैंने हकलाकर कहा—'मैंने तो कभी टोना को कुछ नहीं कहा सरदार।' और तब

कहा—शायद तुमने सपना देखा है टोना। मैं तो यहाँ से सबके साथ ही गया और शिकार के बाद अभी-अभी लौटा हूँ।

लेकिन टोना बार-बार अपनी ही बात दुहराती रही। फिर सहसा ही उसी की जुबान अटक गयी। इकलामे की भयावनी आकृति उसके सामने नाच उठी और इसके साथ ही वह एकदम बौखला कर रोने लगी। उसे अपनी समूची देह जलती-सी महसूस हो रही थी। वह समझ गया कि दुष्ट इकलामे ने ही 'रूप बदल विद्या' के बल पर मेरा रूप धारण करके उससे छल किया है और अपनी घिनौनी विद्या पूरी कर ली।

मुझको ऐसे तंत्र-मंत्र पर विशेष रूप से तांत्रिक विद्या के बल पर किसी का रूप धारण करने की बात पर जरा भी विश्वास नहीं था। मुझे लगा कि जरूर कहीं कोई गलतफहमी हुई है या टोना किसी धोखे का शिकार हो गयी है। लेकिन इस विषय में मुझे कुछ सोच-समझ पाने का मौका ही नहीं मिला। टोना अपना गाल और छाती पीट-पीट कर क्रन्दन करती हुई जोर-जोर से इकलामे को कोसने लगी थी। उसकी हालत देखकर मैं घबरा उठा। मैंने टोना को शान्त करने के लिए झूठ का सहारा लिया और हँसकर बोला—अरे! पगली! तू तो एकदम जान देने पर ही तुल गयी। मैं तो मजाक कर रहा था। सचमुच, मैं ही रास्ते से लौटकर आ गया था।

और टोना को तो जैसे जिन्दगी ही मिल गयी। वह एकाएक रोना बन्द करके मेरी छाती से लिपट गयी।

उस वक्त तो मामला ठण्डा पड़ गया, लेकिन यह पहेली लगातार मेरे दिमाग में चक्कर काटती रही। एक ओर तो कबीले के तमाम लोग गवाह थे कि मैं घर से निकलने के बाद लगातार उनके साथ शिकार करता रहा और शाम को ही घर लौटा। दूसरी ओर अजमे और टोना का कहना था कि मैंने स्वयं लौटकर दोनों से बातें की थीं। और फिर टोना का यह बयान मुझे पागल बनाये दे रहा था कि मैंने खुद अजमे को जाने के लिए कहा था और प्रचण्ड वासना से उन्मत्त होकर पूरे पाँच घण्टे काम-क्रीड़ा की थी और दुबारा शिकार पर चला गया था।

लाख सिर मारने पर भी इस रहस्य का कोई ओर-छोर नहीं मिला। मैंने यह सोचकर इस घटना को भुला देने की कोशिश करने लगा कि रूप बदल कर इकलामे का बेकर बन जाना एकदम असम्भव है। इन लोगों को अंध-विश्वास के कारण ही भ्रम हो गया होगा।

फिर कुछ दिन बाद सहसा एक ऐसी घटना घटी कि मैं स्वयं स्तम्भित रह गया। एक रोज मैं अपनी झोपड़ी से कोई सौ गज की दूरी पर ही लकड़ियाँ चुन रहा था। वहाँ से मेरी झोपड़ी साफ नजर आ रही थी। अचानक मेरी नजर अपनी झोपड़ी की ओर उठी। यह देखकर मेरा माथा घूम गया कि ठीक मेरे ही रूप, रंग और शक्ल-सूरत का एक और बेकर मेरी झोपड़ी में प्रवेश कर रहा है। यह बात मेरी कल्पना से परे थे। मैं क्षणभर पथराया-सा खड़ा रहा फिर हाथ की लकड़ियाँ फेंककर एकदम से

आवेश से थरथराते हुये सरदार तांगले ने जो कुछ कहा उससे मैं एकदम स्तम्भित-सा रह गया। वस्तुतः कल मैंने अनजाने ही टोना की सुन्दरता की तीन बार प्रशंसा कर दी थी। कबीले की परम्परा के अनुसार सार्वजनिक रूप से किसी भी युवती की सुन्दरता की तीन बार प्रशंसा का मतलब होता था—उस युवती से विवाह की इच्छा प्रकट करना। सरदार तांगले ने क्रोध से काँपते हुए घोषणा की कि अब मैं वहाँ से कभी जिन्दा वापस नहीं जा सकता। वास्तव में टोना का विवाह इकलामे के साथ तय हो चुका था लेकिन मेरी इच्छा समझने के बाद सरदार ने इकलामे से रिश्ता तोड़ा—इसके लिए उसे कबीले के रीति-रिवाज के अनुसार दण्डस्वरूप इकलामे को चार सुअर भी देने पड़े थे।

सरदार तांगले ने भाला हवा में उछालकर चेतावनी दी कि अगर अब मैं टोना के साथ दगाबाजी करूँगा तो कबीले के लोग मेरी बोटी-बोटी करके खा जायेंगे और मेरी खोपड़ी गाँव के बीचोबीच लटका दी जायेगी।

शर्मा जी! बेकर ने थोड़ा रुककर आगे कहा—अनजाने ही टोना की सुन्दरता की प्रशंसा कर बैठा था मैं। उसकी यह परिणति होगी इसकी तो मैंने कल्पना भी नहीं की थी। टोना का मादक रूप-यौवन मुझ पर अब भी हावी था। लेकिन उसके लिए, हमेशा के लिए कबीले में बस जाने की बात मैं कैसे सोच सकता था। पर अब तो कोई चारा था नहीं। नरभक्षियों का भोजन बनने की अपेक्षा टोना जैसी सुन्दरी को दुल्हन बनाकर जीते रहने की लालसा अधिक मोहक थी। मैं चुपचाप समर्पण कर दिया।

कहने की आवश्यकता नहीं, दो ही दिन बाद कबीले के रिवाज के अनुसार विधिवत् मेरा और टोना का विवाह कर दिया गया। और सुहागरात मनाने के लिये टोना के चाचा के यहाँ हमें पहुँचा दिया गया। भले ही वह विवाह मजबूरी में हुआ था लेकिन अब मैं टोना जैसी कमनीय युवती को पत्नी रूप में पाकर प्रसन्न था। टोना भी मुझे पाकर बेहद खुश थी। मेरा गोरा रंग और भूरी आँखें टोना के लिए आकर्षण का केन्द्र था। निताऊ का क्या हुआ? मैंने पूछा।

होगा क्या, वह भी मेरे साथ थी। सुहागरात का सारा इन्तजाम स्वयं उसी ने अपने हाथों से किया था। वह भी खुश थी। मगर सुहागरात के प्रथम क्षण में ही एक विचित्र घटना हो गयी।

वह क्या।

मैं टोना को बाँहों में भरकर भींचा ही था कि वह भीत स्वर में चीखने लगी—इकलामे-इकलामे।

मैं परेशान हो उठा। मैंने बाहर निकल कर देखा-ताका, कहीं कोई भी नहीं था। मैंने टोना को ढाँढस बँधाने की कोशिश की, लेकिन टोना एकदम घबरा उठी थी। उसने डर के मारे हिलक-हिलक कर रोते हुए बतलाया—इकलामे जादू-टोना जानता है। मैंने

उससे विवाह नहीं किया—इसीलिए वह मुझे मार डालना चाहता है। अभी-अभी तो भाला लेकर मुझ पर झपटा था।

मैं समझ गया कि इकलामे का भय टोना पर बुरी तरह हावी है। मैंने प्यार से पत्नी को बाँहों में भरकर बड़ी देर तक समझाया-बुझाया, तब भी टोना रो-रोकर बार-बार कहती रही—'तुम मुझे यहाँ से लेकर कहीं दूर भाग चलो। इस गाँव में इकलामे मुझे नहीं छोड़ेगा।'

बड़ी मुश्किल से मैंने किसी तरह टोना को शान्त किया। इसके बाद हम दोनों वासना के सागर में डूब से गये। मेरे लिये वह रात नैसर्गिक आनंद प्राप्त करने वाली रात थी। उस समय फिर इकलामे की याद हम दोनों को नहीं आयी। लेकिन दूसरे ही दिन की बात है। टोना खाना पका रही थी कि किसी की पुकार सुनकर बाहर निकली। सामने इकलामे खड़ा था। उसे देखते ही टोना भय से काँपने लगी। लेकिन जब उसने वासना की घिनौनी बात छेड़ी तो टोना जल उठी। उसने साहस के साथ डपटकर इकलामे को चले जाने को कहा। ढीठ इकलामे गया नहीं। उसने पीने के लिए पानी माँगा और बार-बार वासना की ही बातें करता रहा।

टोना ने उसे दुत्कारकर चले जाने को कहा और स्वयं अन्दर जाने को मुड़ी ही थी कि इकलामे ने झपटकर उसकी कलाई पकड़ ली और दाँत पीसता हुआ कहने लगा—'टोना, मैं तुम्हारा घमण्ड तोड़कर रहूँगा। देखना, मैं एक दिन तुम्हारा शरीर भोगकर ही रहूँगा और कोई भी मेरा कुछ बिगाड़ नहीं पायेगा। यह मेरी प्रतिज्ञा है।'

फिर वह झटके से मुड़कर चला गया। टोना भय से बेहाल होकर पड़ी रही। इसके पहले भी इकलामे कई बार उसका शरीर पाने की कोशिश कर चुका था। लेकिन टोना ने उसे कभी मुँह नहीं लगाया। उसे शुरू से ही इकलामे से घृणा थी। लेकिन वह इकलामे की भयानक तंत्रविद्या से इतना डरती थी कि उससे एक पल को भी छुटकारा नहीं मिलता था। वह इकलामे की घिनौनी प्रतिज्ञा सुनकर एकदम बौखला उठी।

जब मैं लौटकर आया तो भयातुर टोना ने मुझे पूरा वृत्तान्त कह सुनाया। इस विषय में अब मुझे गंभीर चिन्ता होने लगी। मुझे इकलामे की तंत्रविद्या पर भले ही कोई विश्वास नहीं था लेकिन उस खूँख्वार आदमी की दुष्टता में तो कोई सन्देह था ही नहीं। वह टोना को अपनी गन्दी हरकतों से इस तरह सता रहा था कि हमारा दाम्पत्य सुख ही उड़ गया। मैंने सरदार तांगले से इकलामे की शिकायत की, लेकिन गाँव का सरदार भी कबीले के नियमों के सामने मजबूर था। उसने कोरा-सा जवाब दे दिया कि गाँव की परम्परा के अनुसार इकलामे को टोना के पास जाने से कोई रोक-टोक लगायी नहीं जा सकती।

हाँ, अगर इकलामे कोई अपराध करे, तो उसे सजा अवश्य दी जा सकती है। अतः मैंने व्यक्तिगत स्तर पर ही अपनी पत्नी की सुरक्षा का प्रबन्ध किया। मैंने भरसक

टोना को अपनी आँखों से ओझल नहीं होने देता था। कहीं आना-जाना पड़ ही जाय तो मैं अपने किसी हितैषी मित्र को उसकी रक्षा का भार सौंप देता था।

एक दिन गाँव के कुछ युवकों के साथ मजबूरन शिकार पर मुझे जाना पड़ा। जाते समय मैंने अपने एक मित्र अजमे को टोना के साथ रहने के लिए नियुक्त कर दिया। मुझे अजमे पर पूरा विश्वास था कि जब तक मैं शिकार से लौटकर नहीं आऊँगा तब तक अजमे किसी भी कारण से टोना को अकेली छोड़कर नहीं टलेगा। लेकिन कोई आधे घण्टे बाद ही मुझे झोपड़ी पर वापस आया देखकर अजमे चकित होकर बोला—'बड़ी जल्दी लौट आये बेकर साहब।'

मैंने मुस्करा कर कहा—'हाँ! मैं गया ही नहीं। अब तुम जाओ।'

अजमे चला गया। मैं झोपड़ी में पहुँचा तो टोना को अचरज हुआ। उसने पूछा—'अरे! तुम तो शाम तक लौटने को कह रहे थे।'

मैं हँसकर बोला—'क्या करूँ टोना! तुम्हारी मोहिनी सूरत ने मुझे ऐसा दिवाना कर दिया कि एक पल के लिए भी तुमसे दूर होने का मन नहीं करता।'

इतना कहकर मैंने शराब के दो गिलास तैयार किये और उसमें कामोत्तेजक जड़ियाँ मिलायीं। एक गिलास खुद पी और दूसरा गिलास टोना को पिलाया और उसके साथ ही बरबस टोना को बाँहों में भरकर प्यार करने लगा मैं। नयी-नयी उमंग थी। पति का रुख देखते ही टोना की भी देह लहरा उठी कामोत्तेजना से। उसके बाद लगातार चार-पाँच घण्टे तक हम दोनों यौवन की उन्मादिनी लहरों पर किलोल करते रहे। उस दिन टोना को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मैं अन्य दिनों की अपेक्षा उस दिन वासना से अधिक उत्तेजित होकर एकदम उन्मत्त-सा हो उठा था। मानो पहली बार उसे पा रहा हूँ।

उत्तेजना शान्त होने पर मैं तुरन्त शाम को लौटने के लिए कहकर शिकार पर रवाना हो गया।

शाम को शिकारियों का दल वापस लौटा। काफी शिकार मारकर हम सब लोग लाये थे। मगर टोना को एक विचित्र स्थिति का सामना करना पड़ा। झोपड़ी पर पहुँचते ही मैंने कुछ सशंक होकर पूछा—'तुम अकेली ही हो टोना! अजमे कहाँ चला गया?'

टोना ने मधुर हँसी के साथ कहा—'बड़े भुलक्कड़ हो। उसे तो सुबह आधे घण्टे बाद लौटकर खुद तुमने ही बिदा कर दिया था।'

मैं चकित होकर बोला—मैंने बिदा किया। लेकिन मैं   मैं कहाँ लौटा। तुम कैसी बहकी-बहकी बातें कर रही हो। मैं तो शाम को लौटने को कहकर गया था। और सबके साथ ही अब आ रहा हूँ।

टोना को लग रहा था कि शायद उस समय नशे में होने के कारण मैं बहक रहा हूँ। थोड़ी देर नोक-झोंक चलती रही। लेकिन टोना से लौटकर सम्भोग का आनन्द लेने—फिर लौटकर जाने की बात सुनकर मैं एकदम से सशंक हो उठा। मैंने

अपनी झोपड़ी की ओर भागा। पहाड़ी रास्ते पार करके झोपड़ी तक पहुँचने में कोई आधा घण्टा लग गया।

झोपड़ी का दरवाजा अन्दर से बन्द था और भीतर से टोना के साथ मेरी अपनी प्रेमावेश से भरी आवाज सुनायी पड़ी, 'तुम्हारे लिए तो मैं अपनी जान भी दे सकता हूँ प्यारी टोना। हाय, तुम्हारा बदन कितना मुलायम और चिकना है। फूल की पंखुड़ी की तरह उफ् । यह सीने का उभार मुझे पागल बना देता है।'

और कुछ ही पल बाद टोना की उत्तेजनाभरी सिसियाहट झोपड़ी में गूँजने लगी। मुझको अब भी शंका थी। मैं देखना चाहता था कि दूर से ठीक मुझ जैसा लगने वाला आखिर वह पुरुष है कौन? मैं झपटकर खिड़की के पास पहुँचा। यह देखकर मेरा खून सनसना उठा कि ठीक मेरा ही प्रतिरूप एक अन्य बेकर टोना के पास भी है और टोना उसे ही अपना पति समझ कर वासना के सागर में डूबी हुई है। अब मेरे लिये शंका का कोई कारण नहीं रहा। अपनी आँखों से अद्‌भुत और अविश्वसनीय दृश्य देखकर मेरे विश्वास की नींव ढह गयी। मैं समझ गया कि इकलामे सचमुच 'रूप बदल विद्या' के बल पर मनचाहा रूप धारण कर सकता है। और इस समय भी वह मेरी पत्नी को अपवित्र कर रहा है।

मैं झपटकर दरवाजे पर पहुँचा। और लात मार-मार कर चिल्लाने लगा—'दरवाजा खोलो, टोना! वह शैतान इकलामे है—जो मेरा रूप धारण करके तुम्हें अपवित्र कर रहा है। वह बेकर नहीं—बेकर तो मैं हूँ।'

मेरी आवाज सुनते ही भीतर हड़बड़ी मच गयी। टोना घबरा कर बोली—'बाहर कौन है बेकर!'

वासना के ज्वार में उफनते मेरा रूपधारी बेकर बोला—तुम घबराओ मत टोना! मैं ही तुम्हारा बेकर हूँ। वह दुष्ट इकलामे है—जो हमारे आनन्द में बाधा डालने के लिए रूप बदलकर तुम्हें सताना चाहता है।

बेकर ने आगे बतलाया कि इस बीच मैं बराबर चीख-पुकार मचाता रहा। शोर-गुल सुनकर गाँव के और बहुत से लोगों की भीड़ जमा हो गयी। दरवाजा तोड़ डाला गया। मैं तीर की तरह अन्दर घुसा। मैंने अपने प्रतिरूप को खींच कर टोना से अलग करना चाहा। स्वयं टोना भी उसकी पकड़ से छूटने के लिए छटपटा रही थी। लेकिन वासना में डूबे हुए उस कामुक शैतान में न जाने कहाँ से इतनी शक्ति आ गयी थी कि किसी की एक न चली।

आखिर बड़ी देर बाद उसे खींचकर बाहर निकाला गया। लोगों ने उसे पकड़कर सरदार के सामने पेश किया। इकलामे कुँवारा था और विवाहित स्त्री के साथ किसी कुँवारे आदमी के सहवास का दण्ड था—व्यभिचारी स्त्री तथा पुरुष दोनों को जिन्दा ही जला देना। लेकिन न्याय के सामने एक बड़ी ही विचित्र स्थिति अड़ गयी थी। इकलामे को खोजा गया पर वह कहीं नहीं मिला।

इसके बाद बेकर ने मुझे जो कहानी सुनायी, वह निस्सन्देह आश्चर्यजनक और अविश्वसनीय थी। गाँव के लोग अपने सामने एक ही रूप-रंग वाले दो-दो बेकर खड़े देखकर अचम्भे में पड़ गये थे। वे दोनों ही अपने को असली बेकर कह रहे थे। और सबसे आश्चर्य की बात तो यह थी कि उन दोनों में कोई बारीक से बारीक फर्क नहीं था जिससे अनुमान लगाया जा सके कि इनमें से कौन बेकर है और कौन है इकलामे? करुण क्रन्दन करती टोना को इसी आधार पर अपराध से बरी कर दिया गया कि यदि उससे व्यभिचार करने वाला व्यक्ति वस्तुतः इकलामे ही हो तो भी इसमें बेचारी टोना का कोई दोष नहीं था। क्योंकि शैतान इकलामे ने अपनी 'रूप बदल विद्या' के बल पर कबीले के चतुर से चतुर आदमी को धोखे में डालकर मूर्ख बना दिया था। फिर भला बेचारी टोना का क्या अपराध। उसने तो उसे अपना पति समझ कर ही समर्पण किया था। उसे सजा से मुक्ति मिल गयी। अब समस्या यह थी कि इकलामे को सजा कैसे दी जाय।

यह निश्चय करने का कोई उपाय सफल नहीं रहा कि दोनों में से कौन बेकर है और कौन इकलामे। हारकर सरदार ने गाँव के तमाम सयाने लोगों से सलाह-मशविरा किया। इकलामे से छुटकारा पाने के लिये उन लोगों ने यह निर्णय किया कि दोनों ही बेकर को जीवित ही जला दिया जाय।

दोनों बेकर चीखते-चिल्लाते रह गये। दोनों को खम्भों में बाँधकर उनके चारों ओर घास-फूस और लकड़ियों का ढेर लगा दिया गया और लगा दी गयी आग। लेकिन इकलामे की बुद्धि शैतान की बुद्धि थी। उसने सोचा, अगर वह अकेले बचेगा तो भी लोग समझ लेंगे कि यही इकलामे है और उसे भी किसी-न-किसी तरह मारकर खा जायेंगे इसलिए उसने अपनी तांत्रिक विद्या की ताकत से दोनों जगह लगी आग बुझा दी। इतना ही नहीं, गुस्से में आकर उसने मंत्रबल से गाँव की कुछ झोपड़ियों में भी आग लगाकर उन्हें भस्म कर दिया। इस काण्ड से समूचे गाँव के लोग आतंकित हो उठे। लोगों ने दोनों बेकरों को भाले से छेदकर मारने की कोशिश की मगर इकलामे ने अपनी तांत्रिक शक्ति से उनके इस प्रयास को भी असफल कर दिया।

अब तो कबीले के लोग बड़े ही संकट में पड़ गये। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि शैतान इकलामे को कैसे खत्म करें। काफी लम्बी बैठक में सोच-विचार चलता रहा। इस बीच अचानक ही बेकर को एक रहस्य की जानकारी मिल गयी। किसी की बात उसकी कानों में पड़ गयी कि अगर इकलामे के शरीर को किसी तरह जख्मी किया जा सके तो उसकी मंत्रशक्ति तत्काल नष्ट हो जायेगी। लेकिन समस्या तो यह थी कि आखिर उसे जख्म पहुँचाया जाय तो कैसे।

बेकर ने पलक झपकते कुछ निश्चय किया। उसने सरदार से प्रार्थना की कि हम दोनों को परस्पर भाले से लड़ने की अनुमति दी जाय। लड़ाई में जो मरे वह तो खत्म हो ही जायेगा लेकिन जो बच जाय उसे ही बेकर मानकर टोना के साथ जीवन

बिताने दिया जाय। चाहे वह नकली बेकर के रूप में इकलामे ही हो। गाँव के लोगों ने यह बात मान ली। दोनों को खोलकर एक-एक भाला थमा दिया गया। और वे लोग घात लगा-लगाकर एक दूसरे पर हमला करने लगे। इस बीच बेकर स्वयं भाले के युद्ध में माहिर हो चुका था। फिर भी इकलामे चाहता तो अपनी मंत्रशक्ति से उसे खत्म कर सकता था। लेकिन वह ठहरा पापी। उसे खतरा बना हुआ था कि अकेले बचे रहने पर भी गाँव वाले उसे इकलामे ही समझेंगे और किसी भी कीमत पर उसे मार डालेंगे इसलिए उसने मंत्रबल का प्रयोग किया ही नहीं। और शारीरिक बल से ही बेकर के वार को झेलता रहा।

वह लड़ाई घण्टों तक चलती रही। लेकिन दोनों ही इतने सतर्क थे कि वे वार बचाते रहे। कोई भी घायल नहीं हुआ। उनके बदन पर एक खरोंच तक नहीं आयी। फिर भी असली बेकर कुछ ठानकर बड़ी चतुराई के साथ लड़ रहा था। उसे पूरा यकीन था कि इकलामे अपनी पोल बचाये रखने के कारण उसे न मारेगा न जख्मी करेगा। इसलिए बेकर ने एक चाल चली। वह लगातार वार-पर-वार करके इकलामे को थकाता रहा। आखिर एक बार उसने दाँव मारकर प्रतिद्वन्द्वी हो थका दिया। इकलामे का ध्यान बँटा ही था कि घात पाकर बेकर ने उसे बड़े ही कौशल से पटक कर भाले की नोक से इकलामे का शरीर छेद दिया।

घाव गहरा था। खून की फुहार उठ ली और इकलामे गिरकर तड़पने लगा। तभी एक चमत्कार हुआ। गिरते ही उसका बेकर रूप उड़ने लगा—और देखते ही देखते इकलामे की घिनौनी आकृति उभर आयी। सहसा इकलामे इतने जोर से चिंघाड़ उठा कि औरतें और बच्चे डर के मारे दहल कर रो पड़े। यह अद्भुत दृश्य देखकर टोना तो बेहोश होकर गिरने ही लगी थी। लेकिन बेकर ने लपक कर उसे अपनी मजबूत बाँहों में सँभाल लिया।

इकलामे की मंत्रशक्ति जख्म लगते ही खत्म हो चुकी थी। वह खून से लथपथ तड़फड़ा रहा था। सरदार के आदेश पर जवानों ने झपट कर इकलामे को धर-दबोचा और घसीट कर खम्भे में बाँध दिया। इसके बाद लकड़ी के ढेर में आग लगा दी गयी।

धू-धू करती आग की लपटों के बीच लोगों को एक और चमत्कारपूर्ण दृश्य दिखलायी पड़ा। इकलामे का समूचा शरीर जलकर स्याह रंग के धुएँ में बदला और वातावरण में विलीन हो गया। अवशेष के रूप में न तो उसके शरीर की हड्डी बची और न भस्म का एक कण ही मिला। वह विचित्र और अद्भुत घटना थी। कबीले के नियम के अनुसार अपराधी को दण्ड तो मिल गया मगर उसकी खोपड़ी गाँव के बीच में टाँगी न जा सकी।

खैर, एक प्रकार से यह अविश्वसनीय और रोमांचकारी कहानी तो यहीं समाप्त हो जाती है लेकिन शर्मा जी, थोड़ा रुककर बेकर ने आगे कहना शुरू किया—मरने के बाद भी इकलामे ने टोना का पीछा नहीं छोड़ा। रात के वक्त उसकी दुष्ट आत्मा

आती और टोना के साथ संभोग कर चली जाती। बहुत चाहने के बावजूद भी वह उसका विरोध न कर पाती। जब टोना ने मुझे इस संबंध में बतलाया तो मैंने उसका बहम समझा। लेकिन, शर्मा जी! एक रात जब अपनी आँखों से सब कुछ देखा तो भय और आश्चर्य से सारा शरीर रोमांचित हो उठा मेरा।

बेकर ने बतलाया—उस दिन सवेरे से ही बारिश हो रही थी हल्की-हल्की। लेकिन साँझ होते ही हवा के साथ-साथ बारिश भी तेज हो गयी। शायद आधी रात का वक्त था। टोना भीतर सो रही थी और मैं झोपड़ी के बरामदे में चारपायी पर लेटा हुआ था। मच्छरों के कारण नींद नहीं आ रही थी मुझे। अचानक मुझे टोना के कमरे में किसी के जोर-जोर से साँस लेने की आवाज सुनायी दी। ऐसा लगा, मानो कोई भारी-भरकम अजगर लम्बी-लम्बी साँसें ले रहा हो। एकबारगी चौंक पड़ा मैं। तुरन्त उठकर भीतर गया। कमरे में डिबरी की पीली रोशनी फैली हुई थी और उस मद्धिम रोशनी में जो कुछ देखा मैंने—उससे एकबारगी भय और आतंक से भर उठा मेरा मन। स्तब्ध हो गया मैं।

मैंने देखा—जमीन पर टोना बिल्कुल निर्वस्त्र पड़ी हुई थी। पूरी देह नग्न थी। उसके दोनों पैर सम्भोग की मुद्रा में उठे हुए थे। और दोनों हाथ भी आलिंगनबद्ध किये हुए थे। लगता था कि टोना किसी के साथ वासना के सागर में तन्मय होकर डूबी हुई है। मगर अजगर की तरह साँस लेने की आवाज उसकी अपनी नहीं थी। फिर कौन था वह। किसकी साँस की आवाज थी वह—और तभी मैंने देखा—टोना के आलिंगन में बँधी काले रंग के धुएँ जैसी आकृति धीरे-धीरे प्रकट हुई। वह आकृति पारदर्शक और इन्सानी शक्ल की थी। पहचानने में देर न लगी मुझे। वह आकृति इकलामे की थी। कुछ क्षण बाद गायब हो गयी वह। उसके गायब होते ही मैं टोना का नाम ले-लेकर चिल्लाने लगा। मेरी आवाज सुनकर वह आँख मलती हुई उठ बैठी। एक बार उसने मेरी ओर देखा, फिर अपनी नंगी देह की ओर। ऐसा लगा कि वह गहरी बेहोशी से उठी हो। उसके करीब जाकर आहिस्ते से मैंने पूछा—'टोना! क्या हुआ तुम्हें!—सच-सच बतलाओ, क्या हुआ तुम्हें' दोनों हाथों से अपना मुँह ढककर सिसकती हुई बोली—'रोज की तरह इकलामे आया था आज भी। अभी-अभी गया है अपनी मनमानी करके।'

यह सुनकर अवाक् और स्तब्ध रह गया मैं। पत्थर की बुत की तरह कुछ देर तक चुपचाप खड़ा रहा, फिर भारी कदमों से बाहर निकल आया मैं। भला मैं उस पिशाच का कर ही क्या सकता था। विवश था मैं। उस घटना के बाद मेरा मन उस गाँव से उचट गया एकबारगी। टोना के प्रति भी नफरत पैदा हो गयी मेरे मन में। मुझे अपने देश की याद आने लगी। मैं चुपचाप वहाँ से अकेला ही खिसक जाना चाहा। मगर न जाने कैसे टोना को मेरा इरादा मालूम हो गया। वह रोते हुए कहने लगी—अगर मैं उसे अपने साथ नहीं ले चलूँगा तो वह अपने बाप को मेरे भागने का इरादा बतला देगी। यह सुनकर डर गया मैं। इसलिए टोना को भी साथ लाना पड़ गया

मुझे। अब मैं लन्दन वापस जाने की तैयारी कर रहा हूँ। शायद अब फिर भविष्य में आना न होगा मेरा।

मेरे यह पूछने पर कि क्या वह टोना को भी अपने साथ ले जायेगा, तो बेकर ने मुँह बनाकर कहा—यह असंभव है।

लगभग दो महीने बाद।

एक दिन मैं हाजरा रोड से गुजर रहा था। महाराष्ट्र भवन के सामने फुटपाथ पर खड़ी एक भिखारिन जैसी युवती पर मेरी नजर अचानक पड़ी। नाटा कद, काला रंग, गन्दा जिस्म, धूल में सने उलझे बाल, फटी-पुरानी, मैली-कुचैली साड़ी और हाथ में एल्यूमिनियम का पुराना कटोरा। आवारा किस्म के कई लड़के उसे घेरे हुए अश्लील हरकतें कर रहे थे। और वह अपनी भाषा में न जाने क्या बड़बड़ाई जा रही थी।

तत्काल पहचान गया मैं उस भिखारिन को। वह और कोई नहीं, टोना थी। किसी प्रकार का भ्रम नहीं हुआ था मुझे। उसकी वह हालत देखकर एकबारगी आश्चर्य से स्तब्ध रह गया मैं। शायद वह भी मुझे पहचान गयी। मेरी ओर देखकर हँसने लगी पागलों की तरह। मैं उसे 'नारी संरक्षण गृह' में भेजना चाहा। मगर वह इसके लिए तैयार नहीं हुई। कहने की आवश्यकता नहीं, आज भी कभी-कदा मुझे टोना भिखारिनों की टोली में दिखलायी पड़ जाती है, कालीघाट पर।

 OOO

७

नाग मोहिनी विद्या

तंत्र बड़ी ऊँची साधना है। मगर दुःख की बात यह है कि उसके वास्तविक स्वरूप से आज बहुत कम लोग परिचित हैं। तंत्र एक विशिष्ट विज्ञान है। विशिष्ट विज्ञान का मतलब—विशेष ज्ञान, जिसके सिद्धान्तों में कभी किसी काल में परिवर्तन सम्भव नहीं।

'तंत्र विज्ञान' १६ भागों में विभक्त है। प्रत्येक भाग का अपना एक विज्ञान है और प्रत्येक विज्ञान के अन्तर्गत चार-चार विद्याएँ हैं। इस प्रकार तंत्र की कुल ६४ विद्याओं को 'चौसठ योगिनी' कहते हैं। प्रत्येक विद्या एक योगिनी है। उन ६४ विद्याओं में एक विद्या है 'नाग मोहिनी विद्या'। यह तंत्र की अत्यन्त रहस्यमयी विद्या समझी जाती है। तंत्र के काल विज्ञान के अन्तर्गत है—यह नाग मोहिनी विद्या। इस विद्या के जानकार बहुत ही कम लोग हैं और जो हैं भी तो शीघ्र बतलाते नहीं उसके रहस्य को।

कुमार सिंह की **कथा** सुनकर अचानक मुझे अपने जीवन की एक ऐसी विचित्र घटना याद हो आयी, जिसका सम्बन्ध 'नाग मोहिनी विद्या' से था।

साँपों की कुल ३०० जातियाँ हैं, जो सम्पूर्ण विश्व में फैली हुई हैं। मगर अफ्रीका का 'मम्बा' साँप अपनी सभी जातियों से अलग-थलग और सबसे खतरनाक समझा जाता है। 'नाग मोहिनी विद्या' से सम्बन्धित 'सर्पतंत्र' नामक पुस्तक में 'मम्बा' का नाम 'मम्बाक्ष' है। 'सर्पतंत्र' में इस खतरनाक और भयानक 'मम्बाक्ष' तांत्रिक निर्देशन में अपने वश में कर उसके द्वारा शत्रुओं को मारने के लिए सविस्तार विधि बतलायी गयी है। यदि किसी कारणवश शत्रु मम्बाक्ष से बच गया तो वह अपने साधक का ही प्राण हरण कर लेता है। मम्बाक्ष में मंत्र के द्वारा इतनी शक्ति प्राप्त हो जाती है कि वह हजारों मील दूर पर भी स्थित शत्रु की जीवन-लीला समाप्त कर सकता है। बशर्ते कि उसका साधक 'शत्रु' के स्वरूप से परिचित हो।

'नाग मोहिनी विद्या' की एक और पुस्तक है—'कालाग्नि भैरव तंत्र।' इस महत्वपूर्ण तंत्र ग्रन्थ में 'मम्बाक्ष' की ही तरह भारत में पाये जाने वाले एक अति भयंकर सर्प का उल्लेख है। जिसे कालाक्ष कहते हैं। इसका प्रचलित नाम क्या है ? यह बतलाना कठिन है, मगर गेहुँअन, करैत आदि इसी के वंशज माने जाते हैं। मेरी धारणा के अनुसार 'मम्बाक्ष' से 'कालाक्ष' की कोई समानता नहीं। कालाक्ष की आयु एक हजार वर्ष है और जब वह अपनी पूरी आयु भोग लेता है तो उसकी इच्छा और प्राण की शक्ति अति प्रबल

हो जाती है, जिसकी सहायता से वह इच्छानुसार मानव योनि ग्रहण कर सकता है। 'कालाग्नि भैरव तंत्र' में कालाक्ष सर्प को मंत्र-बल से वश में करने, उसे सिद्ध करने तथा उसे सम्मोहित करके उसके द्वारा शत्रुओं का नाश करने की सारी विधि बतलायी गयी है। यह बात तो यह हुई कि कालाक्ष की तांत्रिक साधना अति गोपनीय, अति रहस्यमयी तथा भयंकर है। पल-पल पर और हर कदम पर प्राणों का खतरा बना रहता है। 'नाग मोहिनी विद्या' की पूर्णतः सिद्धि हो जाने पर 'कालाक्ष' भले ही हजारों मील की दूरी पर क्यों न हो—तत्काल साधक के सामने आकर प्रकट हो जाता है। सर्प के रूप में नहीं, बल्कि सुन्दर-आकर्षक मानव के रूप में। उसकी पत्नी और प्रेमिकाएँ भी सुन्दर, कमनीय और आकर्षक युवतियों के रूप में उसके साथ ही प्रकट होती हैं। मगर फिर भी उन सबकी आँखें माणिक की तरह चमकती हैं और स्थिर रहती हैं।

सर्प के कान नहीं होते। उनकी पलकें नहीं झपकतीं। वे आँखों से ही भावों को व्यक्त करते हैं और आँखों से ही देखते और सुनते हैं। कालाक्ष और उनकी प्रेमिकाओं में ये तमाम गुण मानव गुण में प्रकट होने पर भी विद्यमान रहते हैं। सर्पों की आँखों में प्राणशक्ति की अधिकता के कारण भयानक सम्मोहन होता है। यदि उनकी दृष्टि से आपकी दृष्टि मिल जाये तो आपका मन-प्राण ही नहीं, बल्कि आपकी आत्मा भी सम्मोहित हो उठेगी।

अब आइए, मैं आपको वह अविश्वसनीय और रोमांचकारी घटना सुनाऊँ, जिसकी चर्चा ऊपर की है मैंने अभी। सन् १९४६ से सन् १९५४ तक का लम्बा समय, तंत्र के विविध रहस्यमय अंगों पर खोज एवं शोध में ही बीता है। खोज एवं शोध के इसी सिलसिले में मेरी भेंट तंत्र के अनेक मूर्धन्य विद्वानों, मनीषियों, प्रच्छन्न और अप्रच्छन्न रूप से निवास एवं विचरण करने वाले अनेक उच्चकोटि के साधकों और तंत्र योगियों से हुई। उनका-सान्निध्य सम्पर्क और उनका व्यक्त ज्ञान सचमुच मेरे आध्यात्मिक जीवन की अमूल्य सम्पत्ति है। यदि मैं यह कहूँ कि मेरे जीवन का वह समय स्वयं काल था तो अतिशयोक्ति न होगी।

शायद १९५३ का वर्ष था। सर्पतंत्र की 'नाग मोहिनी विद्या' पर ही मैं शोध व खोज-कार्य कर रहा था उन दिनों। उस महान् और रहस्यमयी विद्या से सम्बन्धित कई मूल्यवान और प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकें मुझे योगायोग से मिल गयी थीं। उन दुर्लभ पुस्तकों का अति सूक्ष्मता से अध्ययन कर रहा था मैं। उन्हीं पुस्तकों में एक ऐसी भी पुस्तक थी जो सबसे प्राचीन थी और जिसमें नाग मोहिनी विद्या जानने वाले कई गुप्त मीरासियों के परिचय और साथ ही उनके चित्र भी दिये गये थे। वे चित्र रत्नों की स्याहियों से बने थे। उनमें अभी भी चमक थी। ऐसा लगता था मानो उन्हें चित्रकार ने अभी-अभी बनाया हो। सभी चित्र वास्तव में सजीव प्रतीत हो रहे थे।

पुस्तक के पत्रों को उलटते-पलटते समय बीच-बीच में मैं उन चित्रों को भी ध्यान से देखता जा रहा था। अचानक मेरी नजर एक चित्र पर रुक गयी। वह चित्र एक युवती का था। बड़ा ही सजीव चित्र था वह। चित्रकार ने नारी के सारे सौन्दर्य, सारे

लावण्य और सारे आकर्षण को इकट्ठा कर भर दिया था उस रूपसी के चित्र में। न जाने कब तक निहारता रहा मैं उस चित्र को।

२०-२२ साल से अधिक आयु न थी युवती की। उसके रूप, यौवन और सौन्दर्य का वर्णन करने के लिए मेरे पास न भाव है न शब्द। सबसे विलक्षण थी उसकी आँखें। अजीब-सा आकर्षण और अजीब-सा सम्मोहन था उसकी आँखों में। एक ऐसी ज्योति थी उसमें कि बतला नहीं सकता मैं। माणिक की तरह जैसे दप्-दप् जल रही थीं उसकी आँखें। चाँद जैसे मुख पर एक साथ कई भाव थे। उसके गुलाबी होंठ धीरे-धीरे मुस्करा रहे थे। चम्पई रंग की देह अनावृत थी। सिर्फ एक फिरोजी रंग की रेशमी चादर पतली कमर में बड़े ही सहज भाव से लिपटी हुई थी। खुले हुए पुष्ट स्तनों के बीच में एक दूसरे से लिपटे हुए नाग-नागिन के चित्र अंकित थे, जो अपने आप में काफी भयानक थे।

उस पुस्तक में युवती का जो विवरण दिया गया था—वह संक्षिप्त होते हुए भी भयानक, रहस्यमय और अविश्वसनीय था। युवती के चित्र के नजदीक ही एक मीरासी का भी चित्र था। चित्र के नीचे उसका नाम लिखा था—अब्दुल सकीर। सकीर नाग-मोहिनी विद्या में माहिर था। उसने उस विद्या के जरिये 'कालाक्ष' जाति के एक दीर्घजीवी और भयानक सर्प को वश में कर रखा था। वह युवती और कोई नहीं—उसी सर्प की प्रेमिका थी जिसका नाम था मोहिनी। एक हजार वर्ष तक अपने प्रेमी के साथ 'नागिन' की योनि में रहने के बाद उसने अपनी प्रबल इच्छा-शक्ति से युवती का रूप धारण कर लिया था और उस रूप में वह सकीर के साथ कुछ समय तक रही थी। सकीर ने ही उसका नाम मोहिनी रखा था।

एक अति अविश्वसनीय आश्चर्य। एक हजार साल तक सर्पिणी की काया में रहने के बाद एक नागिन का कायाकल्प। और वह भी एक सुन्दरी युवती के रूप में। सहज ही विश्वास नहीं हो रहा था मुझको। वह युवती जिसकी आँखें बार-बार मुझे और मेरी आत्मा को बरबस सम्मोहित कर रही थीं—अत्यन्त रहस्यमयी लगी मुझे। घण्टों उसके अपरूप रूप को अपलक निहारता ही रह गया मैं।

सकीर के चित्र के नीचे जो सन् और तारीख लिखी थी, वह करीब दो सौ साल पहले की थी। मतलब यह कि सकीर दो सौ साल पहले जिन्दा था और उस नागिन ने भी एक युवती के रूप में इतने ही साल पहले अपना कायाकल्प किया था।

क्या वह नागिन 'मोहिनी' के रूप में अभी भी कहीं होगी? सहसा मेरे मस्तिष्क में यह प्रश्न कौंध-सा गया। और उसी के साथ मेरा मन उसकी कल्पनाओं में एकबारगी डूब गया।

अब यहाँ जन्म लेती है एक अन्तर्कथा। संयोग ही समझना होगा इसे। एक अति आवश्यक कार्य से मुझे देहरादून जाना पड़ा था उन दिनों। लौटते समय ट्रेन में मेरी भेंट एक महाशय से हो गयी। वे महाशय मुसलमान थे और उनका नाम था हमीद मियाँ। हमीद मियाँ एक अव्वल दर्जे के मीरासी थे। सर्पविद्या के इल्म में माहिर थे। जब मैंने बातचीत के सिलसिले में सकीर की चर्चा की तो हमीद मियाँ एकबारगी खामोश से हो

गये। ऐसा लगा मानो वे सकीर के नाम से पूर्वपरिचित हैं। थोड़ी देर बाद अपनी दाढ़ी को बायें हाथ से सहलाते हुए, गम्भीर स्वर में बोले, सकीर को मैं खूब अच्छी तरह जानता हूँ।

आप जानते हैं? आश्चर्य से पूछा मैंने, तब तो आप मोहिनी को भी जानते होंगे!

हमीद मियाँ ने दाढ़ी सहलाते हुए तीखी नजरों से एक बार मेरी ओर देखा और फिर हौले-से बोले, हाँ उस बेपनाह रूप और हुस्न की मलिका नागिन को भी जानता हूँ मैं।

ऐं! आप उसे भी जानते हैं?

हाँ मियाँ, खूब अच्छी तरह से जानता हूँ।

तो क्या वह अभी मोहिनी के रूप में जिन्दा है?

हाँ, जिन्दा है वह। अगर चाहो तो उससे मिल भी सकते हो तुम। हमीद मियाँ ने कुछ ऐसे ढंग से जवाब दिया कि विश्वास करना ही पड़ा मुझे उनकी बातों पर।

आप मुलाकात करा सकते हैं? मैंने प्रश्न किया।

हाँ! हाँ भाई! मुलाकात ही नहीं, बल्कि बातें भी करवा सकता हूँ। हमीद मियाँ ने खखारकर खिड़की के बाहर थूकते हुए कहा।

मगर कब और कैसे? उतावला हो मैंने पूछा।

इसके लिए थोड़ा इन्तजार करना होगा आपको।

लखनऊ आ रहा था। हमीद मियाँ ने अपना सामान समेटा और फिर चाँदी के पानदान से एक गिलौरी निकाल कर मुँह में दबायी और मेरी ओर देखते हुए बोले, 'मेरे ख़त का इन्तजार करना। ख़त में मैं आपको जब और जहाँ बुलाऊँ फौरन हाजिर हो जाना।

ठीक है—मैंने कहा, मैं आपके खत का बेसब्री से इन्तजार करूँगा।

लगभग आठ महीने बाद हमीद मियाँ का ख़त मिला मुझे। उन्होंने मुझे पटियाला बुलाया था। पत्र पढ़ते ही झूम उठा मैं खुशी से। जिस बात की मैं अभी भी कल्पना मात्र ही समझता था, अब उसे अपनी आँखों से देख सकूँगा। आप ही सोचिए, कितनी आश्चर्यजनक बात थी वह।

निश्चित तारीख को मैं पटियाला पहुँच गया। हमीद मियाँ मुझे लेने स्टेशन आये थे। शहर के बाहर उनका आलीशान मकान था। अकेले रहते थे वह अपने हवेलीनुमा मकान में। हमीद मियाँ ने मुझे बतलाया कि साल में एक बार उन्हें साँपों के शहंशाह के सामने पेश होना पड़ता है। उनकी महफिल कभी घने जंगल में तो कभी किसी बीरान घाटी में जमती है। उस वक्त उनको खुश करने के लिए वहाँ चौकी लगानी पड़ती है उन्हें।

चौकी कैसी? मैंने पूछा।

मियाँ, संगीत की बैठक। उसी को चौकी कहते हैं। उसी वक्त मोहिनी भी शहंशाह के सामने उनकी खिदमत में हाजिर होती है। हाँ, एक बात बतला दूँ—पूरे साल मोहिनी नागिन के रूप में रहती है, मगर साल में सिर्फ एक बार उस महफिल के दिन वह औरत की शक्ल अख्तियार करती है। हमीद मियाँ बोले।

साल में वह तारीख और वक्त कब आता है?

कार्तिक की पूर्णिमा को। और वह पूर्णमासी की रात आज से ठीक दसवें दिन है।

पूर्णिमा के दिन हमीद मियाँ के साथ मैं जम्मू पहुँच गया। मैं नहीं जानता कि वे कौन-कौन से रास्ते थे, जिन पर मैं चलता रहा। वे कौन-कौन सी पगडण्डियाँ थीं, जो मेरे पाँव के नीचे आती रहीं। बस इतना याद है कि उस वक्त रात के बारह बजे थे। जहाँ मैं रुका वह एक सुनसान और वीरान घाटी थी जिसके एक ओर काफी दूर तक फैली हुई रंग-बिरंगे फूलों की झाड़ियाँ थीं और हरे-भरे घास के मैदान थे। चारों ओर एक गहरी खामोशी छायी हुयी थी। मैंने देखा—मैदान में घास के ऊपर एक दुधिया सफेद चादर, जो काफी लम्बी-चौड़ी थी, बिछी हुई थी। चादर के एक ओर एक तबलची बैठा हुआ था और उसके आगे तबले की जड़ाऊ जोड़ी पड़ी थी। थोड़ी देर बाद मैंने महसूस किया कि न अधिक चाँदनी थी वहाँ और न तो था रोशनी का कोई खास जरिया, लेकिन उसके बावजूद भी मैदान में चकाचौंध हो रही थी।

बाद में पता चला कि वह इस जमीन की खासियत थी। वह पथरीला इलाका था और उस पत्थर की यह खूबी थी कि वह जरा-सी रोशनी पड़ते ही उससे कई गुना ज्यादा चमकने लगता था। हमीद मियाँ ने बतलाया कि वही पत्थर कभी मुग़ल बादशाहों के ऐसे कमरों में भी लगे थे, जिनमें रोशनी के दाखिल होने का कोई जरिया न होता था, तो अनजान लोग उन कमरों में रोशनी को देखकर हैरान रह जाते थे। यही पत्थर आज भी अनेक मुगलिया इमारतों में लगे हुए हैं और लोग उससे फूटती रोशनी को देखकर हैरान होते हैं कि यह रोशनी आ कहाँ से रही है?

कुछ ही देर बाद मुझे उस रहस्यमयी घाटी के उस रहस्यमय मैदान में कुछ परछाइयाँ-सी सरकती नजर आयीं। मैंने गौर से देखा वे सभी साँप थे, जो उस महफिल में शरीक होने के लिए आ रहे थे। उनके हाजिर होते ही तबलची ने अपना तबला सँभाल लिया और हमीद मियाँ ने गला साफ कर सारंगी को अपने आगे सरका लिया और मुझे इशारा से एक ओर दम साधकर बैठने को कहा।

जब साँपों की मण्डलियाँ इकट्ठी हो गयीं तो हम तीनों ने झुककर उन्हें सलाम किया। उसी वक्त न जाने किधर से ४-५ आदमी हाथों में बीन, सारंगी लिए हुए आ गये और हम लोगों के करीब इत्मीनान से बैठकर बीन और सारंगी बजाने लगे। हमारे सामने अन्दाजन तीन-चार सौ सर्प कुण्डली मारकर बैठे हुए थे। वे सभी विभिन्न प्रकार और विभिन्न रंगों के थे। जब हम लोगों ने सलाम किया तो वे सभी सर्प अपना सिर हिलाकर खास ढंग से झुकने लगे।

उस समय, जबकि गाने-बजाने की महफिल जमी हुयी थी एक काफी लम्बा और मोटा काला अजगर जो अभी तक सबके बीच में बैठा था, आगे आया। मैंने देखा—उसके सिर पर खूनी रंग का एक छोटा-सा साँप बैठा था। अँगूठे के बराबर उसके फन थे और लम्बाई उसकी यही रही होगी करीबन एक बालिश्त। एक नन्हा-सा सुनहरा ताज उसके सिर पर था जिसके किनारों पर छोटे-छोटे जवाहरात लगे हुए थे। हम सब लोगों ने झुककर फिर सलाम किया। खूनी रंग का वह छोटा-सा साँप और कोई नहीं, वह था साँपों का शहंशाह। साँपों का वही बादशाह था। सैकड़ों नागिनों का प्रेमी था। जिसकी आयु कम-से-कम एक हजार वर्ष थी। शहंशाह ने इशारे से हम लोगों का सलाम कबूल किया। उसके बाद हमीद मियाँ एक अजीबो-गरीब अलाप अलापने लगे और उस अलाप का साथ सारंगी, बीन वाले देने लगे। तबलची भी पीछे न रहा साथ देने में। सभी सर्प बड़े अदब से अपनी-अपनी जगह बैठे हुये थे। कोई-कोई किसी खास तान पर झूम जाते और कभी-कभी अपने नजदीक वाले साँप से कुछ कहते।

महफिल कई घण्टे तक चलती रही। इसके बाद हमीद मियाँ ने राग खत्म किया और झुककर अदब से बैठ गये। उस नागिन को देखने के लिए मैं बेताब था, जो इस महफिल में मोहिनी के रूप में हाजिर होने वाली थी।

अचानक महफिल के वातावरण में अजीब-सी सुगन्ध तैर गयी। लगा मानो इत्रों की हजारों शीशियाँ वहाँ एक साथ खुल गयी हों। दुनिया के तमाम फूल बिखर गये हों उस महफिल में और उस सुगन्ध के सैलाब के बीच मैंने देखा—एक दुधिया रंग की नागिन न जाने किधर से बलखाती-इठलाती वहाँ हाजिर हुई। वह अकेली नहीं थी। उसके साथ लाल रंग की कई और नागिनें थीं, जो उसे चारों ओर से अदब के साथ घेरे हुए थीं। उस नागिन का जिस्म जैतून की खाल की तरह पतला था और उस पर सुनहरे रंग के छोटे-छोटे बूटे पड़े थे। बड़ी ही सुन्दर नागिन थी वह। उसने शहंशाह के सामने आकर सलाम किया और फिर अपने मुँह से निकालकर एक हीरे का कीमती टुकड़ा बतौर नजराना पेश किया। मैं नागिन की सारी रहस्यमयी गतिविधि बड़े ही ध्यान से देख रहा था।

सहसा रुपहले रंग की एक रोशनी चमकी और फिर एकबारगी उसी के साथ वह नागिन एक युवती की शक्ल में बदल गयी। वह युवती और कोई नहीं—मोहिनी थी। उस पुरानी हस्तलिखित किताब की मोहिनी। वही रूप, वही सौन्दर्य, वही आकर्षण और वही यौवन। कहीं कोई वैषम्य नहीं था। एक आश्चर्यजनक और सर्वथा अविश्वसनीय सत्य मेरे सामने अब साकार था। कुछ क्षण पहले जिस रक्ताम्बरी नागिन को एक खूबसूरत युवती की शक्ल में तब्दील होते हुए मैंने देखा था, अब उसी को मोहिनी के रूप में शहंशाह के सामने बड़ी अदा से नृत्य करते हुए देख रहा था। सारंगी और बीनों के सम्मोहक और मादक स्वर लहरियों पर मोहिनी के पैर बिजली की तरह थिरक रहे थे। मैं अपलक दम साधे हुए उस अदम्य सुन्दरी नागकन्या को स्वर्गीय नृत्य करते देखता रहा। अजीब समा था। सर्वथा अलौकिक और चमत्कारपूर्ण। नाचते-नाचते मोहिनी बलखाती हुई हमीद मियाँ के करीब आयी और मुस्कराकर उनकी ओर देखा। हमीद मियाँ निहाल हो गये।

उन्होंने धीरे से मेरी ओर इशारा किया। जिसका नतीजा यह हुआ कि वह सुन्दरी मेरी ओर भी थिरकती हुई चली आयी और अपनी जादूभरी और सम्मोहन के सैलाव में डूबी कजरारी आँखों से देखा और साथ ही अपने गुलाबी होंठों से मुस्करा दी। बेहाल हो गया मैं, और न जाने मुझे क्या सूझा कि लपक कर मोहिनी का हाथ थाम लिया। उफ्, ऐसा लगा कि मैंने जलते हुए किसी लोहे के टुकड़े को छू लिया हो। सारा जिस्म सनसना उठा एकबारगी। दूसरे पल मैंने उसका हाथ छोड़ दिया।

पहली बार किसी इन्सान ने मेरे जिस्म को छुआ है। जानते हो इसका नतीजा क्या होगा? मुझे मोहिनी की मोहक आवाज सुनायी दी। मेरी रूह काँप उठी।

क्या होगा इसका नतीजा? मैं काँपते हुए बोला।

मगर मेरे इस प्रश्न का कोई जवाब नहीं मिला उस वक्त। खामोश नजरों से देखता रहा मैं उस नागकन्या को जाते हुए अपने से दूर। अचानक बिजली की चमक जैसी रोशनी एक बार फिर चमकी और मोहिनी उसी के साथ फिर नागिन की शक्ल में बदल गयी और देखते-ही-देखते वह गायब भी हो गयी, उस वीरान और सुनसान घाटी के आगोश में। मोहिनी के चले जाने के बाद वह बड़ा अजगर आगे बढ़ा। उसने सोने के कुछ टुकड़े हम लोगों के सामने फेंकें। उसके फन पर बैठे शहंशाह ने भी हीरे का एक बेशकीमती टुकड़ा फेंका और फिर जैसे आये थे वैसे ही वापस चले गये। अब साँपों का लश्कर हम लोगों की तरफ बढ़ने लगा। सब अपने-अपने मुँह में सोने के छोटे-छोटे टुकड़े और मोती लिए हुए थे। हम लोगों के सामने फेंकने लगे। और जब आखिरी साँप भी सोने का टुकड़ा फेंक कर चला गया तो हमीद मियाँ सामने बिखरे हुए मोतियों और सोने के टुकड़ों को बटोरने लगे। अपना हिस्सा अलग कर बाकी बीन और सारंगी बजाने वालों को बाँट दिया उन्होंने। अब मैं उनके हवेलीनुमा आलीशान मकान और अमीरों जैसी जिन्दगी का राज समझ गया था। उस रात उन्हें २०-२२ हजार रुपये की दौलत हाथ लगी थी।

जहाँ महफिल के साजिन्दों और मीरासियों को दौलत पाने की खुशी थी वहीं मुझे इस बात की खुशी थी कि मैंने एक अपूर्व-अलौकिक दृश्य देखा था। एक अविश्वसनीय चमत्कारपूर्ण सत्य को देखा था। वापस लौटते समय मुझे मोहिनी का बात याद आ गयी। जब मैंने हमीद मियाँ से उसके बारे में पूछा तो वे हँसकर बोले, मियाँ! लगता है वह हूर की परी तुम पर आशिक हो गयी है।

ऐं! क्या कहते हैं आप ?

ठीक ही कह रहा हूँ बरखुरदार! उस हसीना का हाथ थाम लेना कोई मामूली बात नहीं। अगर तुमने उसके प्यार का जवाब प्यार से दिया होता तो सचमुच तुम जैसा तकदीर वाला इन्सान दुनिया में खोजने पर भी नहीं मिलेगा। समझे।

मगर मेरी समझ में कुछ नहीं आया। मुँह बाये बेवकूफों की तरह हमीद मियाँ की ओर देखता रहा।

इस अलौकिक घटना के ठीक एक साल बाद कार्तिक पूर्णिमा की ही रात थी वह। गहरी नींद में मैं सोया था। उसी हालत में सपने में मुझे मोहिनी दिखलायी दी। वही रूप, वही सौन्दर्य और वही मादक यौवन। मेरा सिर उसकी गोद में था और उसकी कोमल अँगुलियाँ मेरे बालों में खेल रही थीं। बीच-बीच में वह झुककर मेरे बालों से खेल रही थी और मेरा चुम्बन भी ले लेती थी।

सचमुच तुम मुझसे प्यार करती हो मोहिनी ? मैंने आहिस्ते से पूछा।

मोहिनी एकबारगी हँस पड़ी। बोली, प्यार न करती तो तुम्हारे पास भला आने की क्या जरूरत थी मुझे यह कह कर मोहिनी एकबारगी लिपट गयी मुझसे। उसके आलिगन से मेरा सारा शरीर सिहर उठा एकबारगी और उत्ताप से डर गया मेरा मन-प्राण। उसी स्थिति में मोहिनी के सीने पर अपना सिर रखते हुए बोला, मैं इन्सान हूँ। मेरी रूह इन्सानी सीमा में बँधी हुयी है, जबकि तुम इन्सान की सीमा से बाहर एक ऐसी हस्ती हो, जो सिर्फ कहानी की दुनिया से ताल्लुक रखती है। सोचो, अगर कभी मैं तुमको याद करूँ तो तुम मेरे पास कैसे आ सकती हो ?

मेरी बात सुनकर मोहिनी काफी देर तक खामोश रही। फिर आहिस्ते से बोली, तुम्हारा कहना ठीक है। मैं एक नागिन हूँ। सिर्फ साल में एक बार ही अपने प्रेमी शहंशाह के सामने इन्सानों के शक्ल में पेश होती हूँ। अगर मैं चाहूँ कि तुम्हारे सामने भी इन्सानी शक्ल में आऊँ तो यह मेरे लिए नामुमकिन है। वैसे मैं तुमसे साल में एक बार जरूर मिलूँगी, पर उसी तरह जैसे आज मिली हूँ। अगर तुम यह चाहते हो कि जब याद करो तुम तब आऊँ तो इसके लिए केवल एक ही रास्ता है वह यह है कि तुमने जिस हाथ से मुझे पकड़ा था, उसी हाथ का चुम्बन मुझको याद करके लोगे तो मैं तुरन्त तुम्हारे सामने आ जाऊँगी। पर याद रखो—इन्सानी शक्ल में नहीं—रुहानी शक्ल में। मुझे विश्वास है कि तुमको मेरी उपस्थिति का एहसास हो जायेगा।

इतना कहकर मोहिनी गायब हो गयी और उसी के साथ मेरी नींद भी खुल गयी। उस समय मेरा कमरा वैसी ही सुगन्धों से भरा था—जैसी सुगन्धों का अनुभव मैंने साँपों की महफिल में किया था। अब हमीद मियाँ की बातों पर यकीन करना पड़ा मुझे। सचमुच वह नागकन्या मुझ पर आशिक हो गयी थी। हर साल कार्तिक पूर्णिमा की रात को वह सपने में आती। मुझे प्यार करती और चली जाती। और उसके जाने के बाद जब मेरी आँखें खुलतीं तो अपने कमरे में महफिल जैसा ही सुगन्ध बिखरा हुआ पाता।

उसे याद कर कभी भी मैंने अपना हाथ चूमने का साहस नहीं किया। मैं जानता था कि ऐसा करने पर निश्चय ही वह बेपनाह रूह में हाजिर हो जायेगी मेरे सामने।

मगर उस साँझ को मैं अपने आपको रोक न सका। मोहिनी की शक्ल को याद किया और अपने हाथ को एकबारगी मैंने चूम लिया। उस समय मुझे इस बात का विश्वास हो गया था कि मोहिनी की रूह जरूर मेरी मदद करेगी और उसकी सहायता से मैं टोंगा के जादू को खत्म कर दूँगा। उसके चंगुल से कुमार सिंह को ही नहीं बल्कि सुरजीत की तड़पती आत्मा को भी मुक्त करा लूँगा।

मेरा अनुमान सच निकला। हाथ चूमते ही कमरे के वातावरण में चिर परिचित सुगन्धों का सैलाब एकबारगी उमड़ पड़ा और उसी के साथ एक साया प्रकट हो गया वहाँ। वह साया बिल्कुल कुहरे की पर्त जैसा था। उस साया को सिर्फ मैं देख सकता था और उसकी गतिविधि को महसूस कर सकता था।

टोंगा ने 'मम्बा' जाति के एक भयानक सर्प को मंत्रबल से सिद्ध किया था। मगर उसकी यह सिद्धि उसी के लिए मौत का कारण बन गयी। सुरजीत को मारकर उसने अपने साथ उसकी आत्मा को रख लिया था। यही उसके लिए घातक सिद्ध हुआ। कुमार सिंह के बच जाने पर वह भयंकर काला नाग अपने साधक पर ही आक्रमण कर बैठा और जान ले ली उसने। अपने ही विद्या से मरने वाले टोंगा की आत्मा अब कुमार सिह को मारने के लिए अवसर खोजने लगी। इसलिए कि उसके मारने पर ही उसकी आत्मा उस विषधर के चंगुल से मुक्त हो सकती थी। और इसके लिए टोंगा की आत्मा बराबर चमगादड़ की शक्ल में कुमार सिंह का पीछा करने लगी। जब मेरे सामने यह तमाम रहस्य अनावृत हुआ तो एकबारगी स्तब्ध रह गया मैं। कुमार सिंह को तो अपने प्रश्नों का जवाब मिल गया था, मगर मेरी मानसिक स्थिति बेकाबू हो चुकी थी उस समय। एक भयानक सर्प के चंगुल में एक भयानक जादूगर की आत्मा थी और उस आत्मा के चंगुल में थी सुरजीत की आत्मा और कुमार सिंह की जिन्दगी—जो किसी भी क्षण मौत में बदल सकती थी।

बड़ी ही विषम स्थिति थी उस समय। कुमार सिह के सिर के ऊपर बराबर चक्कर लगाने लगा था फिर वह रहस्यमय चमगादड़। वातावरण फिर बोझिल हो उठा। कुमार सिंह की हालत बराबर गम्भीर होती जा रही थी। उसकी आँखें उलट गयी थीं और शरीर बुरी तरह काँप रहा था। मुँह से भी झाग निकलने लगा था अब। मैं परेशान था।

अचानक एक चमत्कार घटित हो गया। चीं-चीं-चीं करता हुआ चमगादड़ एक ओर गिर पड़ा और काँपने लगा और कुछ ही क्षणों के बाद उसने दम तोड़ दिया। शायद टोंगा की आत्मा साँप के चंगुल से निकल गयी थी। मगर उसी के साथ मैंने देखा कि सुरजीत और टोंगा की रूहों की छायाएँ अब एक साथ कुमार सिंह को परेशान करने लगीं। उसी समय न जाने किस अज्ञात प्रेरणा से मैंने मोहिनी को प्यार से फिर याद किया और अपने हाथ को चूम लिया। नतीजा काफी भयंकर हुआ। करुण क्रन्दन और चीखों से मेरा कमरा गूँज उठा। मोहिनी ने दोनों की रूहों को अपने कब्जे में कर लिया था और बुरी तरह उनकी पिटायी कर रही थी। अन्त में टोंगा की गिरफ्त से सुरजीत की रूह निकल गयी और निकलने के बाद शराब शराब चिल्लाने लगी। मैं समझ गया। उसकी आत्मा शराब की प्यासी थी। जब बाजार से मँगाकर शराब दी गयी तो पीने के बाद सिसकती हुई बोली, कुमार सिंह को मुझसे अलग मत कीजिए। मैं उसे कभी भी नहीं छोड़ सकती। उसे मैं प्यार करती हूँ। एक पल भी उसके बिना मैं जीवित नहीं रह सकती।

मोहिनी के संकेत पर मैंने मरे हुए चमगादड़ को उठाकर जलती हुई आग में डाल दिया। उसी के साथ वातावरण में एक चीख गूँजी और बिखर गयी। टोंगा की रूह जल चुकी थी। अब थी सुरजीत की समस्या। उसकी रूह को कुमार सिंह से अलग करना जरूरी था। मगर इसके लिए मुझे कुछ करना नहीं पड़ा। जाते समय मोहिनी उसे अपने साथ ले गयी। क्यों ले गयी? इसे मैं समझ न सका।

धीरे-धीरे वातावरण पहले जैसा शान्त हो गया। और उसी के साथ कुमार सिंह भी चैतन्य हो उठा। ऐसा लगा मानो वह गहरी नींद से जगा हो। उसकी आँखें लाल थी और चेहरा तमतमाया हुआ था।

एक प्रकार से कहानी समाप्त हो जाती है। जाते समय कुमार सिंह ने यह जानना चाहा कि वह खूबसूरत युवती कौन थी जिसकी सहायता से उसे पनाह मिली थी? राहत मिली और मिला छुटकारा टोंगा की रूह से?

मैंने हँसकर टाल दिया। मोहिनी का परिचय देना आवश्यक नहीं समझा। कहने की जरूरत नहीं, वह नागकन्या लगातार कई वर्षों तक हर पूर्णिमा की रात को सपने में मुझसे मिलती रही। उसने मुझे बहुत-सी ऐसी रहस्यमयी बातें बतलायीं जो भौतिक स्तर पर अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। उन्हीं रहस्यमयी बातों के सिलसिले में उसने मुझे यह बतलाया कि नागलोक का धरती से घनिष्ठ सम्बन्ध है। एकमात्र सर्प ही ऐसा प्राणी है जो मनुष्य के बिल्कुल निकट है। सभी प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ प्राणी है सर्प। प्रकृति के नियम के अनुसार ८४ लाख योनियों को भोगने के बाद आत्मा को मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ योनि प्राप्त होती है। सर्प योनि एक अतिरिक्त योनि है। यह ८४ लाख योनियों में नहीं है। अतिरिक्त योनि इसलिए है कि सर्वश्रेष्ठ आत्मायें उच्चकोटि की आत्माएँ अथवा योगात्मायें जो संसार और शरीर से मुक्त हो चुकी हैं जिन्हें अब संसार में लौटकर शरीर धारण करना नहीं है मगर किसी कारणवश उन्हें आगे के लोक-लोकान्तरों में जाने के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ रही है—ऐसी आत्मायें प्रायः अपनी प्रतीक्षा का समय सर्प योनि में ही व्यतीत करती है।

इस प्रकार सर्प योनि में पड़े हुए अनेक योगियों और उच्चकोटि की आत्माओं का परिचय मुझे मोहिनी से प्राप्त हुआ। कहने की जरूरत नहीं—मैं अब तक कई ऐसी आत्माओं और योगियों से मिल चुका हूँ—जो सर्प योनि को प्राप्त कर आगे बढ़ने के लिए सैकड़ों वर्ष से इस धरती पर प्रतीक्षा कर रहे हैं।

८

क्या वह डायन थी ?

सन् १९८०, जनवरी का महीना। सुबह के छः बजे का समय। हावड़ा स्टेशन, हिमगिरि एक्सप्रेस प्लेटफार्म पर खड़ी थी। उसके छूटने का समय हो गया था।

मेरे एक मारवाड़ी मित्र हैं। नाम है मन्टूराम। उन्हीं के अनुरोध पर मैं कलकत्ता आया था। एक सप्ताह बाद लौट रहा था उस दिन। जब मैं मन्टूराम जी से प्लेटफार्म पर खड़ा बातें कर रहा था, उसी समय मेरी नजर एक औरत पर पड़ी। एकबारगी चौंक पड़ा मैं। औरत मुझे जानी-पहचानी-सी लगी। मगर उसे पहली बार कब और कहाँ देखा था—यही मेरी समझ में नहीं आ रहा था।

औरत की उम्र पचास से अधिक ही थी। मगर वैसे देखने में वह पैंतीस-चालीस साल से ज्यादा नहीं लगती थी। बाल अभी भी घने और स्याह थे। चेहरे पर चमक थी। शरीर गठा हुआ था। गोरे रंग और मांसल देह पर क्रीम कलर की साड़ी और ब्लाउज आकर्षक लग रहा था। कमर में लपेटकर कीमती कश्मीरी शाल भी ओढ़े थी वह। हाथ में एक चमड़े की अटैची भी थी। बुक स्टाल पर खड़ी किसी पत्रिका के पन्ने उलट-पुलट रही थी और उसी बीच कभी-कभी उचटती हुई नजरों से वह ट्रेन की ओर भी देख लिया करती थी। शायद हिमगिरि से ही वह भी यात्रा करने वाली थी, ऐसा लगा मुझे।

संयोग ही कहा जायेगा इसे। मेरे सामने वाली सीट उसी की थी। जब अपने कम्पार्टमेन्ट में घुसा, तो देखा, वह अपनी सीट पर बैठी अखबार पढ़ रही थी और जब गाड़ी चली, तो उसने अखबार से हटकर एक बार मेरी ओर देखा और फिर शाल को ठीक करती हुई मुस्कराकर बोली, 'आपने मुझे पहचाना ?'

'पहचाना तो अवश्य, मगर आपको कब और कहाँ देखा था ?' यह अभी समझ में नहीं आया मेरे।' मैंने भी मुस्कराकर जवाब दिया।

मेरी बात सुनकर एकबारगी खिलखिलाकर हँस पड़ी और फिर फैले हुए अखबार को समेटते हुए बोली—'मैं वही डायन हूँ—जिसे गाँव वालों ने मार-मार कर अधमरा कर दिया था और गाँव के बाहर कर दिया था।'

एकाएक मस्तिष्क में कुछ कौंध-सा गया और पच्चीस साल पहले की सारी घटनाएँ एक-एक करके चलचित्र की भाँति उभर आयीं मेरे मानस पटल पर।

क्या तुम पाखी हो ?

हाँ, मैं पाखी ही हूँ। आसाम की पाखी, जिस पर आपने दया की थी और जिसने उस दया के बदले आपके लिए भविष्यवाणी भी की थी। फिर थोड़ा रुककर पाखी आगे बोली, क्या वह भविष्यवाणी सत्य हुई, जो मैंने आपके लिए की थी ?

हाँ बिल्कुल सत्य घटीं तुम्हारी सभी भविष्यवाणियाँ। मगर एक अभी बाकी है।

कौन-सी ?

मौत की भविष्यवाणी।

पाखी पहले हँसी फिर गम्भीर हो गयी। बोली—वह भी घट जायेगी। समय तो आने दीजिए।

आँधी-तूफान की तरह भागती हुई हिमगिरि की गति मन्द पड़ने लगी थी। शायद आसनसोल आने वाला था। पच्चीस वर्ष पहले भी पाखी मेरे लिए एक रहस्य थी और आज भी रहस्य है। पहली बार जिस रूप में उसे देखा था उसमें और आज के रूप और वेश-भूषा में जमीन-आसमान का फरक था। इतने लम्बे अरसे में इतना भारी परिवर्तन कैसे हो गया पाखी के व्यक्तित्व, वेश-भूषा और उसके जीवन में।

शायद मेरे मनोभाव को समझ गयी पाखी। बोली—पच्चीस वर्ष के बाद मिले हैं हम लोग। मेरे रूप में, मेरी वेश-भूषा मे और मेरे व्यक्तित्व में परिवर्तन देखकर अवश्य आपको आश्चर्य हुआ होगा। आप सोचते होगे कि यह सब कैसे हो गया ?

हाँ, यही सब सोच रहा हूँ मैं और यह भी सोच रहा हूँ कि एक जादूगरनी के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। फिर बात बदलकर पूछा—कहाँ तक जाना है तुम्हें ?

पठानकोट।

वहीं रहती हो क्या ?

नहीं। पठानकोट से चम्बा जाना है मुझे। वहाँ थोड़े दिन रुककर लद्दाख चली जाऊँगी। वहाँ एक लामा तांत्रिक हैं। बड़े ही सिद्ध पुरुष हैं। वे मुझे अपने साथ तिब्बत ले जाने वाले है।'

पच्चीस साल के दीर्घ अन्तराल के बाद भी पाखी को भुला न सका मैं। भुला भी कैसे सकता था उस भयंकर जादूगरनी को।

गर्मियो के दिन थे। काफी तेज धूप थी। पुरातत्व विभाग की ओर से मैं अपने सहायक के साथ डिब्रूगढ़ से शिलांग जा रहा था। जीप महेन्द्र चला रहा था। मैं उसकी बगल में बैठा बड़े इत्मीनान से बर्मी सिगार पी रहा था। लगातार तीन घण्टे की यात्रा करने के पश्चात हम लोग घनघोर जंगलों को पारकर सुनसान घाटियों में पहुँच गये थे। लगभग चार-पाँच मील चलने के बाद सामने कुछ झोपड़े दिखलायी दिये। महेन्द्र बोला—कोई गाँव है शायद। चलो, थोड़ा आराम कर आगे चला जायेगा। महेन्द्र के इस विचार से सहमत हो गया मैं। मगर गाँव में घुसते ही हम लोगों ने एक अद्भुत दृश्य देखा। उस प्रचण्ड धूप में एक युवती—जिसकी उम्र पच्चीस-तीस के लगभग होगी—बहुत ही कष्ट के साथ गाँव के धूलभरे रास्ते पर चल रही थी। रंग गोरा था। देह से लिपटी हुई मैली-

कुचैली साड़ी चिथड़े-चिथड़े हो गयी थी जिनमें से अंग-प्रत्यंग झाँक रहा था। सिर खुला हुआ था। धूल से सने हुए बिखरे बाल और पीछे की ओर दोनों हाथ रस्सियों से बँधे हुए थे। उसका फटा हुआ आँचल बार-बार छाती से गिर-गिर पड़ता था। हाथ बँधे रहने के कारण बहुत कष्ट से वह अपने गिरे हुए आँचल को सँभाल पाती थी। चेहरा बुझा अवश्य था, मगर आँखों में तेज था—जिसने मुझे आकर्षित कर लिया। वैसी उज्ज्वल और तेजपूर्ण आँखें बहुत कम देखने को मिलती हैं। लेकिन उसकी आँखों में यातना के भाव स्पष्ट अंकित थे। वह वेदनापूर्ण दृष्टि से अपने चारों ओर के लोगों को देखती और फिर लम्बी साँस लेने लगती। उसके साथ लगभग ४०-५० आदमियों की भीड़ भी चल रही थी। दरवेश के शक्ल में एक व्यक्ति नाचता-कूदता उस भीड़ का नेतृत्व कर रहा था।

भीड़ जब बिल्कुल करीब आ गयी, तो महेन्द्र ने जीप को एक तरफ कर लिया और गति भी काफी कम कर दी। मगर थोड़ा आगे बढ़ने पर जीप खड़ी कर देनी पड़ी।

भीड़ में जो लोग उस स्त्री के करीब थे—वे लगभग नंगे ही थे। लंगोटी के अलावा उनके शरीर पर और कोई अन्य वस्त्र नहीं था। वे अत्यन्त उत्साह के साथ अविश्रान्त भाव से ढोलक बजा रहे थे और साथ ही नाच-कूद भी रहे थे। जब भीड़ के साथ वह स्त्री मेरे करीब से गुजरी तो देखा—उसकी हालत उस समय काफी दयनीय थी। पूरा शरीर गर्द से अटा हुआ था। वह जैसे अपने बँधे हुए हाथों का भार वहन नहीं कर पा रही थी। उसकी आँखों से झाँकने वाली निराशा और झलकने वाली उदासी के गहरे भाव को जीवन में कभी भी न भूल सकूँगा मैं। उसके बँधे हुए हाथों को देखकर और उसकी यंत्रणा का अनुभव कर मैं एकबारगी गम्भीर हो उठा। चित्त खिन्न हो गया मेरा। उस गाँव में विश्राम करने का विचार त्याग दिया मैंने।

मेरे साथ एक चपरासी भी था, जिसका नाम था फूलसिंह। वह डिब्रूगढ़ का रहने वाला था। महेन्द्र ने जब उससे यह पूछा, 'भाई, क्या तमाशा है?' तो उसने बतलाया कि यह औरत डायन है। कब्र में दफनाये गये बच्चों की लाशों को निकालकर उन्हें खाती है। गाँव वालों का कोई अनिष्ट न कर जाये, इसी खयाल से इसे इस प्रकार गाँव के बाहर निकाला जा रहा है। इसके पहले इस अंचल में डायनों को जो सजा दी गयी है, उसे देखते हुए यह सजा काफी कम है। फूलसिंह की बात विश्वसनीय थी। कुछ वर्ष पहले अखबारों में इसी जिले का एक विवरण प्रकाशित हुआ था। जिसमें ग्रामवासियों ने एक स्त्री को डायन समझकर जिन्दा ही आग में जला दिया था। वह विवरण काफी लोमहर्षक था। भीड़ जब रास्ते से हट गयी तो महेन्द्र ने गाड़ी स्टार्ट की। लगभग एक मील जाने के बाद एक पहाड़ी नदी मिली। जिसकी चौड़ाई तो कम थी, मगर धारा काफी तेज थी। महेन्द्र गाड़ी रोकते हुए बोला, 'अब! अब क्या होगा?' फूलसिंह ने बतलाया कि नदी पार करने के लिए ७-८ मील का चक्कर लगाना पड़ेगा और आगे रास्ता भी जंगली है। फिर नदी पार कर रात के वक्त जायेंगे कहाँ? यहाँ से करीब १५-२० मील तक न कोई गाँव है और न ही ठहरने की कोई जगह। थोड़ा रुककर फूलसिंह बोला, 'साब! यहाँ एक डाक बँगला है। क्यों न हम सब आज की रात वहीं ठहरें।'

करीब एक फर्लांग पर नदी के किनारे ही डाक बँगला था। कभी किसी समय अंग्रेजों ने बनवाया था अपने लिए। काफी पुराना था डाक बँगला। उसकी दशा दयनीय थी उस समय। तीन-चार कमरे अवश्य थे मगर उनकी भी हालत शोचनीय ही थी। खैर, फूलसिंह ने एक कमरे को साफ किया। हम लोगों का बिस्तर लगाया और फिर खाना बनाने में जुट गया।

दिन ढल चुका था। ठण्डी हवा बहने लगी थी। मैं और महेन्द्र दोनों काफी थक गये थे। थोड़ी देर बाद हम लोग नदी में नहाये और फिर खाना खाकर अपने-अपने बिस्तर पर लेट गये। घड़ी की ओर देखा—आठ पैंतीस। मगर रात काफी हो गयी थी। चारों ओर गहरा सन्नाटा छा गया था। महेन्द्र तो बिस्तर पर लेटते ही सो गया था। लेकिन मुझे नींद न जाने क्यों नहीं आ रही थी। मैं उसी स्त्री के बारे में सोच रहा था। उसकी झील जैसी गहरी, तेजपूर्ण और रहस्यमयी आँखें बार-बार मेरे सामने थिरक उठती थीं। उसी समय सहसा अँधेरे में न जाने कैसी आवाज सुनाई दी—आवाज ढलान की ओर से आयी थी—जहाँ फूलसिंह ने खाना पकाया था। मैंने उठकर टार्च जलाई और उधर रोशनी फेंकी। विस्मय, कौतूहल और आश्चर्य के मिले-जुले भाव से भर गया मन। जिस औरत के बारे में अभी सोच रहा था मैं—वही बैठी हुयी थी दालान में सिकुड़ी-सिमटी-सी। टार्च की रोशनी ने जैसे उसे अभिभूत कर दिया था। भागने की चेष्टा उसने नहीं की। विस्मित-सी अपने स्थान पर पूर्ववत् बैठी रही। जब मैं उसके पास गया, तो देखा वह हम सब लोगों की थाली में जो जूठन बचा था उन्हें इकट्ठा कर खाने वाली थी। मगर मुझे देखकर उठकर खड़ी हो गयी और डर से काँपने लगी वह। उस समय उस स्त्री की हालत और दयनीय लगी मुझे। देखा बदन पर काफी चोटें लगी थीं। सिर भी कई जगह फट गया था जिससे खून बहकर बालों से चिपट कर सूख चुका था। चेहरा भी काफी सूजा हुआ था। मैं और करीब जाकर बोला, घबराओ नहीं! हम लोग तुम्हें किसी बात का नुकसान नहीं पहुँचायेंगे। तुमको भूख लगी है न? चली आओ मेरे साथ। खाना भीतर रखा है, लेकर खा लो।

वह पहले हिचकिचायी फिर थोड़ी सहमी भी—मगर चारों ओर देखकर मेरे पीछे चली आयी कमरे में। इसी बीच फूलसिंह भी उठ गया था। उसने जब उस स्त्री को देखा तो घृणा से मुँह फेर लिया। फिर मुझसे कहा—'साब! आप तो जानते हैं कि यह औरत डायन है। भयंकर जादूगरनी है। गाँव से निकाली गयी है। इसे खाना मत खिलाइए, वर्ना किसी मुसीबत में पड़ जायेंगे आप।'

मगर मैंने फूलसिंह की इन बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। जब वह स्त्री खाना खा चुकी, तो मैंने उससे कई प्रश्न पूछे। उसका नाम सोना पाखी था। रहने वाली आसाम की थी। एक महीने पहले उस गाँव में रहने के विचार से आयी थी वह। डायन समझकर उसकी जो दुर्गति की गयी थी और जो यातना दी गयी थी और गाँव के बाहर निकाला गया था, वे सारी बातें सच थीं।

अन्त में बड़े ही कातर स्वर में बोली पाखी, बहुत मारा है। बहुत यातना दी है उन लोगों ने। हाड़-हाड़ दर्द कर रहा है। चार-पाँच दिनों से भूखी-प्यासी थी। रोटी का एक टुकड़ा भी किसी ने न दिया खाने को।

बातचीत के सिलसिले में मैंने पाखी की आँखों में अद्‌भुत विशिष्टता देखी। किसी तरुणी की आँखों में जो चमक और मधुरता रहती है—उससे जरा भी कम उस युवती की आँखों में न थी। इसे मैंने प्रकृति की एक विलक्षण बात समझी। पाखी डायन है या नहीं इस बारे में कोई निर्णय न कर सका। लेकिन उसकी आँखों से निकलती हुई विलक्षण ज्योति को देखकर मैं अन्दर ही अन्दर एकबारगी काँप गया।

क्या मैं तुमसे एक बात पूछ सकता हूँ? मैंने कहा।

पूछिए! पाखी ने जवाब दिया।

क्या तुम सचमुच में डायन हो? तुम्हें लोग जादूगरनी कहते हैं, क्या यह बात सच है?

मेरी बात सुनकर पाखी की रहस्यमयी आँखें एकबारगी दप् से जल उठीं। चेहरा भी थोड़ा कठोर हो गया उसका और उसी के साथ एक अमानवीय भाव भी उभर आया वहाँ।

सहम गया मैं। तभी महेन्द्र भी नींद से उठकर चला आया वहाँ। मुझको पाखी से बातें करते हुए देखकर आश्चर्य हुआ उसे। मगर कुछ बोला नहीं।

थोड़ी देर शून्य में निहारने के बाद पाखी बोली—हाँ साब! मैं डायन हूँ। जादूगरनी भी हूँ मगर पहले थी नहीं, बनायी गयी हूँ। फिर उसने एक लम्बी साँस ली।

'मतलब समझ में नहीं आया पाखी! जरा साफ-साफ बताओ। पाखी इस बार हँस पड़ी। फिर बोली—क्या करेंगे कहानी सुनकर मेरी। बड़ी ही दर्दभरी जिन्दगी है मेरी। कहानी भी उतनी ही दर्दभरी है। फिर सिसकने लगी वह। समझते देर न लगी। निश्चय ही कोई रहस्यमयी मगर दु:खभरी जिन्दगी जी रही थी पाखी। आगे कुरेदना उचित नहीं समझा मैंने। मौन साध गया। मगर रहा न गया। बोला—आज रात यहीं आराम करो पाखी, कल बातें होंगी।

आराम तो करूँ पर गाँव वालों को मालूम हो गया कि मैं रात को यहाँ खाना खायी थी तो शायद वे लोग और दुर्गति करेंगे मेरी। हो सकता है मार भी डालें जान से इस बार।

नहीं! अब तुमको कोई मारेगा-वारेगा नहीं। कोई भी दुर्गति नहीं करेगा तुम्हारी। मैं समझ लूँगा। तुम आराम करो।

पाखी ने मेरे यहाँ खाना खाया और रात में रही भी—जब यह समाचार गाँव वालों को मालूम हुआ, तो सचमुच काफी हंगामा किया लोगों ने, लेकिन जब यह मालूम हुआ कि हम लोग सरकारी अफसर हैं, तो शान्त हो गये सब।

दूसरे दिन मैं शिलांग पहुँचा। पाखी को भी साथ ले लिया था। वहाँ उसका इलाज कराया मैंने। २-३ दिनों में पूर्ण स्वस्थ हो गयी वह। पहनने के लिए कुछ साड़ियाँ भी खरीद कर दे दी मैंने। पाखी प्रसन्न हो गयी। मुरझाया और उदास चेहरा खिल उठा गुलाब के फूल की तरह उसका। महेन्द्र ने पूछा—'एक डायन के लिए इतना सब तुम क्यों कर रहे हो शर्मा! क्या लाभ है तुम्हें?'

'यह बात मेरी भी समझ में नहीं आ रही है महेन्द्र कि मैं इसकी क्यों इतनी सहायता कर रहा हूँ? क्या फायदा है मुझे? कौन-सा स्वार्थ है मेरा?

कभी-कभी अकेले में भी सोचता हूँ—मेरे मन में पाखी के लिए इतनी सहानुभूति, इतनी दया और इतनी करुणा क्यों है? कौन-सा अदृश्य आकर्षण है उसमें, जिसके वशीभूत होकर मेरी आत्मा इतनी स्नेहिल हो उठी है उस अनजानी तरुणी के प्रति।

सरकारी काम से मुझे शिलांग में लगभग एक महीने ठहरना पड़ा। मगर इस बीच दो-एक ऐसी अद्भुत और अविश्वसनीय घटनायें घटीं जिससे भयभीत हो उठा मेरा मन और पाखी के प्रति सतर्क हो गया मैं। वह डायन है, वह जादूगरनी है—इसमें जरा-सा भी सन्देह नहीं रह गया मेरे मन में।

मेरे कैम्प से थोड़ी ही दूर पर बड़ा भारी कब्रिस्तान था। जिसके चारों ओर घने पेड़ लगे हुए थे। ३-४ दिनों से लगातार बारिश हो रही थी। महेन्द्र, फूलसिंह को लेकर सरकारी काम से डिब्रूगढ़ गया हुआ था। मैं अकेला था। मौसम खराब होने के कारण उस दिन जल्दी ही खाना खाकर लेट गया मैं बिस्तर पर। बहुत ही जल्द नींद आ गयी मुझे। रात का न जाने कौन-सा वक्त था जबकि अचानक गहरी नींद से एकाएक जाग उठा मैं। कैम्प में गहरी खामोशी छायी हुयी थी और जागने पर उस गहरी खामोशी में मुझे एक अजीब-सी अनुभूति हुयी। कैम्प के दूसरी ओर खाट पर पाखी भी सोयी हुई थी। उसे आवाज देकर पुकारा। मगर न वह बोली और न तो उठी ही। मैंने टार्च जलाई और रोशनी में देखा कि पाखी वहाँ नहीं है। आश्चर्य हुआ मुझे। इतनी रात को कहाँ गयी वह? न जाने किस प्रेरणा से हाथ में टार्च लिए कैम्प के बाहर निकल आया मैं। बादलों से अटकर काला पड़ गया था आकाश। हल्की बारिश हो रही थी उस समय। वातावरण में घोर निस्तब्धता छायी हुयी थी। चारों ओर साँय-साँय कर रहा था। कुछ देर तक खड़ा रहा मैं। अचानक कई लोगों के खिलखिला कर हँसने की आवाज सुनायी दी मुझे। सतर्क हो गया मैं। आवाज कब्रिस्तान की ओर से आयी थी। धीरे-धीरे चलकर कब्रिस्तान के करीब जब मैं पहुँचा, तो वहाँ का दृश्य देखकर एकबारगी स्तब्ध रह गया मैं। शरीर का सारा खून जम गया बर्फ की तरह। रोमांचिक हो उठा मैं। भय और आतंक से भर ग्या मन। कब्रिस्तान की एक पक्की कब्र पर पाखी बैठी हुयी थी और उसके चारों ओर खड़े थे कई नर-कंकाल। वे नर-कंकाल बिल्कुल जीवित व्यक्तियों की तरह हरकतें कर रहे थे। कभी ताली पीट-पीटकर नाचते-कूदते थे, तो कभी झूम-झूम कर गाते और हँसते थे। कभी-कभी बीच में पाखी भी उन सबके किसी भाव पर खिलखिलाकर हँस पड़ती थी।

भय और आतंक से मेरा बुरा हाल हो रहा था। अधिक देर तक देखा न गया मुझसे वह भयानक और वीभत्स दृश्य। दौड़कर कैम्प में वापस आया और हाँफते हुए बिस्तर पर गिर पड़ा। पाखी कब लौटकर आयी पता न चला।

रात को जो कुछ देखा था मैंने उसे न महेन्द्र से बतलाया और न तो उसके सम्बन्ध में पाखी से ही कुछ पूछा। मैं हमेशा भयभीत रहने लगा था अब। एक दिन पाखी ने मेरे जीवन के भूतकाल से सम्बन्धित बहुत सारी बातें बतलायी जो अक्षरशः

सिद्ध थीं। उनकी सत्यता में जरा-सा भी भ्रम न था। इसी प्रकार उसने मेरे लिए कुछ महत्वपूर्ण भविष्यवाणियाँ भी कीं। यहाँ तक कि मेरी मृत्यु का वर्ष, महीना और मृत्यु की तिथि भी बतला दी उसने। इससे में प्रभावित अवश्य हुआ। दिलचस्पी भी अधिक हो गयी पाखी के प्रति। लेकिन फिर भी भय और आतंक के भाव में कमी नहीं आयी।

एक दिन साँझ के समय पाखी 'डबल हार्स ह्विस्की' की बोतल लेकर आयी। चौंक पड़ा मैं। इतनी कीमती अंग्रेजी शराब की बोतल कहाँ मिली पाखी को। शिलांग में सिर्फ एक दुकान थी अंग्रेजी शराब की और वह भी मामूली-सी, जहाँ इतनी कीमती शराब का मिलना बिल्कुल असम्भव था। फिर कहाँ से लायी इसे पाखी? जब इस सम्बन्ध में पूछा तो पाखी सिर्फ मुस्करा कर रह गयी। बड़ी ही रहस्यमयी मुस्कराहट थी वह। समझ में न आया कुछ।

बोतल और दो गिलास मेज पर रखकर सामने बैठ गयी पाखी, फिर हँसकर बोली—साब! बुरा मत मानिएगा। कभी-कदा पी लेती हूँ। आज मन कर गया। सोचा, आज आपके साथ बैठकर पीऊँगी। इतना कहकर दोनों गिलासों में उसने मदिरा ढाली। एक मुझे थमा दिया और दूसरा अपने लिए ले लिया।

गिलास को पकड़ते हुए फिर पूछा—शिलांग में तो यह शराब मिलती नहीं! आखिर लायी कहाँ से इसे तुम?

कहीं मिलती तो है न। जहाँ मिलती है वहीं से लायी हूँ। पाखी ने हँसकर जवाब दिया और फिर एक ही साँस में गट्-गट् करके पूरी मदिरा पी गयी वह। थोड़ा रुककर दूसरा गिलास भरा उसने और उसे भी पी गयी उसी तरह। मैं भौचक्का-सा देखता रहा। शराब तेज थी। आँखें लाल हो उठीं। चेहरा भी हल्का गुलाबी हो उठा उसका। मेरी भी हालत विचित्र थी। चित्त अवश हो रहा था। मन डूबता-सा लगा। बाद में ऐसा लगने लगा कि किसी भी क्षण चेतनाशून्य हो जाऊँगा मैं। हुआ भी ऐसा ही। न जाने कब और किस क्षण गिर पड़ा मैं बिस्तर पर। खयाल ही नहीं रहा मुझे। 'डबल हार्स' मदिरा बहुत पी थी मैंने मगर कभी ऐसी स्थिति नहीं हुयी थी मेरी। आखिर बात क्या थी? समझ में न आयी।

उस स्थिति में और उस अवस्था में मैंने अपने आपको एक अद्‌भुत वातावरण में पाया। सबसे पहले मुझे एक गाँव दिखलायी दिया। बंगाल और आसाम के सीमान्त प्रदेश का था वह कोई गाँव। १५-२० झोपड़े। केलों के कई बाग। गाँव से थोड़ी दूर पर बहती हुई कोई पहाड़ी नदी। जिसकी चौड़ाई तो कम थी, मगर धारा तीव्र थी। एक पक्का घाट था—जहाँ मछली मारने वाली कई नावें बँधी हुई थीं। घाट से थोड़ा हटकर जामुन और आँवले के तीन-चार पेड़ थे। मैंने देखा उन्हीं पेड़ों के झुरमुट में गुमसुम एक युवक बैठा था। वह बड़ा ही सुन्दर युवक था। देखने में अत्यन्त भोला। उम्र यही रही होगी २०-२२ साल के आस-पास। गोरा रंग, सुगठित देह, लम्बा कद, घने घुँघराले बाल, बड़ी-बड़ी आँखें, सब मिलाकर अत्यधिक आकर्षक व्यक्तित्व था उस युवक का। चूड़ीदार पायजामा और सिल्क का कुर्ता पहने था वह। कभी-कभी

सिर उठा कर सामने की ओर देख लिया करता था। उसके चेहरे के भाव और आँखों की भाषा से ऐसा लगता था कि वह युवक किसी का बेसब्री से इन्तजार कर रहा है।

अनुमान सत्य था। युवक सचमुच ही इन्तजार कर रहा था। और जिसका इन्तजार कर रहा था—वह थी एक किशोरी लड़की। साँझ की स्याह कालिमा फैल चुकी थी। चारों तरफ वातावरण में गहन नीरवता छायी हुई थी। नदी की ओर से झाड़ियों के दर्द भरे गीतों के करुण स्वर आकर हवा की लहरियों में तैर रहे थे। कुछ गीतों को सुनकर चिन्तित हो उठता था वह युवक। अचानक उसके चेहरे पर एक चमक थिरक उठी। अपनी जगह से उठकर खड़ा हो गया वह और थोड़ा आगे बढ़ आया। मैंने देखा कि एक लड़की जिसकी उम्र १४-१५ साल से अधिक नहीं थी—जल्दी-जल्दी चलकर उस युवक के पास पहुँची। लड़की भी काफी सुन्दर और आकर्षक थी। उसके गोरे रंग पर और सुडौल देह पर चम्पई रंग का कुर्ता और धानी रंग का चूड़ीदार पायजामा बड़ा अच्छा लग रहा था। पीठ पर नागिन की तरह बालों की दो चोटियाँ झूल रही थीं। वह हाँफ रही थी। शायद बहुत दूर से चलकर आयी थी। उसका उभरा हुआ सीना तेजी से ऊपर-नीचे हो रहा था। करीब पहुँचते ही युवक ने दोनों हाथों को फैलाकर उस किशोरी को अपने आगोश में ले लिया और चूमने लगा उसके गुलाबी गालों को। लड़की काफी देर तक युवक के सीने से लगी रही और जब अलग हुयी तो एकबारगी चौंक पड़ा मैं। पहचानने में देर न लगी मुझे। वह लड़की और कोई नहीं, पाखी थी। अक्षत यौवना पाखी। दूसरे क्षण उसका स्वर सुनायी पड़ा मुझे। वह कह रही थी—गिरिजेश! कल वह तांत्रिक फिर आया था।

क्या कहता था—युवक ने पाखी के बालों को सहलाते हुए पूछा। बस वही पुरानी बात। उसे रुपए चाहिए या उसके बदले मेरा हाथ। थोड़ा रुककर पाखी आगे बोली—मैं जानती हूँ—माँ कभी भी उसका रुपया वापस नहीं कर सकेंगी। और किसी दिन वह क्रूर तांत्रिक मुझे जबरदस्ती ले जाएगा अपने साथ। मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि वह मुझे अपनी भैरवी बनाना चाहता है। मुझे भैरवी बनाकर अपनी साधना की पूर्ति के साथ ही साथ अपनी वासना की भी पूर्ति करना चाहता है वह नरपिशाच।

अन्तिम शब्द के साथ पाखी का गला भर आया। सिसकते हुए आगे बोली वह—क्या तुम चाहते हो कि मैं उस तांत्रिक की निकृष्ट साधना का पात्र बनूँ? क्या तुम यह चाहते हो कि मेरा यह शरीर उसकी अदम्य वासना की पूर्ति का साधन बने? बोलो गिरिजेश, कुछ तो बोलो! कुछ तो जवाब दो! निर्विकार भाव से सब कुछ सुनने के बाद गिरिजेश पाखी का हाथ थामकर बोला—नहीं पाखी नहीं! तुमको मैं उस पापी के चंगुल में कभी भी न पड़ने दूँगा। घबराओ नहीं। मैं शीघ्र ही रुपए का इन्तजाम कर वापस कर दूँगा उसका रुपया। माँ से कह देना, और यह भी कह देना कि अब किसी तरह की चिन्ता करने की जरूरत नहीं।

इसके बाद गिरिजेश और पाखी में जो बातें हुयीं उससे मुझे यह समझते देर न लगी कि वे दोनों बचपन के साथी थे। दोनों का अगाध प्रेम था एक दूसरे के प्रति। शीघ्र

ही विवाह के बन्धन में बँध जाना चाहती थीं दोनों आत्मायें। मगर दोनों के मार्ग में सबसे बड़ा विघ्न था—तांत्रिक भोलानन्द गिरी। पाखी के पिता महेश्वर राय चौधरी से उसकी मित्रता थी। एक बार उनकी बीमारी में पाँच सौ रुपये देकर भोलानन्द गिरी ने सहायता की थी। इस उपकार का परिणाम यह हुआ कि वह महेश्वर राय चौधरी के परिवार का एक घनिष्ठ सदस्य बन गया। जब उनकी मृत्यु हुयी, तो भोलानन्द गिरी ने परिस्थिति का लाभ उठाकर पाखी की माँ शोभा से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहा। मगर वह साध्वी स्त्री इसके लिए तैयार नहीं हुयी। तभी उसकी कलुषित दृष्टि पाखी पर पड़ी।

उस समय उसकी उम्र १३-१४ साल के लगभग थी। पाखी किशोरावस्था में प्रवेश कर रही थी। उसके यौवन का फूल खिल रहा था—जिसका रसपान करने के लिए आकुल हो उठी उस कृतघ्न तांत्रिक की कलुषित आत्मा। वह जानता था कि पाखी कभी भी अपने आपको उत्सर्ग करने के लिए तैयार न होगी। जोर-जबरदस्ती करना नहीं चाहता था वह पाखी के साथ। इसलिए वह अपने रुपए की बराबर माँग करने लगा। जानता था कि परिस्थिति ऐसी है कि शोभा रुपए कभी भी वापस न कर सकेगी।

एक दिन अवसर देखकर भोलानन्द गिरी बड़ी ही आत्मीयता से शोभा से बोला—यदि रुपए लौटाने की स्थिति में नहीं हो तो कोई बात नहीं, पाखी है न! उसको ही मुझे दे दो। यदि चाहोगी तो और रुपए दे दूँगा। पाखी बड़ी हो रही है। शादी-वादी का झंझट भी तुम्हें नहीं उठाना पड़ेगा। उसे दीक्षा देकर भैरवी बना लूँगा। उसका लोक-परलोक दोनों बन जायेगा। मेरे बाद मेरे मठ-आश्रम और मेरी जमीन-जायदाद की वही मालकिन होगी। बोलो तैयार हो?

भोलानन्द गिरी की यह बात सुनकर शोभा एकबारगी तिलमिला उठी। विष का घूँट पीकर रह गयी वह। बोला न गया उससे कुछ। धीरे से उठी और कमरे के भीतर चली गयी वह। भोलानन्द गिरी कुछ देर खड़ा रहा—फिर पैर पटकते हुए वह भी चला गया।

पूरी रात पति के चित्र को सामने रखकर रोती रही शोभा। और पाखी को जब ये सारी बातें मालूम हुयीं, तो क्रोध और आवेश से उसका चेहरा लाल हो उठा।

दूसरे दिन भोलानन्द गिरी ने एक आदमी को भेजकर कहलाया कि यदि दीपावली के भीतर शोभा रुपया वापस नहीं करती तो वह पाखी को जबरदस्ती ले जाएगा।

शोभा और पाखी दोनों परेशान और चिन्तित हो उठीं इस समाचार को सुनकर। भोलानन्द गिरी का पूरे इलाके में प्रभाव था। लोग उससे डरते भी थे। इसलिए माँ-बेटी उसका विरोध भी नहीं कर सकती थीं।

अब मेरे सामने दूसरा दृश्य था। देखा—वह पहाड़ी नदी लगभग एक मील आगे जाकर बायीं ओर मुड़ गयी थी—उस स्थान पर एक विशाल मठ था। जिसके एक ओर मीलों तक फैला हुआ मैदान था और दूसरी ओर पहाड़ों से घिरा हुआ जंगल था। जिसकी छाती को चीरती हुई नदी की प्रखर धारा आगे बढ़ गयी थी।

मैंने देखा—मठ काफी पुराना था। उसके भीतर कई बड़े-बड़े कमरे थे। एक कमरे

में प्रकाश हो रहा था। वह कमरा काफी लम्बा-चौड़ा था। एक ओर काली की आदम-कद मूर्ति थी। मूर्ति के सामने बड़ा-सा हवन-कुण्ड था—जिसमें से धुआँ निकलकर कमरे के रहस्यमय वातावरण में छाता जा रहा था। एक और पंचमुखी दीपाधार में दीप जल रहा था। जिसके निकट ही चाँदी की थाली में पूजन की सामग्री रखी हुई थी। नारियल और जवापुष्प भी था वहाँ।

कमरे के दूसरी ओर एक बहुत बड़ा पलंग था जिस पर गद्दा, तकिया लगा हुआ था और रेशमी चादर बिछी हुयी थी। तरह-तरह के सुगन्धित पुष्पों से सजा हुआ था वह पलंग। तभी मेरी नजर एक भीमकाय व्यक्ति पर पड़ी। काफी मोटा-ताजा था वह। उसकी छाती काफी चौड़ी थी और पेट बाहर निकला हुआ था। उसकी वेश-भूषा किसी तांत्रिक संन्यासी जैसी थी। दाढ़ी-मूँछ तथा सिर के बाल सफाचट थे। उम्र यही रही होगी करीब पचास साल की। लेकिन देखने में इतनी उम्र का लगता नहीं था वह। उसकी आँखें लाल थीं। ऐसा लगता था कि उसने आकण्ठ मदिरा पी रखा हो।

संन्यासी जैसा वह व्यक्ति बाहर टहल रहा था। उसका कोंहड़े जैसा सिर ऊपर था और दोनों हाथ पीछे थे। जब मैं उस भयंकर व्यक्ति की ओर देख रहा था—उसी समय फाटक की ओर से कुछ लोग आते दिखायी दिये। उन लोगों की वेश-भूषा तांत्रिक संन्यासियों जैसी ही थी। दो-तीन व्यक्ति कसकर पकड़े हुए थे एक लड़की को। शेष लोग उनके पीछे चल रहे थे। उनके हाथों में लाठियाँ थीं। लड़की को तुरन्त पहचान लिया मैंने। वह पाखी ही थी। उसका हाल बुरा था। कहीं-कहीं खून भी टपक रहा था। बाल खुलकर पीठ पर बिखरे हुए थे। बराबर चीख-चीख कर रोये जा रही थी पाखी। साथ ही उन राक्षसों के बन्धन से मुक्त होने की भी कोशिश कर रही थी वह।

पाखी को देखकर महिषासुर जैसा वह व्यक्ति हो-हो कर हँसने लगा। समझते देर न लगी। भोलानन्द गिरी था वह व्यक्ति। निश्चय ही उसने पाखी को जबरदस्ती पकड़कर मँगवाया था। उसके आदेश पर लोग उसको एक कमरे में ले गये। थोड़ी देर बाद जब पाखी कमरे के बाहर निकली तो मैं देखकर दंग रह गया एकबारगी। आश्चर्य से मेरी आँखें खुली की खुली रह गयीं।

अनिर्वचनीय आभा से दप्-दप् कर रहा था उसका चेहरा। मुद्रा गम्भीर थी और एक विशेष प्रकार की विलक्षण शान्ति भी थी वहाँ। आँखें अधमुँदी थी उसकी। सुगठित युवा देह पर लाल रंग की रेशमी साड़ी थी। लेकिन शरीर का ऊपरी भाग अनावृत था। साड़ी का रेशमी आँचल यौवन के मधुकलश की मर्यादा की रक्षा करने में अपने को असमर्थ पा रहा था। दोनों कुचकुम्भों का स्पर्श करती हुयी माणिक और स्फटिक की मालायें गले में झूल रही थीं। कलाइयों में लाल चूड़ियाँ थीं और शुभ्र ललाट पर लाल सिन्दूर का गोल टीका भी था। धीरे-धीरे पग उठाती हुयी पाखी मन्दिर वाले कमरे की ओर बढ़ रही थी।

हे भगवान्! वेश-भूषा में, चाल-ढाल में, व्यवहार और भाव में इतनी जल्दी कैसे परिवर्तन हो गया पाखी में। समझ में नहीं आया मेरे। बस अवाक् और भौचक्का-सा

देखता रहा मैं पाखी की ओर। ऐसा लगता था—मानो पाखी के रूप में कोई देवकन्या स्वयं स्वर्ग से उतर आयी है।

मैंने देखा—भगवती महाकाली के सामने उस तांत्रिक ने पाखी के सभी अंगों की विधिवत् पूजा की। इस समय पाखी के शरीर पर एक भी वस्त्र नहीं था। वह सम्पूर्ण नग्न थी। पूजा के अन्त में तांत्रिक ने मदिरा से भरी हुयी चाँदी की कटोरी उसको दी। एक ही घूँट में सारी मदिरा पी गयी वह पाखी और दूसरे ही क्षण उसका चेहरा लाल हो उठा। अपूर्व आभा से चमक उठा चेहरा और बिखर गये लावण्य के कण मुख-मण्डल पर।

अपनी भैरवी को अपनी साधनपीठिका बना लिया था पाखी को भोलानन्द गिरी ने। उसकी प्रतीक्षा की घड़ी अब समाप्त हो गयी थी। संकल्प साकार हो उठा था। आशा फलवती हो गयी थी उस तांत्रिक की। उसकी कामना, वासना, साधना की बलिवेदी पर युवावस्था में पदार्पण कर रही थी। एक अबोध सुन्दरी किशोरी ने अपना आत्मसमर्पण कर दिया था और चढ़ा दिया था अपनी सम्पूर्ण आशाओं-अभिलाषाओं को।

रात का तीसरा प्रहर था। अनुष्ठान पूरा हो चुका था। मूर्ति के सामने जल रहे पंच-मुखी दीप की ज्योति मन्द पड़ गयी थी। तांत्रिक भोलानन्द गिरी अपनी भैरवी को लेकर मद्य-सम्भोग मुद्रा में लीन था उस समय। तभी दूर से मुझे गिरिजेश आता दिखायी पड़ा। उसके कन्धे पर बन्दूक लटक रही थी और हाथ में एक पोटली थी। शायद उसमें रुपया था। गिरिजेश तेजी से घुसा और दौड़कर मन्दिर के दरवाजे के सामने आया। दरवाजा भीतर से बन्द था। मगर जोर का धक्का देकर उसने दरवाजा खोल दिया और साथ ही चीखकर बोला—पाखी, मैं रुपया लेकर आ गया हूँ। बाहर निकलो।

गिरिजेश की आवाज सुनकर पाखी तो बाहर नहीं निकली, हाँ भोलानन्द गिरी अवश्य आँख मलते हुए दरवाजे पर आकर खड़ा हो गया।

पाखी कहाँ है ? दहाड़ते हुए गिरिजेश ने पूछा।

पाखी यहीं है। मगर अब तुम उससे नहीं मिल सकते।

क्यों ? चीख पड़ा गिरिजेश।

इसलिए कि पाखी पर अब मेरा अधिकार है। वह मेरी भैरवी बन चुकी है, देवी को साक्षी देकर।

ऐसा नहीं हो सकता।—यह कहकर गिरिजेश ने कमरे के भीतर घुसना चाहा मगर तभी चौड़े फाल का चमचमाता हुआ एक छूरा आकर उसकी पीठ में घुस गया पूरा। तड़प कर गिर पड़ा जमीन पर। दूसरे ही क्षण गिरिजेश के हाथ में ली हुयी पोटली खुल गयी और सारा रुपया बिखर गया चारों तरफ।

जिस समय यह लोमहर्षक घटना घटी उसी समय मुझे एक झटका-सा लगा, आँखें खुल गयीं और उसी के साथ एकबारगी मैं चीख पड़ा—पाखी।

देखा—मुझ पर झुकी हुई पाखी मुस्करा रही थी।

बिस्तर से उठकर बैठते हुए हौले से बोला—'यह सब मैंने क्या देखा है पाखी ?'

पाखी की मुस्कराहट गहरी उदासी में डूब गयी। —आपने मेरे अतीत की कथा जाननी चाही थी न।

मगर फिर तुम्हारी इतनी दयनीय हालत क्यों हो गयी पाखी?

मेरे इस प्रश्न के उत्तर में पाखी ने सिसकते हुए जो कुछ बतलाया उसे सुनकर जहाँ एक ओर उसकी अघोर तांत्रिक शक्ति का मुझे एहसास हुआ वहीं दूसरी ओर आत्मा भी द्रवित हो उठी मेरी। करुणा से भर गया मेरा मन।

पूरे दस साल भैरवी के रूप में रही पाखी उस अघोरी तांत्रिक के साथ। उससे पाखी को तामसिक शक्ति की कई अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त हुयीं। इसी बीच पाखी दो बच्चों की माँ भी बनी। मगर उन दोनों को अघोरी भोलानन्द गिरी ने नहीं छोड़ा। बलि देकर दोनों बच्चों की आत्माओं को सिद्ध कर अपने अधिकार में कर लिया उसने। क्रोध, घृणा और क्षोभ से पागल हो गयी पाखी। कौन माँ अपने शिशुओं को अपनी ही आँखों के सामने बलि होते हुए देख सकती है भला।

साब! ऐसी अलौकिक सिद्धि और तांत्रिक शक्ति से क्या फायदा जो मन और आत्मा की शान्ति ही छीन ले—पाखी ने उदास स्वर में कहा—गिरिजेश को बहुत चाहती थी मैं। उससे आत्मा की गहराई से प्रेम करती थी मैं। कभी-कभी आज भी उसकी याद में डूब जाती हूँ मैं। उसने मेरे लिए अपनी जान भी दे दी। मगर मैं उसके लिए कुछ न कर सकी। मुझे उस राक्षस ने न पत्नी बनने दिया और न तो माँ ही। आप ही सोचिए साब! ऐसी औरत की जिन्दगी क्या होगी? सब कुछ गँवाकर, सब कुछ लुटाकर अंधकार में भटक रही हूँ मैं।

भोलानन्द गिरी का क्या हुआ? कहाँ है वह? विषण्ण मन से पूछा मैंने।

पाखी हँस पड़ी। विषाद में डूबी थी उसकी हँसी। बोली—होगा क्या, जो होना चाहिए वही हुआ। दोनों बच्चों की सिद्ध आत्माओं ने अपनी बलि का बदला ले लिया उस नरपशु से। एक रात अपने कमरे में मरा हुआ पाया गया वह। बड़ी ही घृणित मृत्यु हुई थी उसकी। चेहरा विकृत हो गया था। आँखें बाहर को निकल आयी थीं। सारा शरीर गलकर दुर्गन्धमय हो उठा था। मगर साब! बदला लेने के बावजूद भी उन दोनों बच्चों की आत्माओं को मुक्ति नहीं मिली। वे बराबर मेरे साथ रहती हैं।

हैं! तुम्हारे साथ। आश्चर्य से बोला मैं।

हाँ साब! वे हमेशा हमारे साथ ही रहती हैं। अभी पाखी ने अपना वाक्य पूरा किया ही था कि मैंने देखा कि हल्के कुहरे की शक्ल की दो छायायें उसके चारों ओर घूमने लगीं। वे बराबर चक्कर काट रही थीं और उनका आकार भी स्पष्ट होता जा रहा था चक्कर के साथ ही। भय से सिहर उठा मैं।

कैसी हैं ये छायायें? कौन हैं इन छायाओं के रूप में?

मैं आगे कुछ सोचूँ-समझूँ कि उसके पहले ही पाखी बोल उठी—साब! आप घबराइये नहीं! डरने की भी कोई बात नहीं है। ये मेरे दोनों बच्चों की छायायें हैं। जब

कभी मैं इनके सम्बन्ध में कुछ सोचती हूँ उसी समय ये मेरे पास आ जाते हैं। कल कीमती शराब की बोतल यही दोनों लाये थे कलकत्ता से।

ऐं! क्या कहती हो तुम?

हाँ साब! मैं सच कह रही हूँ। मेरी बात पर यकीन करें आप। इतना कहकर पाखी ने चक्कर काटती हुयी उन छायाओं की ओर मुँह घुमाकर कुछ संकेत किया—जिसे मैं समझ न सका। मगर कुछ ही क्षणों के बाद देखा—मेरे सामने कीमती शराब की बोतल, टोकरी में भरे फल और मिठाइयाँ रखी हुयी थीं। अवाक् और स्तब्ध हो गया मैं। कैसे और कहाँ से आया यह सब सामान?

पाखी बोली—मेरे बच्चों की आत्माएँ लायी हैं ये सब। उन्हीं का चमत्कार है।

कुछ देर बाद वे चक्कर काटती हुई छायायें गायब हो गयीं। मैं पाखी का मुँह ताकता रह गया। देखा—उसके चेहरे पर वात्सल्य का भाव उभर आया है। बहुत देर तक न जाने किन भावनाओं और किन विचारों के सागर में डूबी रही वह। मगर जब तन्द्रा भंग हुई, तो देखा—पाखी का चेहरा आँसुओं से भींग उठा था।

एक प्रकार से कहानी यहीं समाप्त हो जाती है। एक-एक कर सारी घटनाओं को मैं भूल ही गया था। पच्चीस वर्ष के दीर्घ अन्तराल के बाद यदि पाखी हावड़ा स्टेशन पर न मिली होती तो शायद इस कथा को लिपिबद्ध भी न कर पाता मैं। घड़ी की ओर देखा—चार पन्द्रह। बनारस आ गया था। पच्चीस साल बाद हम दोनों मिले थे। अब फिर कब मिलेंगे, यह भविष्य के गर्भ में था।

जब ट्रेन से उतरने लगा, तो सहज स्वर में पाखी बोली—आपने मेरे प्रति जो उपकार किया था उसे मैं कभी नहीं भूल सकूँगी। क्या दूँ उन उपकारों के बदले आपको? मेरे पास तो कुछ भी नहीं है।

मैंने देखा—पाखी की आँखों में आँसू छलक आये थे। गला भी भर आया था उसका। प्रणाम की मुद्रा में जुड़े हुए उसके दोनों हाथ काँप रहे थे।

चार-पाँच महीने बाद लद्दाख से पाखी का आज एक पत्र आया है। वह बनारस आना चाहती है। उसका कहना है कि अपने दोनों बच्चों की आत्माओं को प्रेत योनि से मुक्ति दिला दूँ मैं। भला आप ही बतलाइए—'मैं कैसे मुक्ति दिला सकूँगा उन आत्माओं को। वैसे ही मैं दर्जनों अतृप्त आत्माओं के चक्कर में फँसा हुआ हूँ।'

ooo

९

वह रहस्यमयी साधिका

यह घटना, जो मैं वर्णन करने जा रहा हूँ, इतनी रहस्यमयी और रोमांचकारी है कि इस पर विश्वास करना कठिन है, लेकिन सौगन्ध भगवान् की, यह कहानी अक्षरश: सत्य है। अक्सर मैं भी सन्देह में पड़ जाता हूँ कि जो कुछ मैंने देखा-सुना और अनुभव किया, क्या वाकई वह सच है ? इतने वर्ष बीत जाने के बावजूद भी वह भयानक घटना मेरे मानस पटल पर इस प्रकार अंकित है, जैसे कल की ही बात हो।

सन् १९५० ई०। फरवरी का महीना।

उन दिनों मेरे एक अंग्रेज मित्र थे। नाम था मि० ब्राउन। मि० ब्राउन से मेरा परिचय दार्जिलिंग में हुआ था। वे जितने अच्छे शिकारी थे उतने ही अच्छे अंग्रेजी साहित्य और कला के मर्मज्ञ भी थे। इसी साहित्य और कला के कारण मेरा साधारण परिचय शनै:-शनै: मित्रता में परिवर्तित हो गया था।

एक दिन मि० ब्राउन का एक पत्र मुझे मिला। पत्र अजमेर से लिखा गया था। पत्र पाते ही मैं पहली गाड़ी से अजमेर के लिए रवाना हो जाऊँ।

मैं असमंजस में पड़ गया। फिर सोचा, कोई जरूरी बात होगी तभी तो मि० ब्राउन ने मुझे इतनी दूर बुलाया है। खैर, तीसरे दिन मैं अजमेर पहुँच गया। मि० ब्राउन मुझे स्टेशन पर ही मिले। मेरे ठहरने की व्यवस्था पहले से ही कर दी गयी थी। मि० ब्राउन ने कहा—मैं थका हुआ हूँ और आप भी थके हुए हैं, आज हम दोनों आराम करें, कल बातें की जायेंगी।

दूसरे दिन सबेरे ही मि० ब्राउन के साथ मैं जीप में उनके खेमे की ओर रवाना हो गया। उनका कैम्प अरावली पर्वत की बुलन्द चोटी के नीचे एक बीहड़ और भयानक स्थान पर था। कैम्प के सामने घोर जंगल था और पहाड़ के सीने को चीरती हुई एक नदी भी बह रही थी।

कैम्प में चाय पीने के बाद मुझे साथ लेकर मि० ब्राउन एक पहाड़ी दर्रे में पहुँचे। दर्रे के चारों ओर हरे-भरे वृक्षों का झुण्ड था और उसके बीच में ठण्डे पानी का एक छोटा-सा चश्मा।

बड़ी लुभावनी और सुन्दर जगह थी। चश्मे के एक ओर काफी गहरी एक खोह

थी, जिसके ठीक सामने पहाड़ी चट्टान पर एक बहुत बड़ा पत्थर रखा हुआ था। पत्थर पर काफी दूर तक खून फैल कर काला पड़ गया था। उस पर जंगली मक्खियाँ भिनभिना रही थीं।

शर्मा जी! आपको मैंने क्यों बुलाया है अब आप समझ जायेंगे। ब्राउन ने होंठों के बीच फँसी काले पाइप का जोर से एक कश लिया और कहा, मि० शर्मा! यह मेरे दोस्त राबर्ट का खून है। जब तक मैं राबर्ट के कातिलों से बदला न ले लूँगा, तब तक मुझे शान्ति नहीं मिल सकती। दो महीने पहले मैं और राबर्ट शिकार के लिए आबू पर्वत आये। आबू पर्वत के अरावली पर्वत पर एक आदमखोर की काफी चर्चा थी। मैं राबर्ट को लेकर यहाँ आ गया और इसी पेड़ पर मचान बँधवाया। रात हुई। मैं और राबर्ट इसी चट्टान पर बैठ कर खाना खाने का इन्तजाम करने लगे। तभी आदमखोर ने राबर्ट को दबोच लिया। मैंने सामने बँधे हुए भैंस की ओर देखा, वहाँ कुछ नहीं था। फिर पलटकर दूसरी ओर देखा—चाँद की चाँदनी में एक शेर चट्टान पर बैठा राबर्ट की गर्दन का खून पी रहा था। वह भयानक दृश्य देखकर मेरे शरीर का सारा खून खुश्क हो गया। मैं घबराहट में कोई फैसला न कर सका। फायर करता तो राबर्ट को गोली लगने का डर था। तभी मेरा लोकल साथी रंजीत सिंह आ गया। मैंने और रंजीत ने तलवारें निकाल लीं और शेर पर हमला कर दिया। इस पर शेर ने राबर्ट को छोड़कर रंजीत सिंह को पंजा मारा।

रंजीत सिंह एक तगड़ा जवान और पेशेवर शिकारी था, लेकिन आदमखोर के एक ही पंजे से वह गिर गया। शेर ने धीरे से रंजीत सिंह को मुँह में दबाया और उस खोह में घुस गया। मैंने बदले की आग में बन्दूक ली और टार्च जलाकर खोह में घुस गया। आगे खोह इतनी तंग थी कि उसमें शेर का प्रवेश कर पाना कठिन ही नहीं असम्भव था।

ब्राउन की बात सुनकर मेरे मुँह से अचानक निकला—वह शेर था या कोई जिन्न या भूत?

मैं बुरी तरह डर गया। ब्राउन ने कहा—शेर रंजीत सिंह को लेकर मेरे सामने खोह में घुसा था। खोह के मुहाने पर रंजीत सिंह का ताजा खून पड़ा था। उसी पल मुझे राबर्ट का खयाल आया। मैं भागकर चट्टान पर पहुँचा। राबर्ट मर चुका था। शेर ने उसको चिथड़ा-चिथड़ा कर दिया था।

मि० ब्राउन ने बताया कि अरावली पर्वत की घाटी में ग्रारिस्या जाति के लोग रहते हैं। उनके सरदार से मालूम हुआ कि उस आदमखोर ने अब तक सैकड़ों लोगों को मार डाला है। जिस समय सरदार उस आदमखोर की चर्चा कर रहा था, उस समय उसकी देह बेंत की तरह काँप रही थी। मैंने उसको सान्त्वना दी और समझाया। फिर उससे आदमखोर के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त की।

काँपते हुए सरदार ने बतलाया—साहब! हमारे कबीले इस घाटी में सैकड़ों साल से आबाद है। ऐसे खूँख्वार जानवरों को मारना हमारे लिए मामूली बात है। मगर सरकार! यह आदमखोर शेर या चीता नहीं है, बल्कि कोई जिन्न या मायावी जीव है। यह जानवर का रूप धारण कर पिछले छः मास के भीतर हमारे कबीले के सैकड़ों लोगों को मार

चुका है। यह 'बला' इन्सान की गर्दन का खून पीकर फिर एक सुन्दर जवान औरत का रूप धारण कर इन्सान की नंगी लाश के सीने पर बैठ जाती है, नहाती है, फिर नंगी लाश को नदी में बहा देती है। यह तमाम इलाका दूसरी 'बला' के प्रभाव में है। इसका इलाज बन्दूक से नहीं हो सकता। आप किसी जादूगर की तलाश करें और इस 'बला' से हमें छुटकारा दिलायें। हम सब आपका उपकार जीवन-भर नहीं भूलेंगे।

पाइप में तम्बाकू भरते हुए डॉ० ब्राउन ने कहा—शर्मा जी! आपको मानना पड़ेगा कि यह दास्तान रहस्यमय और रोमांचकारी है। लेकिन मैं अन्धविश्वासी नहीं, साहसी आदमी हूँ। मैंने इन जंगलों का चप्पा-चप्पा छान मारा, मगर मेरा अभिप्राय पूरा नहीं हुआ। जब मैंने एक नंगी लाश नदी में देखी, तो मेरे पाँव तले की जमीन खिसक गयी। तभी मैंने आपको बुलाया। मेरा दिमाग अब कुछ काम नहीं करता। मैं इस रहस्य की तलाश का कार्य आपको सौंप रहा हूँ।

मि० ब्राउन से यह असाधारण रोमांचकारी कथा सुनकर मैं सोच में पड़ गया। उस वक्त मेरी उम्र पच्चीस-छब्बीस वर्ष से ज्यादा न थी। भूत-प्रेत और तंत्र-मंत्र पर खोज और शोध जरूर कर रहा था, मगर कोई खास अनुभव इस दिशा में मुझे तब तक नहीं हुआ था।

मैंने मि० ब्राउन से कहा—मैं आपसे कुछ प्रश्न करूँगा। यदि आपने उसका ठीक-ठीक जवाब दे दिया तो जरूर मैं कुछ मदद करने की कोशिश करूँगा।

मि० ब्राउन मेरे प्रश्नों का जवाब देने को तैयार हो गये।

अब तक जितने भी लोग मारे गये हैं, उन सभी की गर्दन का ही खून पिया गया था? मैंने पूछा।

हाँ। वह आदमखोर सिर्फ गर्दन का ही खून पीता है।

मांस भी खाया है, किसी का?

नहीं।—मि० ब्राउन ने सिर हिलाकर जवाब दिया।

खोजने पर लाश कहाँ मिलती है?

कभी उस रहस्यमयी गुफा के सामने वाले चट्टान पर तो कभी नदी में बहती हुयी मिलती है।

देखिए मि० ब्राउन! इसके पीछे बहुत बड़ा राज छिपा हुआ नजर आता है।

मैंने कहा—अगर हम मान लें कि यह काम किसी खूँख्वार शेर का है तो वह खून पीने के अलावा, थोड़ा-बहुत गोश्त भी खाता लाश का। दूसरी बात यह है कि लाश एक ही जगह न मिलती और न तो हर बार नदी में बहती हुई ही नजर आती।

मि० ब्राउन ने मेरी ओर इस तरह देखा, जैसे वह मेरी बात का समर्थन कर रहे हों।

मैं मानता हूँ कि शेर एक चालाक जानवर है, मगर उसकी चालाकी के दायरे में इन घटनाओं को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। मैंने कहा।

उस रात मैंने जी-भरकर ह्विस्की पी, खाना खाया और आराम किया। दूसरे दिन

नदी के उद्‌गम और उस रहस्यमयी गुफा की ओर मि० ब्राउन को साथ लेकर रवाना हो गया।

करीब दो घण्टे लगातार जंगली रास्ता तय करने के बाद ग्रारिस्या कबीलों की एक घनी बस्ती दिखलायी पड़ी। थोड़ा और आगे बढ़ने पर मैंने देखा—सामने हजारों फुट ऊँचे पहाड़ पर से एक नदी जोर-शोर से गिर रही थी। नदी के साथ-साथ मैं और मि० ब्राउन आगे बढ़ने लगे। करीब एक फर्लांग जाने पर मुझे वह स्याह पत्थरों की चट्टान दिखायी पड़ी, जिसकी चर्चा मि० ब्राउन ने की थी। मैंने दूरबीन लगाकर देखा। गुफा को मैं बिल्कुल साफ देख रहा था। गुफा का मुँह चट्टान से लगभग दस-पन्द्रह कदम की दूरी पर था और उसके ठीक सामने नदी का उद्‌गम था।

उस समय मेरी साँस रुकती-सी हुई, जब मैंने उस स्याह काले चट्टान के एक ओर एक युवक की लाश पड़ी हुई देखी। मि० ब्राउन से मालूम हुआ कि वह कबीले के सरदार के लड़के की लाश है। दो दिन पहले मारा गया था उसे।

चारों ओर अजीब-सा सन्नाटा छाया हुआ था। मैं उस सन्नाटे से बेचैन हो उठा। मुझे ऐसा लगा कि सारा रहस्य सिमट कर वहीं कहीं अदृश्य रूप से विद्यमान है। कलाई घड़ी की ओर देखा—चार पच्चीस। सूरज की पीली रोशनी पहाड़ों के पीछे खिसकती जा रही थी। ऐसा लगा, मानो बहुत जल्दी वहाँ अँधेरा हो जायेगा।

मि० ब्राउन अपनी भरी हुई राइफल सँभालते हुए बोले—कब तक रुकना होगा यहाँ?

मैंने उनकी आँखों में झाँकते हुए जवाब दिया, जब तक रहस्य खुल नहीं जाता।

क्या आपको पूरा भरोसा है कि रहस्य का पता लग जायेगा?

ऐसी ही उम्मीद है!

क्या कोई भूत-प्रेत का चक्कर है?

नहीं।

तब ।

इस बात का जवाब आपको थोड़ी देर बाद मिल जायेगा। सब्र करिए।

मैं, मि० ब्राउन को लेकर एक घने पेड़ के पीछ छुप गया। मि० ब्राउन मेरे साथ गुफा की ओर देखने लगे। दोनों की आँखों पर दूरबीन थी।

अचानक हम दोनों के मुँह से एक साथ चीख निकल पड़ी। देखो, चट्टान के ऊपर बिल्कुल शेर की शक्ल का चीता हमारी ओर देख रहा था। उसका तमाम जिस्म गहरे पीले बालों से ढका हुआ था। उसकी चमकदार आँखों से चिनगारियाँ उड़ रही थीं। वेश बिल्कुल शेर जैसा था। उसके बदन पर बलखाती हुई काले रंग की धारियाँ थीं। कद में चीते से बड़ा और देखने में शेर मालूम पड़ता था। सम्भव है कि उसकी माँ चीता और बाप शेर हो।

मि० ब्राउन! यही है आपके मित्र राबर्ट का कातिल—मैंने फुसफुसा कर कहा।

मि० ब्राउन कोई जवाब दें कि इसके पहले गुफा के भीतर से लम्बी काठी का एक

मोटा-ताजा व्यक्ति निकला। उसकी वेश-भूषा साधु-संन्यासियों जैसी थी। सिर पर जटाजूट था और काफी लम्बी दाढ़ी थी। देह बिल्कुल नंगी थी।

चीता उस व्यक्ति को देखते ही उसके करीब आया और पालतू कुत्ते की तरह आस-पास चक्कर काटते हुए दुम हिलाने लगा।

मुझे समझते देर न लगी। उस व्यक्ति का निश्चय ही वह पालतू चीता था। मि० ब्राउन ने उस पर फायर करना चाहा, मगर मैंने इशारे से रोक दिया। तभी मेरी नजर गुफा से निकलती हुई एक युवती पर पड़ी। वह भी मादरजाद नंगी थी। उसके बाल खुलकर काफी नीचे तक बिखरे हुए थे। जिस्म का रंग हल्का गुलाबी था और प्रत्येक अंग जैसे साँचे में ढला हुआ था। सीने का उभार तो गज़ब ढा रहा था। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी और स्याह थीं। पतले-पतले होंठ हल्के लाल थे। वह किसी देवकन्या-सी लग रही थी। एक बार उसने चारों ओर नजर घुमाकर देखा और फिर बड़ी शान से कदम उठाती हुई चट्टान के करीब पड़ी हुई लाश के करीब पहुँची। वह उसकी छाती पर इत्मीनान से बैठकर नहाने लगी। मुझे मि० ब्राउन की हालत का तो पता नहीं, मगर वह भयानक दृश्य देखकर मेरे सारे शरीर में एकबारगी सनसनी दौड़ गयी।

युवती नहाने के बाद उसी शान से चलकर गुफा में गायब हो गयी। वह व्यक्ति, जो अब तक खड़ा, युवती को नहाता हुआ देख रहा था—लाश को दोनों हाथों से उठाकर नदी की धारा में डाल आया। उसके बाद वह भी गुफा के भीतर चला गया।

अभी मैं कुछ सोचने-समझने की कोशिश कर ही रहा था कि एक तेज धमाके की आवाज से पहाड़ काँप उठा। मि० ब्राउन ने फायर कर दिया था। चीता अपनी जगह उछला, जमीन पर गिरा और फिर उठकर उसने छलांग लगायी, मगर इसके पहले कि वह कोई घातक हमला करे मि० ब्राउन ने दूसरा फायर कर दिया। सनसनाती हुई गोली चीता के सीने को चीरती हुई दूसरी ओर निकल गयी। आखिर में वह एक बार और उछला, फिर जमीन पर लुढ़क कर हमेशा के लिए शान्त हो गया।

गोली की आवाज सुनकर साधु जैसा दीखने वाला वह व्यक्ति गुफा के बाहर निकला। इस बार उसके हाथ में तीर-धनुप था। उसने निकल कर एक बार आश्चर्य से अपने मरे हुए पालतू चीते की ओर देखा। फिर धनुष पर तीर चढ़ाकर उसे चारों ओर इस खयाल से घुमाने लगा कि किसी को देखते ही तीर चला दे। भगवान् का शुक्र था कि हम पर उस पिशाच की नजर अभी तक नहीं पड़ी थी। मि० ब्राउन ने अवसर का फायदा उठाया। तुरन्त उन्होंने फायर कर दिया। दैत्याकार वह व्यक्ति जमीन पर गिरा और फिर तुरन्त उठ खड़ा हुआ। बिजली की गति से उसने अपनी कमान से एक जहर से बुझा तीर चला दिया, जो सनसनाता हुआ हमारे पास से गुजर गया और पेड़ के तने में घुस गया। वह दुबारा कमान पर तीर चढ़ाने लगा तभी मि० ब्राउन ने लगातार कई गोलियाँ एक साथ चला कर उसे जमीन पर गिरा दिया।

गोली की आवाज सुनकर पास की बस्ती से बहुत सारे लोग वहाँ आकर इकट्ठे हो गये। सरदार अपने बेटे की लाश देखकर रो पड़ा। मैंने उसे सान्त्वना देते हुए बतलाया कि यह वही चीता है जिसने छः महीने से आतंक फैला रखा था और यह लाश उस शत्रु

की है जिसका यह पालतू चीता था और जिसके इशारे पर वह मारकर लोगों को यहाँ तक लाता था।

अब मुझे उस युवती का पता लगाना था और यह जानना था कि वह कौन है ? उसके साथ वह व्यक्ति कौन था ? इसके अलावा यह भी जानना था कि इस मारणयज्ञ के पीछे कौन-सा रहस्य था ? लाश पर बैठकर नहाने का उद्देश्य क्या था ?

मि० ब्राउन भी यह सब जानने-समझने के लिए व्याकुल थे जिसके कारण वे मेरे साथ गुफा में जाने के लिए उत्सुक थे, मगर मैंने मना करते हुए कहा—अगर मैं शाम तक बाहर न निकलूँ तो वे गुफा में घुसकर मेरी खोज-खबर ले सकते हैं।

अब यहीं से शुरू होता है इस रोमांचकारी स्मृति-कथा का दूसरा अध्याय।

सबेरा होते ही मैं गुफा में चला गया। भीतर गहरी खामोशी और अँधेरा था। टार्च की रोशनी के सहारे मैं धीरे-धीरे आगे बढ़ा। थोड़ी दूर जाने के बाद मुझे गुफा की छत में एक काफी बड़ा सूराख दिखायी पड़ा। जिसमें सूरज की रोशनी भीतर आ रही थी। वातावरण काफी रहस्यमय लगा, जिससे मैं सतर्क हो गया, किसी भी स्थिति का सामना करने को तैयार।

एकाएक किसी के जोर-जोर से लम्बी साँस लेने की आवाज सुनाई पड़ी। टार्च की रोशनी में देखा—गुफा की पथरीली दीवार से सटकर एक बुढ़िया बैठी थी। बुढ़िया काफी उम्र की लग रही थी। जिस्म गल गया था। चमड़े सिकुड़ कर झुर्रियों की शक्ल में बदल गये थे। सिर के बाल भी उड़ चुके थे।

गुफा में एक बुढ़िया को इस प्रकार बैठे देखकर पहले तो मुझे घोर आश्चर्य हुआ, फिर थोड़ा भय भी लगा। बाद में अपने को सँभालकर बोला—कौन हो तुम ? यहाँ इस गुफा में कैसे बैठी हो ? वह लड़की कहाँ गयी ?

एक साथ कई प्रश्नों को सुनकर बुढ़िया ने अपना बदसूरत चेहरा धीरे-धीरे ऊपर उठाया और उल्टे मुझसे ही पूछ बैठी—कौन हो तुम ? इस गुफा में कैसे आ गये ?

यह तो तुमको बाद में मालूम होगा, पहले तुम यह बताओ कि वह युवती कहाँ है ?

मेरी बात सुनकर बुढ़िया एकबारगी हो-हो कर हँसने लगी। बड़ी रहस्यमयी हँसी थी उसकी।

लड़की से मिलना चाहता है चल मेरे साथ, हँसते हुए ही बुढ़िया ने कहा—और फिर वह भीतर एक ऐसी जगह ले गयी, जहाँ तीन-चार लम्बे-चौड़े चबूतरे बने थे। एक खास चबूतरे पर मैंने देखा, लाल रेशमी चादर ओढ़े कोई लेटा हुआ था और उसके सिरहाने सोने का एक हाथी सूँड़ उठाये खड़ा था जिसके सिर पर नीलम की छोटी-सी कटोरी में चिराग जल रहा था। वहाँ मुझे एक अजीब-सी खामोशी महसूस हुई। बुढ़िया ने लपक कर चादर को अपने काँपते हाथों से हटा दिया।

एकबारगी स्तब्ध रह गया मैं। जिस्म में एक हल्की-सी सिहरन दौड़ गयी। चबूतरे पर वही युवती सो रही थी, जिसे मैंने लाश पर बैठकर नहाते हुए देखा था। वह बिल्कुल नग्न थी। उसके चेहरे पर शान्ति जरूर थी, मगर वह मरी हुई थी। उसके चेहरे पर सफेदी

थी जो अक्सर मुर्दे के चेहरे पर दिखलायी पड़ती है। बुढ़िया मेरे करीब खड़ी थी। वह जोर-जोर से काँप रही थी, उस समय। कुछ क्षणों बाद वह धड़ाम से जमीन पर गिरकर एक ओर लुढ़क गयी। इसके तुरन्त बाद ही मैंने देखा, चबूतरे पर सो रही युवती अँगड़ाई लेती हुई उठ बैठी। मैंने बुढ़िया का हाथ पकड़ कर हिलाया पर वह मर चुकी थी और तभी उस युवती का स्वर सुनाई पड़ा—इधर आइये, अब मैं यहाँ उस जिस्म में हूँ।

हे भगवान्! —समझते देर न लगी। बुढ़िया अपनी जर्जर काया छोड़कर युवती की देह में चली गयी थी और वह जीवित हो उठी थी। मेरी ओर अपलक निहारते हुए मुस्करा रही थी। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में एक अजीब-सी सम्मोहन थी और थी वासना की झलक।

एकाएक अपनी नंगी बाँहें फैलाकर उसने मुझे अपने आगोश में ले लिया और अपना सिर मेरे सीने पर रख दिया। उसकी जैतून की टहनी की तरह पतली कोमल उँगलियाँ मेरे गालों को धीरे-धीरे सहलाने लगीं। मैंने एक अजीब-सी बेचैनी महसूस की। मेरी सारी देह सनसनाने लगी। उत्ताप से भर गया मन। दूसरे क्षण मैंने एक झटके से अपने आपको मुक्त कर लिया उसकी बाँहों से।

मेरे इस व्यवहार से युवती शायद नाराज हो गयी। स्वर को थोड़ा कठोर बनाकर बोली—जानते हो, मैं कौन हूँ? मेरा नाम रोहिणी है। पिछले.अस्सी साल से तंत्र की कठोर साधना कर रही हूँ—थोड़ा सहज होकर युवती आगे बोली—मेरी एक कामना पूरी कर दो तो मैं तुमको एक बहुत बड़ी तांत्रिक विद्या दूँगी, जिसके सिद्धि के बल पर तुम असम्भव कार्य को सम्भव कर सकते हो। तुम्हारे लिए कोई भी कार्य कठिन न होगा।

अपने भाव को छिपाते हुए बोला—मुझे न विद्या चाहिए और न तांत्रिक सिद्धि ही। मैं उन तमाम रहस्यमयी बातों को जानना-समझना चाहता हूँ, जिसने मेरे मन में कौतूहल और जिज्ञासा पैदा कर दी है।

खिलखिलाकर हँस पड़ी रोहिणी और फिर उसी मुद्रा में बोली—ठीक है, मैं सारी बातें बतला दूँगी। पर तुम तुम मेरी कामना पूरी करोगे न?

जरूर पूरी करूँगा। मुझ पर विश्वास करो।

रोहिणी ने बतलाया कि उसका जन्म राजस्थान के एक राज-परिवार में हुआ था। एक बार एक जादूगर नट अपना खेल दिखाने कामरूप से आया। उस वक्त मेरी उम्र करीब सोलह-सत्रह साल थी। काफी सुन्दर और आकर्षक थी मैं। उस दिन खासतौर से राजमहल में नट को बुलाया गया था। कई चमत्कारपूर्ण खेल-तमाशा दिखाने के बाद नट ने अपनी विद्या के जरिए खूबसूरत मोतियों की एक माला बनायी और मेरे गले में डाल दिया। राजकुमारी को मेरा यह नजराना है—यह कहकर वह मुस्कराया। मैंने देखा, जब वह माला मुझे पहना रहा था, उस समय उसकी आँखों में एक खास चमक थी।

उस वक्त तक तो मैं कुछ समझ न सकी। मगर जब रात में सो रही थी तो मुझे ऐसा लगा जैसे कोई मुझे काफी दूर से मधुर आवाज में पुकार रहा है। इस तरह लगातार हर रात को मुझे पुकारने की मधुर आवाज सुनायी पड़ती। परेशान हो गयी मैं। आखिर

एक रात को वैसे ही पुकार की आवाज सुनायी दी। मैं बाहर छत पर निकल आयी और फिर न जाने किस अज्ञात आकर्षण के वशीभूत होकर मेरे कदम महल के फाटक की ओर बढ़ गये। उस समय मुझे काफी बेचैनी का अनुभव हो रहा था। मैं अपने आपको सँभाल नहीं पा रही थी।

रात आधी से ज्यादा गुजर चुकी थी। चारों ओर सन्नाटा था। आश्चर्य की बात यह थी कि फाटक के पहरेदार गहरी नींद में सो रहे थे। फाटक खुला हुआ था। मैं जैसे ही फाटक के सामने पहुँची, तो देखती क्या हूँ कि वही जादूगर नट अपनी दोनों बाँहें फैलाये खड़ा है वहाँ। उसने तुरन्त मुझे अपनी बाँहों में समेटकर चूम लिया और उसी क्षण मुझे लेकर हिमालय की ओर चला गया। मैं काफी खुश थी। ऐसा लगा मानो जनम-जनम से आत्मा जिस चीज को खोज रही थी वह उसको मिल गयी। जादूगर का नाम था रामाचारी, दक्षिण भारतीय था। पर था काफी सुन्दर और आकर्षक व्यक्तित्व का। वह मुझे हिमालय की एक ऐसी सुनसान घाटी में ले गया जहाँ नागा सम्प्रदाय के कई तांत्रिक रहते थे। वे सभी काफी शक्तिशाली और ऊँचे किस्म के साधक थे। उन साधकों का एक गुरु था जिसकी उम्र काफी थी। मगर देखने में जवान लगता था। उसके पास स्फटिक पत्थर का एक ग्लोब था, जिसमें दुनिया की बहुत सारी गतिविधि देखा करता था। हमेशा खामोश रहता था वह। मगर वह क्या कहना चाहता है उसे लोग अपने आप समझ जाते थे।

पूरे साठ वर्ष मैं उस वातावरण में रही। इस दरम्यान कई दुर्लभ तांत्रिक साधना कर मैंने तरह-तरह की सिद्धियाँ प्राप्त कीं। आखिर में गुरु ने मुझे तंत्र की मृत संजीवनी विद्या बतलाना शुरू किया, मगर उसकी साधना काफी लम्बी थी। कम-से-कम उसके लिए पच्चीस साल के समय की जरूरत थी। मेरी उम्र थी उस समय पचहत्तर साल। मेरी जिन्दगी के सिर्फ पाँच साल और शेष थे। गुरु ने मुझे एक ऐसी तांत्रिक क्रिया बतलायी जिसकी सहायता से किसी भी युवती की अकालग्रस्त मृत्यु की काया में प्रवेश किया जा सकता था और उस काया में जीवित होकर उसकी शेष आयु भोगी जा सकती थी। इस तरह एक सौ एक लाश पर बैठ कर नहाने के बाद हमेशा के लिए वह शरीर और उसकी आयु मेरी हो जायेगी।

खुशी से झूम उठी मैं। एक विलक्षण अमोघ सिद्धि के अलावा मुझे एक नयी देह और लम्बी उम्र भी मिलने वाली थी। रामाचारी की सहायता से बहुत जल्द एक लाश मिल गयी। फिर हम दोनों उसे लेकर इस गुफा में आ गये। किसी ऊँचे परिवार और खानदान की युवती की लाश थी वह। तांत्रिक क्रिया के जरिये मैं कभी कुछ समय के लिए उस मृत युवती के शरीर में चली जाती और जीवित होकर जंगलों और पहाड़ों पर घूमती। उस समय मेरा पहला शरीर इसी गुफा में पड़ा रहता।

अब मेरे सामने थी समस्या हर बार एक नयी लाश की। रामाचारी ने उसे भी हल कर दिया। एक दिन उसको जंगल में कहीं चीता का बच्चा मिल गया। उठा लाया उसे। पाँच-छः साल में सम्मोहन क्रिया के जरिए रामाचारी ने चीता के उस बच्चे को ऐसा प्रशिक्षित कर दिया कि बड़े अनोखे ढंग से आदमी को मार कर यहाँ लाने लगा। मेरी

साधना शुरू हो गयी। जब वह चीता किसी को मार कर लाता तो मैं उसकी लाश पर बैठ कर नहाती और बाद में लाश को नदी में बहा देती।

अब तक तुम कितनी लाश पर बैठकर नहा चुकी हो ?

पूरे सौ लाशों पर। सिर्फ एक लाश पर नहाना बाकी है। पर मेरा अनुष्ठान पूरा न होगा, ऐसा लगता है मुझे।

क्यों ?

तुम लोगों ने चीता और रामाचारी दोनों को मार डाला। भला अब कौन देगा लाकर लाश ?

क्या वह साधु जैसा व्यक्ति रामाचारी था ?

हाँ! वह रामाचारी ही था। रोहिणी ने लाल-लाल आँखों से मेरी ओर देखते हुए जवाब दिया और उसी के साथ ही उछलकर वह मेरे ऊपर कूद पड़ी। मेरे सँभलने के पहले ही शेरनी की तरह उसने मुझे दबोच लिया और उसके नुकीले दाँत मेरी गर्दन में पूरी तरह धँस गये। मैं चीखना चाहा, पर चीख न सका।

तभी गोली की आवाज से पूरी गुफा काँप उठी और दूसरे क्षण रोहिणी की देह छिटक कर मुझसे अलग हो गयी।

साँझ हो जाने के बाद जब मैं गुफा से बाहर नहीं निकला तो मि० ब्राउन मुझे खोजते हुए वहाँ पहुँच गये थे। मुझे उस हालत में देखकर उन्होंने युवती पर गोली चला दी थी। यदि उसके आने में थोड़ी-सी भी देर हो गयी होती तो निस्सन्देह वह भयंकर साधिका मुझको मार डालती और मेरी लाश पर बैठकर नहाती। इस तरह वह अपने अनुष्ठान को पूरा कर लेती। मगर यह क्या ? युवती के शरीर में मरने के पहले ही रोहिणी अपने निज शरीर में चली गयी थी। अब वह बुढ़िया के शरीर में जीवित हो उठी थी।

देखा, बुढ़िया जोर-जोर से काँप रही थी और उसका चेहरा स्याह होता जा रहा था। कुछ देर बाद बुढ़िया का सिर एक ओर झूल गया। वह मर चुकी थी। शायद उसकी उम्र पूरी हो गयी थी।

एक प्रकार से वह रोमांचकारी और अविश्वसनीय कहानी यहीं समाप्त हो जाती है। मगर रोहिणी ने भीतर जो तूफान खड़ा कर दिया था, कौतूहलों और जिज्ञासाओं की सृष्टि कर दी थी, उसने मुझे एकबारगी व्याकुल कर दिया था।

मैं उसी क्षण से इस रहस्यमयी बातों का पता लगाने में जुट गया। आपको यह जानकर निश्चय ही आश्चर्य होगा कि मेरे इस प्रयास को सफल करने में अकालग्रस्त उस युवती की आत्मा ने महत्वपूर्ण सहयोग दिया मुझे।

अन्त में मैं आपको बतला दूँ—मि० ब्राउन इस समय लन्दन में हैं और रामाचारी के उस पालतू मगर खूनी चीते की खाल उनके ड्राइंग रूम में रखी हुई है।

OOO

१०

अघोरी के चमत्कार

अघोरियो की सिद्धियो और उनके चमत्कारो के संबंध मे आपने अनेक लेख पढ़े होंगे। मगर कभी यह भी सोचा है कि उनके पास कैसे इस प्रकार की चमत्कारपूर्ण सिद्धियाँ आ जाती हैं, जिनके बल पर वे अलौकिक कार्य कर दिखलाते हैं। तांत्रिक साधना का एक सशक्त पक्ष परामनोविज्ञान पर आधारित है। उस पक्ष के अंतर्गत कई साधना और संप्रदाय हैं, जिनमें एक है अघोर संप्रदाय। 'घोर' शव्द का मतलव 'संसार' है। 'अ' नकारात्मक है, यानी जो संसारी नहीं है वह अघोरी है। इसी अघोरी शब्द का बिगड़ा रूप औघड़ है। यह अति प्राचीन संप्रदाय है। मगर इससे भली-भाँति लोग परिचित हुए बाबा कीनाराम के समय से। गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन बाबा कीनाराम अघोर संप्रदाय के उच्चकोटि के सिद्ध महात्मा और संत थे, जिनकी समाधि वाराणसी के शिवाला मुहल्ले में आज भी दर्शनीय है। शरीर, संसार, समाज की मर्यादा के बंधनों के कारण मन में जड़ता आ जाती है। इस जड़ता को दूर करने के लिए मन का स्वतंत्र होना जरूरी है।

इस संप्रदाय में मल-मूत्र का सेवन, अन्य नशीली वस्तुओं का प्रयोग, नग्न विचरण, गाली-गलौज आदि इस दिशा में प्रयास है। इन सबसे मन की वृत्तियाँ उन्मुक्त होने लगती हैं और मन की जड़ता दूर हो जाती है।

मन की दो मुख्य अवस्थाएँ हैं। प्रथम है चेतन, दूसरी अचेतन। अचेतन मन में अविश्वसनीय और अकल्पनीय शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं। वे शक्तियाँ जब अचेतन मन की सीमा लाँघकर चेतन मन में प्रकट होती हैं, तो उनके चमत्कारभरे कौतुक साधारण लोगों को हतप्रभ कर देते हैं। साधारण तौर पर जीवित मनुष्य चेतन मन के द्वारा कार्य करता है, किन्तु मरने के बाद जब शरीर का बंधन टूट जाता है तो उस स्थिति में वह अचेतन मन की अवस्था में क्रियाशील हो उठता है। इसीलिए प्रेतात्माओं में मनुष्य से अधिक शक्ति, सामर्थ्य और कार्यक्षमता होती है। अगर किसी जीवित मनुष्य के अचेतन मन से इस प्रकार की किसी प्रेतात्मा का स्थाई संबंध जुड़ जाए तो वह मनुष्य चेतन मन के स्थान पर अचेतन मन के द्वारा कार्य करने लग जाएगा और वह जो कार्य करेगा, वह

हतप्रभ करने वाला, अलौकिक होगा, चमत्कारपूर्ण होगा और होगा अमानवीय। इसी को हम साधारण रूप से सिद्धि के नाम से पुकारते हैं।

अघोर साधना और उसकी जैसी अन्य तांत्रिक साधनाओं के शास्त्रविहीन सिद्धांतों को विज्ञान के मूलभूत तथ्यों से बहुत बल मिलता है। चेतन मन के विचार तरंगों को केंद्रित कर जिस अवस्था की प्राप्ति होती है, उसी को साधना में ज्ञान की संज्ञा दी गयी है। अचेतन मन की विचार तरंगों को केंद्रित करने पर जिस अवस्था की प्राप्ति होती है उसको योग में सविकल्प समाधि कहते हैं। इसी प्रकार उसके दूसरे रूप के अंतर्गत उठने वाली विचार तरंगों को केंद्रित करने पर साधक को जिस स्थिति का अनुभव होता है, उसे योग में निर्विकल्प समाधि कहते हैं।

निर्विकल्प समाधि की स्थिति में केन्द्रित हुई विचार तरंगें अल्फा तरंगों का रूप धारण कर लेती है। उस समय अधिक मात्रा में मस्तिष्क से वे निकलती हैं और उनकी गति भी अधिक तीव्र होती है। किन्तु सविकल्प समाधि की स्थिति में उनकी मात्रा और गति शून्य होती है। उस समय व्यक्ति से प्रचुर मात्रा में बीटा, अल्फा और डेल्टा नामक तरंगें निकलती हैं। यदि ये तीनों तरंगें आपस में मिल जायें तो शरीर को पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति प्रभावित नहीं कर पातीं।

कुछ वर्ष पूर्व वाराणसी में नगवा घाट पर एक ऐसे ही अघोरी साधक रहते थे। रात्रि में शून्यमार्ग से वे विचरण किया करते थे। एब्रीला की संत टैरेसा जब अपनी उपासना के समय ध्यानावस्थित होती थीं तो कभी-कभी धरती के ऊपर उठ जाती थीं। वह शक्ति कभी-कभी प्रकृति की ओर से भी उपहार रूप में लोगों को मिली हैं। १८५२ में मैसाच्युसेट्स के बार नामक स्थान पर श्रीमती चेनसी का शरीर अचानक धीरे-धीरे ऊपर उठकर फर्श और छत के बीच अधर में लटक गया था। इस प्रकार हवा में उड़ने की शक्ति डॉ० डी० होम नामक एक व्यक्ति में थी। १८६८ ई० में लंदन में एक विशेष समारोह में वे हाल के फर्श से उठकर अचानक छत से जा लगे और खिड़की से निकलकर उड़ते हुए तीसरी मंजिल में पहुँच गये थे। सविकल्प समाधि की अवस्था में यदि अल्फा तरंगों का संबंध केवल बीटा तरंग से जुड़ जाए तो हजारों मील दूर बैठे व्यक्ति के विचारों और इच्छाओं का तुरन्त ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

अभी कुछ समय पहले इसी प्रकार के एक अघोरी महात्मा मानसरोवर से पधारे थे। वे दूर और समीप के व्यक्तियों के विचार, भाव-इच्छाओं को तुरन्त जान-समझ लेते थे। यही नहीं तीन-चार घण्टे बाद कौन विचार उत्पन्न होगा? कौन से भाव उत्पन्न होंगे? और कौन-सी इच्छा जागृत होगी? यह भी बतला दिया करते थे। वास्तव में जो बतला देते थे वही होता था। इसी प्रकार यदि प्रखर और तीव्रगामी अल्फा तरंगों के साथ डेल्टा तरंग मिल जाए तो दूर बैठे किसी भी व्यक्ति के विचारों को जानने-समझने के अलावा उसके स्वरूप का भी वर्णन करना संभव है।

पूना के बल्लभ शास्त्री निर्विकार अपने समय के बहुत बड़े वैद्य थे। १९४९ में वाराणसी में काशीलाभ के लिए आए थे। उस समय उनकी आयु ९० वर्ष की थी। वे

अपनी माता का एक चित्र बनवाना चाहते थे। मगर वे जिस प्रकार माता के रूप का वर्णन करते थे उसके अनुसार कोई भी चित्र नहीं बना पाया। बड़े ही दुःखी हुए। माता का कोई फोटोग्राफ भी नहीं था जिसके आधार पर चित्र बनवाया जा सके। उन्हीं दिनों वाराणसी के प्रसिद्ध महात्मा हरिहर बाबा के निकट एक अघोरी संन्यासी पधारे थे। उनके नेत्रों में विचित्र प्रकार की प्रखर ज्योति थी, जो अँधेरे में भी चमकती थी। वे यदि जलते हुए दीपक की ओर ताक देते तो वह तुरंत बुझ जाता था। उन्हें जब निर्विकार महोदय की समस्या मालूम हुई तो उन्होंने उनको बुलवा भेजा। फिर अपने सामने आसन देकर बैठने को कहा। जब निर्विकार महोदय बैठ गये तो बोले, 'आप अपनी माता जी के स्वरूप को विधिवत ध्यान में लाइये।' निर्विकार महोदय ने वैसा ही किया। जब वे ध्यान करने लगे तो संन्यासी महोदय उनके हृदय पर नेत्र स्थिर कर सामने रखे कागज पर पेंसिल से स्वरूप को हू-ब-हू उतारने लगे। कुछ ही मिनटों में माता जी का रेखाचित्र तैयार हो गया। उस समय मैं भी वहाँ उपस्थित था। निर्विकार महोदय बहुत ही प्रसन्न हुए। वे अघोरी संन्यासी की कुछ सेवा करना चाहते थे, मगर उस साधक ने स्वीकार नहीं किया।

अघोरी संन्यासियों द्वारा अपने मूत्र अथवा मल को इच्छानुसार खाद्य और पेय पदार्थों में परिवर्तन करना भी कम आश्चर्य की बात नहीं है। कुछ समय पूर्व एक अघोरी संन्यासी से मेरी भेंट हरिश्चन्द्र घाट के श्मशान पर हुई थी। वे घाट की सीढ़ियों पर बैठे आकाश की ओर शून्य में बराबर ताकते रहते थे। मैं जब भी उन्हें देखता था तो इसी मुद्रा में पाता था। वे अंग्रेज थे। द्वितीय महायुद्ध में वे महाशय फौज में उच्च पद पर थे। एक बार घमासान युद्ध हुआ। इनके तरफ के बहुत सारे जवान मारे गये। स्वयं वे भी घायल होकर युद्ध-भूमि में बेहोश पड़े रहे, दो दिन, दो रातें। उसी अवस्था में सहसा उनकी बेहोशी टूटी तो उन्होंने देखा, चारों ओर गहन निस्तब्धता व्याप्त है। चारों ओर बिखरी लाशें ही लाशें और उनके बीच में वे अकेले। किसी प्रकार उठकर बैठे तो देखते क्या हैं कि एक लम्बी औरत जिसके शरीर का रंग बिल्कुल काला था और बाल बिखरे हुए थे पूर्ण नग्न थी। उसके स्तन काफी लम्बे, बड़े-बड़े और नीचे की ओर झूल रहे थे। वह बगल में एक झोली-सी लटकाये हुए थी और उसके हाथ में एक बड़ा-सा खड्ग भी था। बड़ी ही इत्मीनान से लाशों के बीच घूम-घूमकर उनके चेहरों की ओर देख रही थी। कभी किसी लाश को उठाकर खड्ग से उसकी गर्दन काट देती और मुण्ड को झोली में रख लेती थी।

बड़ा ही भयंकर और आश्चर्यजनक दृश्य था। मगर पहले उन्हें विश्वास नहीं हुआ, सोचा भ्रम है। वे बार-बार आँखों को मलकर उस औरत की ओर देखते रहे। सहसा वह लाशों को कुचलती हुई उनके पास आई और गौर से देखा उसने। भय से रोमांचित हो उठे वे। उस औरत की लाल अंगारों-सी दहकती आँखें उस निविड़ अंधकार में भी चमक रही थीं। सहसा एक भयंकर अट्टहास गूँज उठा उस निस्तब्ध वातावरण में। फिर वह औरत बाल पकड़कर उन्हें खींचती हुई बहुत दूर ले गयी और उसी अवस्था में फिर वे बेहोश हो गये। इस बार जब उनकी बेहोशी टूटी तो उन्होंने अपने आपको हजारों मील

दूर हिमालय की एक गुफा में पाया। वह गुफा एक अघोरी साधु की थी। कुछ दिनों तक वे उसी गुफा में रहे, फिर वाराणसी चले आये।

उनके जीवन में अचानक भारी परिवर्तन हो गया। वे स्वयं उस परिवर्तन को नहीं समझ पाते थे। इस प्रश्न के उत्तर को भी न पा सके थे कि हजारों मील दूर हिमालय की उस गुफा में वे कैसे पहुँच गये थे? एक विचित्र और अविश्वसनीय घटना थी जिसने उन्हें फौजी आफिसर से अघोरी संन्यासी बना दिया था और इतना ही नहीं, उनमें अलौकिक शक्ति भी भर दी थी। वे अपने मल-मूत्र को इच्छित खाद्य-पदार्थों में परिवर्तन कर दिया करते थे। फलों को हवा में हाथ हिलाकर प्राप्त कर लेना तो उनके लिए सरल था। एक बार मूसलाधार वर्षा हो रही थी। श्मशान पर लगी एक चिता वर्षा के कारण जल नहीं पा रही थी। वे महाशय अपने स्थान से उठे और जाकर चिता पर पेशाब करने लगे। लोगों को घोर आश्चर्य हुआ। पेशाब करते ही चिता धू-धू जलने लगी। ऐसा लगा मानो सेरों घी पड़ गया हो उसमें। वर्षा के पश्चात् भी चिता से लंबी-लंबी लपटें निकल रही थीं। एक बार उन्होंने मुझे श्मशान में पड़े गुलाब का एक ताजा खिला हुआ फूल दिया, 'बोले, रख लो अपने पास।' वर्षों तक वह फूल मेरी आलमारी में पड़ा रहा। परन्तु न वह मुरझाया और न ही म्लान हुआ। बराबर खिला और महकता रहा।

यह सब चमत्कार आप कैसे करते हैं? यह पूछने पर उन्होंने मुझे बतलाया कि इस संबंध में वे कुछ जानते-समझते नहीं। वह केवल सोचते भर हैं कि ऐसा होना चाहिए और वह हो जाता है।

साधारण मनुष्य में इच्छा तो होती है, मगर उसमें शक्ति नहीं होती। एक इच्छा को पूर्ण करने के लिए उसे शारीरिक, मानसिक, व्यावहारिक, क्रियात्मक सभी प्रकार की शक्तियों का प्रयोग करना पड़ता है तब कहीं जाकर इच्छा पूर्ण होती है। मगर योगियों में ये सारी शक्तियाँ उनकी इच्छा के साथ-साथ उत्पन्न हो जाती हैं, जिसके फलस्वरूप तत्काल इच्छा के अनुसार परिणाम सामने आ जाता है। इच्छा और उसकी शक्ति दो अलग-अलग वस्तुएँ हैं। दोनों को संयुक्त करती हैं—अल्फा और बीटा तरंगें। किसी काम की इच्छा होती है। इच्छा के साथ-साथ मन में बीटा तरंगें उत्पन्न होने लगती हैं। यदि उस समय अल्फा तरंगें प्रवाहित होने लग जाएँ तो बीटा तरंगें उसमें घुल-मिलकर वे शक्तियाँ उत्पन्न करने लग जाती हैं, जिनके द्वारा इच्छा क्रियान्वित और साकार होती है।

यह तो हुई यौगिक प्रक्रिया के वैज्ञानिक संस्करण की बात। अघोरी संन्यासियों द्वारा कभी-कभार ऐसे अलौकिक चमत्कार भी देखने-सुनने में आते हैं जिनसे आश्चर्यचकित और हतप्रभ हो जाना पड़ता है। यह तो निश्चित है कि इस सृष्टि में चमत्कार नाम की कोई वस्तु नहीं है। सब कुछ प्रकृति के नियम के अनुसार ही होता है। हाँ, यह बात अवश्य है कि जब तक हम रहस्य से परिचित नहीं होते, तभी तक वह चमत्कार है।

अघोरियों और तांत्रिकों के चमत्कारपूर्ण असंभव से असंभव कार्य करने के पीछे जो शक्ति काम करती है, वह है प्रेत शक्ति। यह सत्य है कि सिद्ध अघोरी बाबा कीनाराम

ने कई मुर्दों को जीवित किया था और आश्चर्यचकित कर देने वाली प्रेतलीला भी अपने शिष्यों को दिखलाई थी। किन्तु इस अविश्वसनीय सत्य को मैंने अपने जीवन में एक बार प्रत्यक्ष देखा था।

उन दिनों मैं कलकत्ता में रहता था और हर शनिवार को साँझ के समय काली जी का दर्शन करने जाया करता था। एक प्रकार से यह मेरा नियम-सा बन गया था। काली घाट में महाश्मशान भी है। दर्शन करने के बाद थोड़ी देर के लिए वहाँ जाकर बैठता था। न जाने क्यों श्मशान में बैठ कर काफी देर तक जलती हुई चिता की ओर अपलक निहारा करता था?

एक दिन ऐसे ही बैठा चिता की ओर देख रहा था कि सहसा मेरी दृष्टि एक फटे-पुराने चिथड़ों में लिपटे व्यक्ति पर पड़ी। उसका रंग काला था। सिर के बाल रूखे-सूखे जटाजूट जैसे थे। किन्तु था वह पागलों के जैसा। उसके एक हाथ में भाँति-भाँति की अधजली हड्डियाँ थीं और दूसरे हाथ में था कच्चे बाँस की लाठी। उसकी आँखों में अमानवीय ज्योति थी। जलती हुई चिताओं की ओर से घूमकर वह मेरे पास आकर खड़ा हो गया और पीले दाँतों को बाहर निकालकर बोला, 'भूख लगी है बाबू! कुछ खिलाओगे?'

अकस्मात मेरे मुख से निकला, 'क्या खाओगे बोलो, रसगुल्ला?' न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर तुरन्त बाजार जाकर एक हँड़िया रसगुल्ला ले आया और उसे थमा दिया। वह वहीं इत्मीनान से बैठकर रसगुल्ला खाने लगा। सब खा लेने के बाद उसी हँड़िया में भरकर पानी पिया और फिर उसमें श्मशान का कोयला भर दिया। बड़ा अजीब लगा मुझे। थोड़ी देर बाद वापस लौट आया मैं। घर पहुँचकर आश्चर्यचकित हो उठा। देखा, रसगुल्ले से भरी वही हँड़िया मेरी आलमारी के भीतर रखी हुई है। किसी प्रकार की शंका या भ्रम की गुंजाइश न थी। निश्चय ही वह कोई सिद्ध अघोरी था। समझने में देर न हुई।

बाद में तीन शनिवार तक मुझसे उसकी भेंट न हुई। चौथे शनिवार को दर्शन करने के बाद वहाँ पहुँचा तो एक मुर्दे को घेरे हुए बहुत से लोग खड़े थे। मुर्दा किसी युवक का था। बिजली का मिस्त्री था वह। करेंट लगने से मृत्यु हुई थी उसकी। तीन बहनें, दो भाई और माता-पिता थे। केवल परिवार में वही कमाने वाला था। खाट के एक तरफ भाई-बहनें खड़े रो रहे थे। सिरहाने बैठकर माँ करुण स्वर में विलाप कर रही थी। बड़ा ही हृदय-विदारक दृश्य था। न जाने कब-किधर से वह पगला अघोरी भीड़ में घुस आया और जोर-जोर से चिल्लाकर कहने लगा—ओ! जिन्दा आदमी को भला क्यों जलाने ले आये हो?

क्या बकते हो? भागो यहाँ से। किसी ने भीड़ में से कहा।

भागूँ क्यों? तेरे बाप का श्मशान है। फिर मुर्दा के सिरहाने जाकर खड़ा हो गया और उसकी गर्दन पकड़कर उठाने लगा।

यह क्या? लोगों की आँखें आश्चर्य और भय से फैल गयीं। कुछ समय पहले जो मुर्दा था और जिसको जलाने के लिए लाया गया था वह हाथ-पैर झटककर उठ बैठा।

कुछ लोग तो यह दृश्य देखकर भाग खड़े हुए। जो लोग बचे थे वे पत्थर की तरह खड़े सब कुछ देखते रहे। तुरंत डॉक्टर बुलाया गया। उसने आकर जाँच की। वह आदमी सचमुच जीवित हो गया था। मगर उसके भीतर क्या रहस्य था? मुझसे छिपा नहीं था। माँ का करुण विलाप सुना नहीं गया उस पागल अघोरी से। उसने अपने कौशल से श्मशान में भटकने वाली प्रेतात्माओं को मृत शरीर में प्रवेश करा दिया था।

इस प्रकार की अनेक घटनाएँ हैं। पुनर्जीवित होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। इस प्रसंग में यह बात अवश्य ध्यान देने योग्य है कि एक बार जो आत्मा शरीर छोड़कर चली जाती है तो पुनः उसी शरीर में प्रवेश नहीं कर सकती। शरीर के मृत हो जाने के काफी समय तक मस्तिष्क से अल्फा तरंगें निकलती रहती हैं। उन तरंगों से उत्पन्न विद्युत चुंबकीय ऊर्जाएँ आसपास भटकती प्रेतात्माओं को अपनी ओर आकर्षित करती हैं।

पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण में निम्नकोटि से लेकर उच्चकोटि तक की विचरती आत्माओं के विचार तरंगों को आकर्षित करते ही हैं इसके अतिरिक्त यदि ग्रह-नक्षत्रों अथवा लोक-लोकांतरों में प्राणियों का अस्तित्व है तो उनके विचारों को भी आकर्षित करती है। औघड़ लोग इसी तथ्य के आधार पर आत्मा के संस्कार, सिद्धान्त, उनकी वासना, कामना, इच्छा आदि को जान-समझकर उनसे असंभव कार्य करा लेते हैं। इतना ही नहीं, पगले अघोरी की तरह किसी भी मृत शरीर में उन्हें प्रवेश करा देते हैं। उच्चकोटि के अघोरी साधक तो स्वयं अपना शरीर छोड़कर किसी भी मृत शरीर में प्रवेश कर जाते हैं किन्तु वे ऐसा तभी करते हैं जब उन्हें मृत होने का आभास मिल जाता है और उनकी साधना अपूर्ण रहती है। अतः अपनी साधना को पूर्ण करने के लिए अपने जर्जर शरीर का त्याग कर किसी अकाल मृत्यु को प्राप्त व्यक्ति की शेष आयुपर्यन्त जीवित रहते हैं। यह वास्तव में योग की परकाया प्रवेश है। किन्तु इसके जानकार उच्चकोटि के अघोरी संत ही होते हैं।

साधारण अघोरियों के वश की यह बात नहीं है।

इस प्रसंग में यह भी बतला दूँ कि तंत्र की सर्वोच्च साधना शव साधना भी इसी विद्या के अंतर्गत है। वास्तव में यह भयंकर साधना है। उच्चकोटि की आत्माओं से संपर्क साधकर उनसे प्रत्यक्ष वार्त्तालाप करने का तथा त्रिकाल की बातों का सर्वोच्च साधन है यह। बंगाल के प्रसिद्ध तांत्रिक राखालचन्द्र भट्टाचार्य ने मुझे शव साधना के गूढ़ गोपनीय रहस्यों से परिचित कराया था और उनके द्वारा बतलाई गयी गुप्त तांत्रिक क्रिया के अनुसार स्वयं मैंने शव साधना भी की थी। बड़ी भयंकर और प्राणघातक है यह साधना।

OOO

११

चमत्कारी मूर्ति

अद्भुत शक्ति थी उस माला में गुथी हुई मूर्ति में। वह आगामी घटनाओं के बारे में सूचना देती थी। उसी की शक्ति से क्या से क्या हो गया, लेकिन सफलता के मद में एक ऐसी भूल हो गयी, जिसने सब कुछ उलट-पुलट कर दिया

प्रस्तुत रचना मेरे जीवन की अविस्मरणीय, अद्‌भुत कहानी है। वैसे तो मेरा सारा जीवन ही अविश्वसनीय और अलौकिक घटनाओं से भरा है, किन्तु जो घटना आज आपको बताने जा रहा हूँ, वह सबसे ज्यादा विलक्षण है।

उन दिनों मैं रंगून विश्वविद्यालय में बौद्ध धर्म और दर्शन का प्रवक्ता था। वहाँ कार्य करते कुछ ही दिन हुये थे कि लड़ाई छिड़ गयी और मुझे वापस लौटने के लिए वाध्य होना पड़ा। जब मेरा स्टीमर ईरावदी नदी के मुहाने के पास पहुँचा तो अचानक उसमें खराबी आ गयी। स्टीमर के इंजीनियरों के काफी कोशिशों के बावजूद भी मशीन ठीक नहीं हुई। अन्त में कलकत्ता से दूसरा स्टीमर भेजने की सूचना दी गयी, किन्तु उसे भी आने में दो दिन की देर थी।

स्टीमर में भेड़-बकरी की तरह भरे हुए यात्री ऊबने लगे। समय काटने के लिए कुछ लोग समुद्र तट पर घूमने-टहलने निकल गये। मैं भी उन्हीं लोगों में से था। ईरावदी नदी से मीलों तक फैला हुआ घना जंगल है। वह लम्बे-लम्बे बाँसों के वृक्षों, आदमकद घासों और विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों से भरा है। घना तो इतना है कि दोपहर के समय भी सूरज की रोशनी धरती का स्पर्श नहीं कर पाती।

सबेरे का समय था। मौसम काफी सुहावना था। आकाश में बादल घिरे हुए थे। समुद्री हवा के स्पर्श से तन-मन पुलकित हो रहा था। मैं विचारों में खोया हुआ नदी के किनारे-किनारे आगे बढ़ने लगा। लगभग एक मील चलने के बाद नदी के दोनों ओर जंगल का सिलसिला शुरू हो गया। मैं वापस लौटने की सोच ही रहा था कि घनी झाड़ियों के पीछे से अचानक तीस-चालीस जंगली निकल पड़े और उन्होंने चारों तरफ से

मुझे घेर लिया। उनके काले तन पर केवल कमर में काले रंग की खाल लिपटी हुई थीं। इसके अलावा बाकी सारा शरीर बिल्कुल नग्न था। उन सबके बाल बड़े-बड़े थे और हाथों में उन्होंने भाले ले रखे थे।

आप मेरी मुसीबत का अन्दाजा लगाइये। मैं बुरी तरह से घबड़ा गया था। पसीना छूटने लगा। वे सब बर्मी भाषा बोल रहे थे, जिसे थोड़ा-बहुत मैं समझ रहा था। एक जंगली उनका मुखिया-सा लग रहा था, उसे मैंने अपनी स्थिति समझाई और रास्ता छोड़ देने का आग्रह किया, लेकिन वे नहीं माने और मुझे ले जाकर अपने सरदार के सामने खड़ा कर दिया।

मैंने सुना था कि उस जंगल में आदमखोर जंगली रहते हैं, जो इन्सानों को मारकर, नोच-नोच कर उनका कच्चा मांस खाते हैं। मैंने अब अपने जीवन की उम्मीद छोड़ दी। जब वे मुझे पकड़ कर ले जा रहे थे, तो मेरी हालत उस बकरे की तरह थी, जिसे काटने के लिए ले जाया जा रहा हो। मैंने तो समझा था कि उनका सरदार भी खूँख्वार और जानवर की तरह भयानक होगा तथा मुझे देखते ही वह नोच-नोच कर खाना शुरू कर देगा, लेकिन वह तो फरिश्ता जैसा निकला। उसने मुझे सांत्वना दी कि वे लोग हमेशा आदमी नहीं खाते, सिर्फ खास-खास त्योहारों पर अपने देवता के सामने आदमियों की बलि देते थे और बलि भी उन आदमियों की दी जाती जो साठ साल के ऊपर के हों या उन औरतों की, जो बाँझ हों।

उस नेकबख्त सरदार ने बन्दर का मांस परोस कर मेरा स्वागत किया और अपनी ही झोपड़ी में मेरे ठहरने की व्यवस्था कर दी।

मैं समझ गया कि अब छुटकारा मिलने वाला नहीं है। मेरे एक सहयात्री मित्र थे। मेरे सामानों को वे कलकत्ता पहुँचा देंगे, इसलिए मुझे उसकी चिन्ता नहीं थी, चिन्ता तो मुझे अपनी थी कि अब मैं कैसे वापस लौटूँगा ?

मैंने ध्यान दिया कि सरदार मेरी कलाई में बँधी सुनहरी कीमती घड़ी को बड़ी ललचायी आँखों से देख रहा था। एकाध बार उसने उसे अपने हाथों में भी लेकर देखा।

और मैंने जुआ खेल डाला।

घड़ी उतार कर मैंन सरदार को दे दी। बस, उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। बदले में उसने अपनी बस्ती की जवान, सुन्दर और कम उम्र की लड़कियाँ और कीमती पत्थर देने का वादा किया, किन्तु मेरी नजर उसके गले में पड़ी हरे मोतियों की कीमती माला पर थी। उस माला में लाकेट की जगह स्फटिक जैसे पत्थर की एक विचित्र मूर्ति लगी हुई थी, जिसमें से रात के समय रुपहली किरणें निकलती थीं।

फिर भी मैंने उस समय अपनी इच्छा जाहिर नहीं की थी। आखिर जब मैं झोपड़ी में जाकर चुपचाप लेट गया, तो वह अपने आप मेरे पास आया और कहने लगा, 'मैं तुम्हारे मन की बात जान गया। तुम मेरे गले में पड़ी यह माला चाहते हो न!'

मैंने सिर हिलाकर अपनी स्वीकृति प्रकट कर दी।

वह बोला, 'हरे मोतियों से कीमती इसकी मूर्ति है। हीरे-जवाहरातों की कीमत

इसके सामने कुछ भी नहीं है। यह मूर्ति तुमको पुर असर और अमीर बना देगी। इतना ही नहीं, बल्कि खास-खास बातों के अलावा किसी घटना के घटित होने के चौबीस घण्टे पहले ही यह उसके बारे में स्वप्न में बता देगी।' यह कह कर उसने गले से उतार कर वह माला मुझे थमा दी।

मैंने ध्यान से मूर्ति की ओर देखा—चमकते पत्थर पर एक विचित्र मानवाकृति खुदी हुई थी, जिसका सिर राक्षस जैसा था।

सरदार ने बतलाया कि वह चमत्कारी मूर्ति गाँव के इष्ट देवता की है, जिसे चौदह बाँझ औरतों के खून से नहलाया गया है, किन्तु वह असर तभी करेगी, जब गले में रहेगी। उस मूर्ति में दैवी ताकत थी।

सरदार के उस तोहफे का पहला करिश्मा दूसरे ही दिन देखने को मिल गया।

उस रोज सरदार ने मेरी दोस्ती की खुशी में पूरी बस्ती को दावत दी थी। गाँव के सिरे पर इष्ट देवता का 'थान' था। दोपहर से ही लोग वहीं जमा होने लगे। मर्दों की तरह जवान, अधेड़, बूढ़ी औरतें भी सिर्फ कमर में काले रंग की खाल लपेटे हुए थीं। सबके हाथ में बाँस का डण्डा था। मैं सरदार के साथ जंगली घास की चटाई पर बैठा हुआ था।

ठीक समय पर थान के चबूतरे पर सूअर की बलि दी गयी, फिर एक जंगली भैंसा मारकर उसका मांस भूना गया। सभी ने बड़े चाव से वह मांस खाया और जी-भर कर शराब पीयी। मुझे भी मांस और शराब दी गयी मगर मैंने उसे छुआ तक नहीं। मुझे मिचली सी आ रही थी। न जाने किस चीज की बनी थी वह शराब।

थोड़ी देर बाद औरत-मर्द सब मिलकर नशे में नाचने लगे। सबसे अन्त में एक विचित्र खेल शुरू हुआ। जमीन पर शतरंज जैसा नक्शा बना हुआ था। बीच वाले दायरे में दस सुपाड़ी जैसी छोटी-छोटी कोई चीज रख दी गयी। सरदार ने मुझे उस चीज का नाम 'टक्की' बतलाया, फिर खेल के बारे में समझाते हुए कहा, 'खिलाड़ी अपनी 'टक्की' से उन 'टक्कियों' पर निशाना लगाता है, जो कम से कम निशाने में दसों टक्कियों को दायरे से बाहर कर देता है, उसी की जीत समझी जाती है।'

फिर सरदार ने मेरा मुकाबला एक ऐसे खूँख्वार जंगली से करवा दिया जो हमेशा तीन बार में दसों टक्कियों को दायरे से बाहर निकालने में सफल हो जाता था।

मैं सकपका गया, लेकिन सरदार ने मुझे हौले से याद दिलाया कि जब चमत्कारी मूर्ति मेरे पास है, तब फिर कैसी चिन्ता।

सरदार ने मुझे राय दी कि बाजी पर अपनी सूती जाकेट रख दूँ। वहाँ के लोग उसे काफी कीमती समझ रहे थे, मगर जब मेरी सूती जाकेट के बदले मुकाबले में खेलने वाले जंगली ने सोने की एक माला रख दी तो मुझे आश्चर्य हुआ। उसका एक-एक दाना अंगूर के बराबर था।

खेल शुरू हुआ। उस खिलाड़ी ने तीन ही निशाने में दसों टक्कियों को दायरे से

बाहर निकाल दिया। अब मेरी बारी आयी। दंग रह गया मैं! आपको भी सुन कर हैरानी होगी कि मेरी टक्की अपने आप मेरे हाथ से निकल कर तेज गोली की तरह दायरे में पहुँची और चक्कर लगाती हुई उसने सभी टक्कियों को दायरे से बाहर निकाल दिया।

मेरे जौहर ने सारी बस्ती में तहलका मचा दिया। अब तक एक ही निशाने में कोई भी दसों टक्कियों को निकालने में कामयाब नहीं हुआ था। मैंने वही करिश्मा कर दिखाया था। सब प्रशंसा भरी आँखों से मुझे देख रहे थे।

एक दिन पड़ोस के एक दूसरे कबीलों के सरदार ने मुझे अपनी बस्ती में अपना हुनर दिखाने का न्योता दिया। उस सरदार ने मेरा बड़ा शानदार स्वागत किया। मुझे लेने के लिए कई नावें आयी थीं। हर नाव पर एक जवान लड़की थी।

गाँव पहुँचने पर वह सरदार स्वयं मेरी अगवानी के लिए आया। उसने मेरे स्वागत के लिए इन्तजाम कर रखा था। कई बकरे हलाल किये गये। शराब का दौर चला। दावतें हुईं। काफी रात तक नाच-गाना होता रहा। जब मैं सोने के कमरे में पहुँचा तो वहाँ मेरे दिलबहलाव के लिए एक युवा लड़की पहले से ही मौजूद थी। सरदार ने मुझे बतलाया कि वह उस बस्ती की सबसे खूबसूरत लड़कियों में से एक थी। उसका रंग स्याह होने के बजाय हल्का गोरा था। सचमुच, कमाल की हसीना थी वह—यौवन बाढ़ पर था। वह रूपसी सारी रात मेरी सेवा करती रही। मैंने महसूस किया कि मेरे साथ रहने में उसे भी खुशी हुई थी।

मैं करीब दो हफ्ते वहाँ रुका रहा। दिन भर मेरे साथ सरदार रहता था और रात को वह युवती। उसकी देह में कुछ ऐसी मादकता थी, जिससे मेरी प्यास बढ़ती ही गयी। लगभग यही हालत उस युवती की भी थी। जब मेरे लौटने का समय हुआ तो वह रोने लगी। वह सचमुच मुझसे बेइन्तहा मुहब्बत करने लगी थी। मेरे साथ रहने के लिए वह सब कुछ छोड़ने को तैयार थी। मुझ पर भी उसका जाने कौन-सा जादू असर कर गया था कि उसको छोड़ कर जाने का मन ही नहीं हो रहा था।

इन दो हफ्तों में मैंने उस चमत्कारी मूर्ति के बल पर कितने ही चमत्कारपूर्ण कारनामे दिखाये थे। पूरी बस्ती के लोगों को इस बात का विश्वास हो गया था कि मेरे पास जरूर कोई दैवी शक्ति है।

उस लड़की की शादी होने वाली थी। यह बात मुझे मालूम थी। जब उसके मंगेतर को यह मालूम हुआ कि उसकी महबूबा मेरे साथ जाने वाली है तो वह एकदम बौखला उठा। उसने उस युवती का रात में मेरे पास रहना तो किसी तरह बरदाश्त कर लिया था, लेकिन अपनी होने वाली बीबी का हमेशा के लिए मेरे साथ चली जाना नहीं बरदाश्त कर सका था। परिणामस्वरूप वह हंगामा मचाने लगा, लेकिन सरदार मेरे ऊपर प्रसन्न था। उसे जब यह बात मालूम हुई तो उसने मेरी सहायता करने का आश्वासन दिया। आखिर उसी दिन फिर खेल का आयोजन किया गया और सरदार ने उसी लड़की को दाँव पर लगवा दिया। मुझे तो जीतना ही था, सो जीत गया। अब उस गाँव के कानून के हिसाब से वह हसीना हमेशा के लिए मेरी हो गयी थी। उसको अब

कोई मुझसे छीन नहीं सकता था।

इसके बाद मैं एक दिन भी वहाँ नहीं रुका। सरदार ने सुरक्षा के विचार से पन्द्रह-बीस आदमियों की एक टुकड़ी मेरे साथ कर दी। लगभग पन्द्रह दिन पैदल चलने के बाद मैं चटगाँव की सीमा पर पहुँचा। सीमा से चार-पाँच मील पहले ही जंगलों का सिलसिला खत्म हो जाता था। सरदार की भेजी हुई टुकड़ी मुझे वहाँ तक पहुँचाकर वापस लौट गयी। मैंने उस युवती के साथ चटगाँव की सीमा में प्रवेश किया। वहीं कुछ अच्छी और कीमती साड़ियाँ और ब्लाउज आदि खरीद कर उसे दिया एवं पहनने का तरीका भी बताया।

जब वह पहली बार सज-धज कर बादामी रंग की साड़ी में लिपटी हुई मेरे सामने आयी तो मैं दंग रह गया। उसका रूप और सौन्दर्य इस नई वेश-भूषा में दुगना हो उठा था। वैसे तो उसका एक नाम 'चांसी' था, किन्तु उसी समय मैंने उसका नया नामकरण किया 'चन्द्रा'। जब मैंने पहली बार 'चांसी' को 'चन्द्रा' कह कर पुकारा तो वह उमंग कर मेरी गोद में सिमट गयी।

चटगाँव में एक हफ्ता रहने के बाद हम दोनों कलकत्ता के लिए रवाना हुए। जंगल में रहने वाली चन्द्रा ने जब कलकत्ता शहर को देखा तो आश्चर्य और खुशी से विस्फारित रह गयी।

अब यहीं से शुरू होती है उस विचित्र मूर्ति की चमत्कारी कहानी। कलकत्ता में उसी चमत्कारी मूर्ति की सहायता से मैंने एक साल के अन्दर ही रेस-कोर्स और शेयर मार्केट के जरिये लाखों रुपये कमाये। रात में सपने में मुझे नम्बर और भाव अपने आप मालूम हो जाया करते थे। इतना ही नहीं, मैं जो कुछ मन में सोचता, वह सब पूरा हो जाता था। जिसका चाहता था, उसके मन की बात जान लेता था। इन अलौकिक शक्ति से मुझे अहंकार हो गया। मैं अपने को दैवी शक्ति सम्पन्न समझने लगा। मेरे लिए एक सीमा तक कुछ भी असम्भव नहीं था, लेकिन यही समझना मेरे लिए घातक हो गया। इसी भावना ने मेरी सुख, शान्ति, ऐश्वर्य और ऐशो-आराम की जिन्दगी में कहर ढा दिया। मेरे जीवन का सुनहरा पृष्ठ जल कर सहसा भस्म हो गया। इतना ही नहीं, चन्द्रा भी मुझसे हमेशा-हमेशा के लिए छिन गयी, परिणामस्वरूप मेरा जीवन उजाड़ मरघट जैसा हो गया।

लड़ाई का जमाना था। उन दिनों मेरी सारी पूँजी शेयर मार्केट में लगी हुई थी। मैं चमत्कारी मूर्ति के बल पर जानता था कि एक हफ्ते के भीतर ही वह पूँजी तिगुनी या चौगुनी हो जायेगी।

उस रोज सबेरे से ही बारिश हो रही थी। सायं के सात बजे थे। मैं इत्मीनान से एक दिलचस्प उपन्यास पढ़ रहा था। अचानक मुझे ऐसा लगा—जैसे रोशनी और किताब के बीच में कोई चीज आ गयी। किताब के पन्ने पर किसी की छाया पड़ रही थी। मैंने नजर उठाई तो जो कुछ देखा, उसका वर्णन करना असम्भव नहीं, तो कठिन जरूर है। वह एक काली छाया थी जो हवा में प्रकट हो रही थी। धीरे-धीरे उसने विचित्र रूप

धारण की। वह कुछ मनुष्य की सूरत-शक्ल की ही थी, पर थी बिल्कुल छाया। वह रोशनी से काफी दूर खड़ी थी, बिल्कुल अलग और स्पष्ट। उसका डील-डौल दैत्य की तरह था और उसका सिर मानो छत को छू रहा था।

मैं आँखे फाड़े उसे देख रहा था। मेरा खून पानी होने लगा और कँपकँपी छूटने लगी। ऐसा लगा कि जैसे उस विकराल छाया के सिर से दो भयानक आँखें मुझे घूर रही थीं। क्षण भर के लिए उसकी आँखें स्पष्ट दिखलायी पड़ीं, फिर गायब हो गयीं। अब उन आँखों की जगह से नीली-पीली रोशनी की दो तेज किरणें मेरे ऊपर पड़ रही थीं।

मैंने चिल्लाने की कोशिश की मगर न चिल्ला सका और न बोल सका। बिस्तर से उठने की कोशिश की, पर बेकार। मुझे लगा, जैसे कोई अदम्य शक्ति मेरे ऊपर जोर डाल रही है और कोई अलौकिक शक्ति मेरे संकल्प का विरोध कर रही है। उस शक्ति का विरोध करना मानव शक्ति के बाहर की बात थी।

अजीब आतंक की भावना ने मुझे दबोच लिया। वह भयंकर काली छाया अभी भी मेरे सामने खड़ी थी। उसकी शक्ति का मुझे इतना विकट अनुभव हो रहा था कि मेरा रोम-रोम काँप रहा था, लगा जैसे किसी भी क्षण मैं चेतनाहीन हो जाऊँगा और अन्त में मैं अचेत हो ही गया।

उस समय शायद रात के दस बजे थे। चन्द्रा अपने कमरे में थी। उसको मेरी स्थिति का ज्ञान नहीं था।

चेतनाशून्य अवस्था में जैसे मैंने स्वप्न देखा—वह विकराल काली छाया और कुछ नहीं, बल्कि उसी चमत्कारी मूर्ति का दैत्याकार भयानक रूप था। उसका चेहरा भयानक वीभत्स था। सिर पर भैंस जैसे दो सींग थे। माथा काफी चौड़ा और नीचे का जबड़ा भारी था। उसका मुँह खुला हुआ था, जिससे उसके लम्बे-लम्बे पीले दाँत दिखाई पड़ रहे थे। उसकी आँखों में मेरे प्रति घृणा और उपेक्षा की भावना थी।

सहसा मुझे सुनाई पड़ा—'मेरी शक्ति को तुम अपनी शक्ति समझने लगे थे, इसलिए अब मेरी शक्ति तुम्हारे पास नहीं रहेगी।'

यह बात शायद उसी अमानवीय दैत्याकार छाया ने कही थी। इसके साथ ही उसका रोयेंदार खुरदुरा हाथ मेरी ओर बढ़ने लगा। उसकी उँगलियाँ काफी मोटी-मोटी और नाखून बेहद लम्बे थे! हाथ बढ़ता रहा बढ़ता रहा फिर सहसा उसने एक ही झटके में मेरे गले में पड़ी हरे मोतियों की माला और उसमें लटकी हुई मूर्ति को नोच लिया।

मैं एकबारगी चीख पड़ा।

अपनी चीख के साथ ही मुझे एक आर्तनाद सुनाई पड़ा।

मैं चौंक कर उठ बैठा। मेरा रोम-रोम काँप रहा था। सारा शरीर पसीने से तर था। मैं गले पर हाथ फेरा, मूर्तिसहित वह माला गायब थी। घबरा कर मैंने चन्द्रा को पुकारा, मगर कोई जवाब नहीं मिला। लपक कर उसके कमरे में पहुँचा तो वहाँ का दृश्य देखकर सहसा भय और आतंक से काँप उठा।

खून से लथपथ चन्द्रा की लाश फर्श पर पड़ी थी। उसकी छाती के बीचोबीच चौड़े फाल का एक लम्बा सा छुरा मूठ तक घुसा था।

उस लम्बे फाल वाले छुरे को पहचानने में मुझे देर नहीं लगी।

मैंने एक बार उसे चन्द्रा के मंगेतर के हाथ में देखा था। वह उसी का छुरा था।

तो क्या उसी ने उस रात चन्द्रा का खून किया था ?

जी हाँ! उसी ने चन्द्रा को मारा था। बाद में सब कुछ मालूम हुआ। अपनी होने वाली बीबी का किसी और की बीबी बनना वह नहीं बरदाश्त कर सका। हिंसा और बदले की भावना से जल रहा था उसका हृदय। अपनी प्रेमिका की बेवफाई के कारण वह पागल हो उठा था और उसी पागलपन में वह हम दोनों का पीछा करता हुआ कलकत्ता आ पहुँचा था।

दुर्भाग्य का कौन-सा क्षण था वह कि एक ही रात में, एक ही समय में, मुझे बुलन्दी पर पहुँचाने वाली वह चमत्कारी मूर्ति, मुझे अपने प्यार में सराबोर कर नयी जिन्दगी देने वाली चन्द्रा—दोनों एक साथ छिन गईं मुझसे।

अभी मैं इस धक्के को बरदाश्त भी नहीं कर सका था, तभी पता चला कि शेयर मार्केट का भाव बराबर नीचे गिर रहा है। दो दिन बाद भाव के साथ-साथ मैं भी हमेशा के लिए नीचे गिर गया बर्बाद हो गया। मेरी सारी पूँजी खत्म हो गयी। अब मेरे पास उस चमत्कारी मूर्ति की शक्ति कहाँ थी कि फिर अपने को उठाता और बुलन्दी के शिखर पर पहुँचाता।

मेरे जीवन का यही वह क्षण है, जब मुझे पहली बार इस बात का अनुभव हुआ कि मानवीय शक्ति के ऊपर भी एक अदम्य शक्ति है।

किन्तु वह कौन-सी शक्ति है? मनुष्य उसे पा सकता है? जीवन में उसे कैसे अनुभव किया जा सकता है?

इन जिज्ञासाओं ने मेरे अन्दर जो प्रेरणा जागृत की, सच पूछिये तो उसी के वशीभूत होकर मैंने उसी समय से 'पराविज्ञान' की दो महान् विद्याओं—योगविद्या और तंत्रविद्या पर खोज करना शुरू किया। अपनी लम्बी उम्र के दौरान इस दिशा में मैंने जो कुछ देखा, सुना और अनुभव किया, उन सबको मेरे अन्य कथा-संग्रहों में पढ़ेंगे आप। निश्चय ही संग्रह के रूप में प्रकाशित मेरी कथाएँ आपके लिए सोचने-समझने की एक नई दिशा प्रदान करेगा, इसमें सन्देह नहीं।

OOO

१२

एक थी सोना एक था चन्दन

वह राजकुमारी को भी सर्प योनि में ले जाना चाहता था ताकि वह उसके साथ रह सके और अपनी कामजनित इच्छाओं को पूरा कर सके।

(१)

साँझ की स्याह चादर धरती पर धीरे-धीरे फैलने लगी थी। क्षितिज पर डूबते हुए सूरज की रश्मियाँ सिन्दूरी रेखा बनकर काफी दूर तक फैल गयी थीं—जिसके खूनी आँचल पर लम्बी कतारों में उड़ते हुए चमगादड़ों की स्याह पंक्तियाँ काले धब्बे जैसी लग रही थीं।

दिसम्बर-जनवरी का महीना था। पुरवा हवा के आगोश में लिपटी हुई बाजरे, चने और सरसों के फूलों की मिली-जुली गन्ध और उसी के साथ तन-मन को एकबारगी मदहोश कर देने वाली एक विचित्र-सी मादकता वातावरण में बिखरी हुई थी।

सारा इलाका निर्जन और सुनसान था। एक ओर पहाड़ों की कतारें थीं, घाटियाँ थीं और उन घाटियों में काफी दूर तक फैले हुए खेत थे—चने, बाजरे और सरसों के। दूसरी ओर घने जंगलों का सिलसिला था और घने जंगलों के बीच से बलखाती-इठलाती और किसी भयानक अजगर की तरह फुफकारती हुई एक पहाड़ी नदी बहती थी जिसका नाम था—गौरी! आगे जाकर गौरी की धारा बायीं ओर घूम कर पहाड़ों की तलहटी में विलीन हो जाती थी। जहाँ वह घूमती थी वहीं वीरगढ़ का किला था। किले की चहारदीवारों को छूती हुई गौरी मन्द गति से आगे बढ़ जाती थी। वीरगढ़ का किला काफी पुराना था। लगभग ५-६ सौ वर्ष पुराना। उसका काफी हिस्सा खण्डहर के रूप में बदल चुका था। उसी जगह मुगल कालीन संस्कृति के अवशेषों को पाये जाने की उम्मीद से पुरातत्व-विभाग की ओर से खुदाई का काम उन दिनों चल रहा था। खुदाई में आशा से अधिक सामग्री अब तक मिल चुकी थीं।

मैं दिन भर का थका था और नदी के किनारे से होकर शीघ्र अपने कैम्प में पहुँचना चाहता था। तभी सामने से रामदीन दौड़ कर आता हुआ दिखलाई पड़ा। रामदीन मेरा अर्दली था और पिछले चार साल से मेरे साथ था।

'क्या बात है रामदीन?'

'साब! किले के सामने वाला जो चबूतरा था न!' रामदीन हाँफते हुए कहने लगा—'उसके भीतर साँप की हड्डी मिली है। काफी लम्बी हड्डी है साब! चलकर देख लें आप भी! इसीलिये आ रहा था। आप ।'

सचमुच काफी लम्बा अस्थि-पंजर था किसी भयानक सर्प का। कम से कम बारह फुट का तो रहा ही होगा। मैंने उसे अपने कैम्प में मँगवा लिया और दूसरे ही दिन अस्थि-विशेषज्ञ के पास दिल्ली भेजवा दिया। दो सप्ताह बाद रिपोर्ट आ गयी। रिपोर्ट में लिखा गया था कि आसाम में पाये जाने वाले विषधर सर्पों की एक जाति के सर्प की अस्थि है वह। कम से कम सर्प की आयु दो सौ वर्ष होनी चाहिए। फन की हड्डी के बीच में सुपारी बराबर गड्ढा पाया गया—जो सर्प के मणिधर होने का संकेत करता था। तो यह अस्थि-पंजर दो सौ साल की आयु वाले मणिधर सर्प का है। मगर उसकी मणि कहाँ गयी?

उसी रात एक सपना देखा मैंने। काफी भयानक और विचित्र स्वप्न था वह। एक ऐसे संन्यासी को देखा—जिसका कमर के नीचे का भाग काले साँप जैसा था। ऊपर का भाग मनुष्य का था, मगर काफी लम्बे भूरे रंग के बाल उगे हुए थे उस भाग में। चेहरा भी भयानक था। आँखें हद से ज्यादा बड़ी थीं। भौंहें घनी और मोटी थीं। सिर के बाल जटा-जूट से थे और कन्धे तक झूल रहे थे। भयानक आकृति वाला वह संन्यासी घूर कर मेरी ओर देख रहा था—उसके चेहरे के भावों से पता चलता था कि मानो वह मुझसे कुछ कहना चाहता है। कभी-कभी उँगली से तम्बू में लटक रहे सर्प के अस्थि-पंजर की ओर भी संकेत करता था वह। दूसरे दिन मैंने सपने की चर्चा रामदीन से की। रामदीन कुछ बोला नहीं। बस, चुपचाप उठ कर चला गया। थोड़ी देर बाद जब वह वापस लौट कर आया तो उसके साथ फकीर जैसी वेश-भूषा वाला एक व्यक्ति था। जिसका नाम था—मुलई।

मुलई से मालूम हुआ कि जिस चबूतरे को खोदा गया है—वह नाग बाबा की समाधि थी। ५०-६० वर्ष पहले नाग बाबा वीरगढ़ के किले में निवास करते थे और हर रात बाहर निकल कर घूमते-फिरते थे। अक्सर उन्हें नदी के किनारे टहलते हुए देखा जाता था। नाग बाबा की आयु कितनी थी—इसका सही अन्दाज तो कोई लगा नहीं पाया था, मगर उनके सिर पर दो-तीन जटायें थीं जिससे लोग उन्हें दो-तीन सौ वर्ष की आयु का समझते थे। नाग बाबा मणिधर थे। मणि के शुभ्र प्रकाश में रात के अँधेरे में भी उन्हें किसी प्रकार की परेशानी नहीं होती थी। वे बड़े आराम से घूमते-फिरते और जब थक जाते तो नदी की मढ़िया के पत्थर पर चुपचाप लेट जाते। उस समय मणि उनके सामने रहती। मुलई ने आगे बतलाया कि नाग बाबा आसाम के कोई सिद्ध संत महात्मा थे। किसी कारणवश साँप की योनि में आ गये थे वह।

मेरे यह पूछने पर कि नाग बाबा की मणि कहाँ गयी? क्या हुआ उसका—तो मुलई ने बतलाया कि मणि किले के तहखाने में अभी भी है—मगर उस पर दो आत्माओं

का पहरा रहता है बराबर।

कैसा पहरा? कौन हैं वे दोनों आत्मायें? मैंने पूछा।

वे आत्मायें हुजूर, सोना और चन्दन की हैं। मुलई ने आँखें मिचमिचाते हुए कहा।

सोना और चन्दन कौन थे?

दोनों प्रेमी-प्रेमिका थे हुजूर! मुलई ने बतलाया—दोनों एक-दूसरे से बहुत प्यार करते थे। एक-दूसरे को बहुत चाहते थे। दोनों दो शरीर और एक आत्मा थे। उनके प्रेम की कहानी तो यहाँ हर आदमी के जवान पर है हुजूर!

मगर उनकी प्रेम-कहानी से मणि का क्या संबंध है? मेरा प्रश्न सुन कर एक बार मुलई सकपकाया और फिर आँखें मिचमिचाते हुए बोला—हुजूर! मणि के कारण ही दोनों प्रेमियों को एक दूसरे से जुदा होना पड़ा और दोनों को अपनी जान देनी पड़ी थी। मगर हुजूर, दोनों मरकर भी आज अमर हैं। हर पूर्णमासी की रात को दोनों गौरी के किनारे मिलते हैं। गाँव के कई लोगों ने उन्हें मिलते और बातें करते हुए देखा है। मैंने खुद देखा है अपनी आँखों से।

इसके बाद मुलई ने सोना और चन्दन की जो कहानी सुनाई वह सचमुच काफी मर्मस्पर्शी और दर्दीली थी।

सोना जात की बंजारिन थी। मगर गजब की सुन्दर थी वह। लम्बा कद, छरहरा बदन, कच्चे दूध जैसा रंग, गोल चेहरा, झील जैसी गहरी नीली आँखें, रसीले होंठ तथा सुराही जैसा गला था उसका। वह जब अपने घने काले बालों में महुये का फूल लगा कर और अपनी पतली कमर को लचकाती हुई गौरी के किनारे पानी भरने जाती तो न जाने कितने लोगों के दिल पर साँप लोट जाता। सोलह-सत्रह साल की उम्र में ही भरपूर जवानी छा गयी थी सोना के जिस्म पर। जो देखता, वही मर मिटना चाहता उस पर।

उन्हीं दिनों वीरगढ़ की जमींदारी की देखभाल के लिए ब्रिटिश हुकूमत की ओर से एक युवक की नियुक्ति किले में हुई। युवक का नाम था चन्दन कुमार। वह भी काफी सुन्दर और आकर्षक युवक था। पच्चीस-छब्बीस साल से ज्यादा उम्र नहीं थी उसकी। मगर अवस्था के विपरीत वह काफी गम्भीर और हमेशा चुप रहने वाला युवक था। हर समय वह अपने आप में ही डूबा रहता। अपने दो नौकरों और एक बुढ़िया रसोइया के साथ किले के ऊपरी हिस्से में चार कमरा लेकर रहता था। उसका कमरा अलग था। वह अपने कमरे में किसी को भी जाने न देता था। रात होती, चाँदनी छिटक जाती और वातावरण में घोर नीरवता छा जाती तो वह युवक अपने कमरे की खिड़की के पास सितार लेकर बैठ जाता और फिर पूरी रात बजाता रहता। निस्तब्ध रात्रि में नीरवता को भंग करती हुई सितार से झंकृत स्वर-लहरियाँ गौरी के जल-तरंगों से टकराती हुई चारों ओर फैलने लग जातीं। सारा गाँव सुनता उस मधुर संगीत को। मगर सोना जब सुनती तो एकबारगी उसकी आत्मा विह्वल हो उठती और तब वह बेचैन होकर घर के बाहर निकल पड़ती।

फिर वह चारों ओर देखती हुई धीरे-धीरे चल कर गौरी के किनारे पहुँच जाती और फिर वहीं बैठ कर पूरी रात उस स्वर्गीय संगीत को सुनती रहती। बीच-बीच में वह कातर और वेदना भरी नजरों से खिड़की की ओर देख भी लिया करती थी।

घर से पूरी रात सोना गायब रहती है—इसकी खबर उसके परिवार वालों को न थी। चन्दन को भी इस बात की खबर नहीं थी कि उसके संगीत को मनोयोग से कोई गौरी के किनारे पूरी रात बैठ कर सुनता है। मगर एक रात चन्दन की नजर पड़ ही गयी सोना पर। एकबारगी वह चौंक पड़ा। देखा तो बस देखता ही रह गया। निस्तब्ध शान्त वातावरण में चाँदनी रात में गौरी के शान्त नीरव तट पर बैठी हुई सोना उसे किसी देवकन्या सी लगी। काफी देर तक वह अपलक निहारता रहा। सितार के तारों में उलझ कर थिरकती हुई उसकी उँगलियाँ एकाएक रुक गयीं। सितार का बजना बन्द हो गया। उस समय सोना निर्विकार भाव से आकाश में खिले हुए चाँद की ओर निहारती हुई मौन साधे चुपचाप सुन रही थी संगीत को। मगर सितार के अचानक बन्द हो जाने पर वह चौंक सी पड़ी। यह क्या हो गया? बन्द क्यों हो गया सितार? ऐसा तो कभी नहीं हुआ था? एक बार सोना ने खिड़की की ओर देखने की कोशिश की, फिर उठ कर चलने लगी घर की ओर। तभी न जाने किधर से आकर चन्दन उसके सामने खड़ा हो गया। सोना घबड़ा उठी। भय और आश्चर्य से। के मिले-जुले भाव से बोली—कौन हो तुम?

मैं   मैं चन्दन हूँ।

कौन चन्दन?

वही, जिसका संगीत तुम सुनने आती हो यहाँ हर रात। फिर रुक कर चन्दन ने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है?

सिर झुका कर हौले से सोना ने जवाब दिया—मेरा नाम, मेरा नाम   सोना है।

उसी दिन से गाँव में सोना और चन्दन के प्रेम की चर्चा होने लगी। सोना के दिल में चन्दन पूरी तरह समा गया था। चन्दन जहाँ भी दिखाई पड़ता, सोना की आँखें चमक उठतीं। एक हूँक कलेजे से उठती जो रोम-रोम में भिन जाती। रात का पहला पहर जब धीरे-धीरे गुजरने लगता, चाँद धीरे-धीरे आकाश के ऊपर जब आ जाता और जब वातावरण में घोर नीरवता छा जाती—उस समय दोनों प्यासी आत्मायें गौरी के किनारे मिलतीं। मढ़िया के चबूतरे पर बैठ कर चन्दन सितार बजाता और सोना उसकी गोद में सिर रख कर और आँख मूँद कर सुनती। संगीत की मधुर ध्वनि किले की दीवारों से टकराकर नदी की थिरकती-नाचती हुई लहरियों में खोने लगती। सारा वातावरण संगीतमय हो उठता। उसके बाद दोनों प्रेमी एक दूसरे के हृदय से प्रेमरस उड़ेलते। दो जवानियाँ आपस में टकरा कर एक हो जातीं। प्रेम की मीठी गंध से सारा वातावरण महक उठता।

बहुत दिनों तक यही क्रम चलता रहा। वे दो धड़कते हुए दिल दुनिया की गति-विधि से बेखबर रहें। उन दोनों को लेकर कैसी-कैसी चर्चायें हो रही हैं—इसका जरा सा भी ज्ञान न था दोनों को। आखिर तूफान आ ही गया, जिसका सामना एक दिन सोना और

चन्दन को करना पड़ा। बंजारों की पंचायत बैठी। बंजारों ने एक स्वर में कहा—'एक परदेशी छोकड़ा बंजारिन से प्यार करे, यह हरगिज नहीं हो सकता।'

सोना और चन्दन ने अपने अपराध को स्वीकार कर लिया था और फैसले की प्रतीक्षा में सिर झुकाये खड़े रहे। अन्त में फैसला सुनाया गया। सरपंच की वजनदार आवाज गरज उठी—'भाइयो! हम लोगों के सामने विकट समस्या आ गयी थी पर हमने उसका हल निकाल लिया है। चन्दन अगर सोना से बंजारों के रीति-रिवाज के अनुसार शादी करना चाहता है और शादी कर उसे अपने साथ ले जाना चाहता है तो पहले किले के मणि वाले सर्प को मार कर उसकी मणि ले आये। अगर तीन दिन के अन्दर यह काम वह नहीं कर सका तो उसे गाँव के बाहर निकाल दिया जायेगा और सोना की शादी किसी और से कर दी जायेगी।

पंचायत का यह फैसला सुनकर सोना सिसक-सिसक कर रो पड़ी। चन्दन का चेहरा स्याह हो गया। वह शून्य दृष्टि से आकाश की ओर न जाने कब तक ताकता रहा। दो रातें बीत गयीं। सोना ने अपने प्यार का वास्ता देकर चन्दन को रोक दिया था उस भयंकर सर्प के नजदीक जाने से। फिर तीसरी रात आ गयी—जिन्दगी और मौत के फैसले की रात! प्यार में हार और जीत की रात!

अमावस्या की काली अँधेरी रात। कब्रिस्तान जैसी खामोशी चारों ओर छाई हुई थी। साँय-साँय करती हुई हवा चल रही थी। गौरी का पानी भी शान्त था उस वक्त। सोना और चन्दन एक-दूसरे के आलिंगन में बँधे बैठे थे मढ़िया के चबूतरे पर। एकाएक चन्दन बोला—'बस सोना! आज मुझे तेरी कसम है, मुझे जाने दे। इस कसौटी पर भी मेरे प्रेम को खरा उतर जाने दे।' चन्दन के स्वर में दृढ़ता थी, अनुरोध था और सच्चे प्रेम की ललकार भी थी।

सोना काँप उठी आशंका से। भयानक काली रात, रेंगता हुआ मणिधर काला नाग और चन्दन! वह आगे कुछ न सोच सकी। अचानक विचारों की गति रुक गयी। चन्दन उठ खड़ा हुआ था। तन कर वह कह रहा था—'मैं जा रहा हूँ सोना मणि लेने! तुम चिन्ता मत करना। कल मणि के प्रकाश में हम दोनों का विवाह होगा।' चन्दन की आवाज में दर्द था, पर नयी जिन्दगी का सुहाना सपना भी आँखों में तैर रहा था। सोना का दाहिना हाथ एकाएक उठ गया, पर उसमें चन्दन को रोकने की सामर्थ्य न रही। चन्दन तीर की तरह वहाँ से चल पड़ा। दोनों हाथों से अपना चेहरा छिपा कर सोना फफक-फफक कर रो पड़ी।

आधी रात का समय था। किले के पास से वह मणिधर सर्प निकला और फुफकारता हुआ धीरे-धीरे गौरी की ओर बढ़ने लगा। उसकी भयंकर फुंकार और साथ ही उसकी फस्स्-फस्स् की तीखी आवाज रात के सन्नाटे में यमराज की पगध्वनि सी लग रही थी। किले के पास वाले पीपल के पेड़ की एक डाल पर चन्दन चुपचाप बैठा हुआ सर्प की गति-विधि को जानने-समझने की कोशिश कर रहा था।

धीरे-धीरे चल कर सर्प उसी पेड़ के नीचे पहुँच गया। एक बार उसने काफी जोर से फुफकारा और फिर मुँह में रखी हुई मणि को बाहर निकाल दिया। दूसरे ही क्षण हल्के नीले रंग का शुभ्र प्रकाश फैल गया चारों तरफ। चन्दन ने देखा बड़ा ही भयानक काला नाग था वह। उसकी लम्बाई कम से कम १०-१२ फुट अवश्य रही होगी। फन भी एक फुट चौड़ा था, जिसके ऊपर बड़े-बड़े बालों के लट थे। उसकी आँखें माणिक की तरह लाल थीं और जल रही थीं। मणि के प्रकाश में सर्पराज का सारा शरीर चमक रहा था। चन्दन की आँखें फटी-की-फटी रह गयीं। स्तब्ध रह गया वह नागराज को देख कर। उसका सारा शरीर रोमांचित हो उठा भय से। मगर दूसरे ही क्षण सोना का चेहरा उसके मानसपटल पर उभर गया और फिर वह रोक न सका अपने आपको। पेड़ से नीचे उतर आया। दिल की धड़कनें एकबारगी तेज हो गयीं। पूरे बदन में सिहरन सी दौड़ गयी। पैर काँपने लगे। मगर उसने दूसरे क्षण दृढ़ निश्चय कर लिया, फलस्वरूप पैरों में कुछ ताकत आ गई। वह दबे पाँव धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। अब बस एक कदम के फासले पर मणि रह गयी थी। बिजली की सी फुरती से लपक कर चन्दन ने मणि उठा ली और तेजी से भागा नदी की ओर।

मणि को गायब होते देख सर्प व्याकुल हो उठा और उछल कर झपटा चन्दन पर। मगर वह उस समय साफ बच गया। सर्प और क्रोधित हो उठा। फस्स्-फस्स् की भयानक आवाज से सारा वातावरण गूँजने लगा। सर्प बार-बार जमीन पर अपना सिर पटकता और चक्-चक् की आवाज करता। मणि के लिए पागल हो उठा था वह।

तभी दौड़ते हुए चन्दन को किसी चीज की ठोकर लगी और वह धड़ाम से गिर पड़ा औंधे मुँह जमीन पर। एकदम से घबरा गया वह। देखा—सर्प तीव्रगति से काल की तरह उसकी ओर बढ़ता चला आ रहा था। अगले किसी भी क्षण स्थिति भयानक हो सकती थी। उसने उठने की कोशिश की मगर उठ न सका। चोट काफी गहरी लगी थी उसे। सिर चकराने लगा था। बार-बार वह उठने की कोशिश कर रहा था। अन्त में सफलता मिली। मगर वह सफलता घातक सिद्ध हुई उसके लिए। तब तक वह नागराज के बंधन में बुरी तरह जकड़ चुका था। अचानक उसे पैर के पास भयंकर रूप से जलने की अनुभूति हुई और साथ ही पीड़ा की भी। सर्प ने डस लिया था उसे। एकाएक चन्दन ने एक जोरदार झटका दिया। सर्प की पकड़ ढीली पड़ गयी और उसी समय बिजली सी गति से चन्दन उठा और मणि को हाथ में लिये तूफान की तरह मढ़िया की ओर भागा। सर्प बुरी तरह चक्-चक् की आवाज करने लगा था और बार-बार बुरी तरह सिर धुनने लगा था जमीन पर। कुछ ही देर बाद उसके मुँह से खून की धारा निकली और उसी के साथ उसका शरीर निर्जीव हो गया। वह मर चुका था। इधर दौड़ता हुआ चन्दन मारे खुशी से जोर से चिल्ला उठा—'सोना, मैं जीत गया। मणि ले आया मैं। उसके शरीर में जोश था और फुरती थी। दिल खुशी से झूम रहा था। वह मढ़िया की तरफ भागा जा रहा था, खुशी से चीखता हुआ—'सोना, मैं जीत गया! लो मणि ले आया मैं ।' सहसा पास आती हुई सोना उसे जमीन पर गिरता-पड़ता नजर आने लगा। उसकी आकृति कभी साफ

नजर आती तो कभी धूमिल। चन्दन को बुरी तरह चक्कर आ रहा था। अब गिरा, तब गिरा कि सोना ने उसे अपनी बाँहों में सँभाल लिया।

'सोना सोना अब किस बात का दुःख और किस बात की चिन्ता सोना अब अब हम दोनों को कोई जुदा नही और चन्दन का वाक्य अधूरा ही रह गया। जबान लटपटाने लगी। आँखों के सामने काले धब्बे नजर आने लगे। उसकी चेतना धीरे-धीरे लुप्त हो गयी और वह झूल गया दूसरे क्षण सोना की बाँहों में।'

'चन्दन! एकबारगी चीख उठी सोना। सारा प्रान्त उसकी चीख से गूँज उठा। चीख के साथ ही चन्दन की निर्जीव काया गोद में लिए धम् से गिर पड़ी सोना जमीन पर और दूसरे क्षण बेहोश हो गयी। थोड़ी देर बाद सोना भी विदा हो गयी हमेशा के लिए संसार से।'

सबेरा हुआ। गाँव वालों ने देखा कि गौरी के किनारे एक-दूसरे से लिपटी हुई सोना और चन्दन की लाशें पड़ी हुई थीं और कुछ ही फासले पर पड़ी थी साँप की निर्जीव और निष्प्राण काया। सोना और चन्दन के शव के साथ ही लोगों ने नागराज को भी दफना दिया और समाधि बना दी तीनों की एक साथ।

सबसे बड़े आश्चर्य की बात तो यह है हुजूर! मुलई कहानी के अन्त में बोला— 'जिस मणि के पीछे दो जवान दिलों की मौत हुई, वह वहाँ नहीं मिली। काफी खोजा लोगों ने उसे, पर पता न चला मणि का। कहाँ गयी वह ? इस सवाल का जवाब आज तक नहीं मिल सका। मगर अमावस की रात को कभी-कदा किले के आस-पास कोई चीज चमकती हुई अँधेरे में जरूर दिखलाई देती है और उसी के साथ किसी लड़की के चीखने की आवाज भी सुनाई दे जाती है। लोगों का कहना है कि वह आवाज सोना की है और मणि भी उसी के अधिकार में है। सच क्या है भगवान् ही जाने, हुजूर!' इतना कह कर मुलई चुप हो गया। फिर उसने धोती की खूँट से बँधी सुरती निकाली और उसे हथेली पर रख कर मलने लगा अंगूठे से।

(२)

इस प्रकार से कहानी तो खत्म हो गयी मगर मैं बेचैन हो उठा। नाग बाबा का रहस्य और मणि के गायब होने का रहस्य जानने के लिये मेरी आत्मा व्याकुल हो उठी। मुझे इस बात का विश्वास हो गया था कि किले में जिस जगह साँप की हड्डी मिली थी—वहीं पर सोना और चन्दन का भी अस्थि-पंजर होना चाहिए और मणि को भी किले में ही कहीं होना चाहिए। दूसरे ही दिन मैंने समाधि को पुनः खुदवाना शुरू करवा दिया। काफी गहराई तक खुद जाने के बाद लगभग बीस-पचीस फुट नीचे सोना और चन्दन के कंकाल मिले। मैं उन्हें बाहर निकालने के लिए मजदूरों को आदेश देने ही वाला था कि अचानक दो-तीन मजदूर एक साथ चिल्ला उठे—'साब! देखिये क्या चमक रहा है

यहाँ।' आवाज सुनकर मैं तुरन्त नीचे उतरा। उस समय वहाँ कई विभागीय अधिकारी भी थे मेरे साथ। नीचे उतर कर मैंने देखा—एक नारी कंकाल के पेट की हड्डियों में फँसी कोई चीज चमक रही है। उसमें से काफी तीखी और काफी तेज रोशनी निकल कर चारों ओर बिखर रही थी। समझते देर न लगी। नागराज की मणि ही थी वह। जीवन में बहुत-सी कहानियाँ पढ़ी और सुनी थी साँप की मणि के संबंध में, मगर कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि साँप की मणि इस तरह देखने को भी मिलेगी।

साँप की मणि में तीव्र विष होता है। स्पर्श करने मात्र से मृत्यु हो जाती है प्राणी की—ऐसा भी सुन रखा था मैंने। किसी प्रकार मणि सहित कंकालों को समाधि से बाहर निकाला गया।

मणि के गायब होने का रहस्य अब खुल चुका था। निस्सन्देह सोना ने अपने मुँह में डाल लिया होगा मणि को और उसी के तीव्र विष के प्रभाव से उसकी तत्काल मृत्यु हो गयी होगी।

मणि को मैंने अपने अधिकार में ले लिया और अपने कैम्प में ले आया। बड़ी सुपाड़ी के आकार-प्रकार की वह मणि थी। स्फटिक पत्थर की तरह पारदर्शक और चमकीली थी वह। दिन के समय उसमें से बराबर विभिन्न रंगों की किरणें फूटती रहती थीं, मगर रात के अँधेरे में वे ही किरणें शुभ्र तीखे प्रकाश में बदल जाती थीं मिल-जुलकर आपस में। सचमुच भारतीय संस्कृति की अमूल्य और अतिशय महत्वपूर्ण सम्पत्ति थी वह मणि। सम्पूर्ण विश्व के लिए वह एक चमत्कारी वस्तु थी। सबसे अधिक मोहक था—उसका शुभ्र ज्योतिर्मय प्रकाश।

रात के समय मणि पर नजर ठहर नहीं पाती थी। मगर दिन के उजाले में उस पर नजर पड़ते ही एकबारगी दृष्टि सम्मोहित-सी हो उठती थी। वास्तव में विचित्र आकर्षण और गजब का सम्मोहन था उस मणि की प्रकाश-किरणों में।

एक बार मैं यों ही मणि को उलट-पुलट कर देख रहा था कि अचानक मेरी नजर थम गयी उस पर और एकबारगी सम्मोहित हो उठी मेरी दृष्टि। पलकों का गिरना बन्द हो गया। पुतली अपनी जगह स्थिर हो गयी। सिर भी चकराने लगा मेरा। इच्छा होते हुए भी नजर हटा नहीं पा रहा था मणि पर से मैं। थोड़ी देर बाद उसी अवस्था में मैंने उसके भीतर जलती हुई माणिक जैसे लाल-लाल दो आँखें देखीं। बड़ी ही क्रूर और हिंसक थी वे आँखें। ऐसा लगा मानो उनके भीतर दावानल धधक रहा हो। एकबारगी सिहर उठा मैं। सारा शरीर भय से रोमांचित भी हो उठा। दूसरे क्षण अपने आप मेरी दृष्टि हट गयी वहाँ से और उसी के साथ सामान्य भी हो गयी मेरी स्थिति। किसकी थीं वे आँखें? समझ में न आया मेरे। पूरा रात सो न सका मैं। बार-बार वे आँखें मेरे सामने थिरक उठतीं। भोर के समय जरा सी झपकी लगी मुझे और उसी अवस्था में मैंने फिर उसी सर्पाकृत संन्यासी को देखा। हे भगवान्! उसकी आँखें भी उसी तरह थीं—दावानल सी धधकती हुई क्रूर और हिंसक। हड़बड़ा कर उठ बैठा मैं। सारा शरीर पसीना-पसीना हो उठा था। पूरा दिन मेरी मानसिक स्थिति डाँवाडोल रही। किसी काम में मन नहीं लगा मेरा। बार-बार मेरे मानस-

पटल पर उभर जातीं वे दोनों भयानक आँखें और फिर मैं बेचैन हो उठता। शाम होते-होते मुझे ज्वर हो आया। निढाल पड़ गया मैं चारपायी पर जाकर और न जाने कब और किस क्षण चेतनाशून्य हो गया मैं ? उसी स्थिति में मैंने एक अजीब दृश्य देखा।

आसाम की कोई पर्वतीय इलाका था वह। बिल्कुल धूल-धूसरित निर्जन प्रान्त और उसी निर्जन प्रान्त में एक बहुत पुराना मठ दिखाई दिया मुझे। बिल्कुल जीर्ण-शीर्ण। मठ का फाटक विशाल था और उसके दोनों ओर गन्धर्वो की आदमकद मूर्ति खड़ी थी। किसी शैव-शाक्त सम्प्रदाय का था वह शायद मठ। मैं भीतर चला गया। गहरी निस्तब्धता छायी हुई थी वहाँ। आँगन में खड़ा होकर मैं चारों ओर देखने लगा। उस समय एक विचित्र सी अनुभूति हो रही थी मुझे। तभी न जाने किधर से एक युवती के साथ एक युवक प्रकट हुआ वहाँ पर। दोनों सुन्दर और आकर्षक थे। मगर दोनों के चेहरे पर गहरी उदासी और विषाद की रेखा थी।

तुम दोनों कौन हो ? अचानक पूछ बैठा मैं।

मेरा प्रश्न सुनकर दोनों ने एक बार एक दूसरे की ओर देखा और फिर युवती का संकेत पाकर युवक बोला—मेरा नाम चन्दन है और यह है मेरी प्रेमिका सोना।

ऐ! तुम दोनों सोना और चन्दन हो ? आश्चर्य-चकित होकर मैं बोल पड़ा। फिर आँखें फाड़-फाड़ कर उन दोनों की ओर देखने लगा।

हम दोनों इस समय जिस दुनिया में हैं, आप भी उसी में हैं। चन्दन धीरे-धीरे बोला—आपको यहाँ क्यों आना पड़ा, शायद आपको यह मालूम नहीं है। शाक्त सम्प्रदाय के तांत्रिकों का मठ है यह। लगभग चार सौ वर्ष पुराना। इसके अन्तिम महन्त थे स्वामी दिव्यानन्द अवधूत। बहुत अच्छे साधक थे वह। उनकी एक भैरवी थी। नाम था चन्द्रावती। वह भी अच्छी साधिका थी। बहुत सुन्दर और बहुत ही सीधी-सरल। उम्र भी अधिक न थी। बस यही थी २८-३० के आस-पास।

थोड़ा रुक कर चन्दन ने एक बार खड़ी सोना की ओर देखा और आगे कहने लगा—तंत्र की साधना में शरीर के तल पर सम्भोग सर्वथा त्याज्य हैं। वर्जित हैं। मगर न जाने किस कुसंस्कार के वशीभूत होकर चन्द्रावती के प्रति मोहित हो उठे एक दिन स्वामी दिव्यानन्द अवधूत। बहुत ही विरोध किया भैरवी ने लेकिन जो होना था वह होकर ही रहा। अवधूत महाशय स्वयं तो पदच्युत हो ही गये, साथ में एक उच्च साधिका का भी मार्ग भ्रष्ट कर दिया उन्होंने। प्रत्येक अपराध का प्रायश्चित्त है। अवधूत महाशय को भी अपने आपको प्रायश्चित्त करना पड़ा। वे सर्प की योनि में चले गये और उसमें दो सौ वर्ष रहे। मृत्यु के बाद चन्द्रावती को भी जन्म लेना पड़ा। उसने वीरगढ़ के राजपरिवार में राजकुमारी के रूप में जन्म लिया। अवधूत महाशय का सर्प योनि में चन्द्रावती के प्रति मोह कम नहीं हुआ। वे काम के वशीभूत होकर वीरगढ़ के किले में ही रहने लगे। राजकुमारी के रूप में अपनी भैरवी के शरीर से स्पर्श कर जाती हुई हवा उनके व्यथित और आकुल मन को कभी-कभी शान्ति प्रदान कर दिया करती। मगर इतने से उस

कामान्ध साधु की तृप्ति नहीं हुई। सन्तोष नहीं हुआ। 'वह राजकुमारी को भी सर्प योनि में ले जाना चाहता था ताकि वह उसके साथ रह सके और अपनी काम जनित इच्छाओं को पूरा कर सके।' आखिर एक दिन डस ही लिया उसने राजकुमारी को। सर्पविष से मरा व्यक्ति सर्प योनि में ही जाता है। यह नियम है प्रकृति का। राजकुमारी भी सर्पिणी हुई और सर्प शरीरधारी-अवधूत संन्यासी के साथ रहने के लिए बाध्य हो गयी।

अब तो आप समझ गये होंगे कि मणिधर नाग बाबा और कोई नहीं—वही दिव्यानन्द अवधूत ही थे।

हाँ, यह तो समझ में आ गया मेरे। लेकिन सर्पिणी का क्या हुआ? मैंने पूछा।

होगा क्या? नाग बाबा के साथ उसकी भी मृत्यु हो गयी वीरगढ़ के किले में। जब कोई मणि वाला साँप मर जाता है तो उसी समय उसके साथ रहने वाली साँपिन भी मर जाती है। यह प्रकृति का नियम है।

इस समय दोनों की आत्मायें कहाँ हैं?

इसी मठ में हैं और उन दोनों के अधिकार में हम दोनों की आत्मायें हैं। काफी यातनाएँ देती हैं हम दोनों को वे।

मगर ऐसा क्यों हुआ? क्यों इतनी यातना तुम दोनों को देती हैं उनकी आत्मायें?

इसलिए कि मेरे ही कारण नाग बाबा की मृत्यु हुई थी। मणि मैं न छीनता और न उनकी मृत्यु होती। वे मुझे और सोना को अपने कब्जे में कर और यातना देकर अपने प्रतिशोध की आग को बुझा रहे हैं। उनके इस प्रतिशोध की आग में हम दोनों कब तक जलते रहेंगे? कब तक इस प्रकार यातना सहते रहेंगे? इतना कह कर चन्दन ने एक लम्बी साँस ली और फिर उसने आगे कहना शुरू किया, आप मेरा कहना मानेंगे! मेरी सहायता करेंगे आप । यदि आप इसके लिए तैयार हैं तो कृपा करिये। उस मणि को गौरी के अथाह जल में डाल दीजिए और हम दोनों की अस्थियों को भी किसी तीर्थ में विसर्जित कर दीजिये। इससे हम दोनों की आत्मायें बन्धन और यातना से मुक्त हो जायेंगी और साथ ही कहीं मानव शरीर में जन्म भी ले लेंगी। क्या आप इतना कर सकेंगे? —चन्दन ने बड़ी ही करुणा और याचना भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा।

उसी समय मेरी चेतना वापस लौट आयी। बिस्तर पर उठ बैठा मैं। मेरी तबीयत हल्की थी। बुखार उतर गया था। आँखें मल कर चारों ओर देखा, सवेरा होने ही वाला था। मेरे सामने अभी भी सारे दृश्य थिरक रहे थे।

कहने की आवश्यकता नहीं, मैंने मणि को गौरी के जल में डाल दिया और सोना व चन्दन की अस्थियों को बनारस आकर गंगा में प्रवाहित कर दिया। दोनों की आत्मायें बन्धन और यातना से मुक्त हुयीं या नहीं? दोनों ने मानव शरीर में जन्म लिया या नहीं? यह तो मैं बतला नहीं सकता, मगर दिव्यानन्द अवधूत की तांत्रिक भैरवी चन्द्रावती की आत्मा अवश्य उसी क्षण से मेरे पीछे पड़ गयी।

हे भगवान्! कितनी व्याकुल थी चन्द्रावती की आत्मा अपनी मुक्ति के लिए। वह भी अपनी दिव्यानन्द की आत्मा के चंगुल से मुक्ति चाहती थी। वह भी चाहती थी किसी मानव-शरीर में पुन: जन्म लेना।

मगर कैसे सम्भव होगा यह? मुझे इसके लिए क्या करना होगा? मेरे यह पूछने पर उसने बतलाया, सब सम्भव है! तुमको इसके लिये जो कुछ भी करना होगा, मैं बतलाऊँगी।

ठीक है! मैंने सिर हिलाकर अपनी स्वीकृति दे दी। लेकिन आज सोचता हूँ कि काश! वह स्वीकृति न दी होती। मेरी इतनी दुर्दशा भी न हुई होती। एक तांत्रिक भैरवी के चक्कर में फँस कर एक प्रकार से अपना जीवन ही नष्ट कर दिया मैंने। मगर कभी-कभी सोचता हूँ कि भौतिक स्तर पर भले ही मेरी दुर्दशा हुई, लेकिन चन्द्रावती के द्वारा मुझे तंत्र-योग का जो दुर्लभ ज्ञान और उस अमूल्य ज्ञान की जो महत्वपूर्ण अनुभूतियों की प्राप्ति हुई उसके समक्ष वह दुर्दशा नगण्य और तुच्छ हैं।

चन्द्रावती की आत्मा को कैसे मुक्ति मिली? मैं दिव्यानन्द के मठ में कैसे पहुँचा? चन्द्रावती के द्वारा मुझे तंत्रयोग का ज्ञान व अनुभव कैसे प्राप्त हुआ? और चन्द्रावती ने कहाँ जन्म लिया? और वह इस समय इस संसार में किस रूप में है? —इन तमाम प्रश्नों का उत्तर कथा रूप में पढ़ने को मिलेगा आपको 'आसाम का वह रहस्यमय मठ' में। कृपया इन्तजार करें।

१३

पुनर्जन्म

मनुष्य अपने पिछले जन्म के संस्कारों को लेकर पुनः इस मृत्युलोक में जन्म लेता है और उन संस्कारों का सारभूत उसे स्मरण रहता है—जब तक कि वह इस दुनिया के मायाजाल में भ्रमित नहीं हो जाता।

आदिकाल से मानव यह प्रश्न करता रहा है कि, 'मानव क्या है, कहाँ से आता है और कहाँ जाता है?' उसका प्रारम्भ इस जन्म से होता है, अथवा जन्म के पहले भी उसका अस्तित्व था? यदि उसका अस्तित्व था, तो किस रूप में था? क्या मृत्यु ही जीवन की अंतिम परिणति है? जहाँ संसार के समस्त धर्मावलंबी मृत्यु को ही जीवन का अंत मानते हैं—वहीं समस्त संसार को इस नये विज्ञान का ज्ञान देते हुए भारतीय संस्कृति मानती है कि मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है। पुनर्जन्म भारतीय संस्कृति के तत्व ज्ञान का एक मौलिक अंग है। देहांत के साथ शरीर गत आत्मा की मृत्यु न होकर वह आत्मा उस देह में प्राप्त संस्कारों के साथ दूसरी देह में चली जाती है। इसी को पुनर्जन्म कहते हैं। परामनोवैज्ञानिक दृष्टि से आत्मतत्व, परलोक तत्व, जीव और जीवन तत्व आदि के अलावा मैने पुनर्जन्म के मूलभूत सिद्धांतों और मूलभूत तथ्यों पर भी गहन शोध, खोज और चिंतन-मनन किया है। प्रस्तुत रचना उसी का मौलिक परिणाम है। खैर!

जीव का जन्म, मृत्यु के पश्चात् तुरन्त इसी लोक में होता है या परलोक जाकर उसे लौटना पड़ता है? शास्त्रों में ऐसा कहा गया है और पारलौकिक विद्या को जानने वाले विद्वान् भी ऐसा मानते हैं कि मृत्यु के बाद जीवात्मा तुरंत ही इस भूलोक में दूसरे शरीर में जन्म लेता है। कोई-कोई यह भी कहते हैं कि यदि जीवात्मा का—जो कि अमर है—परलोक जा सकने योग्य विकास न हुआ हो, तो भूलोक में तुरन्त उसका जन्म होगा। मरने वालों का भूलोक की ओर आत्याकर्षण भी मरणोत्तर तुरंत पुनर्जन्म का कारण हो सकता है। वैसे मृत्यु के बाद पुनर्जन्म की स्थिति तीन वर्षों तक कभी भी संभव बतलाई गयी है।

मनुष्य अपने पिछले जन्मो के संस्कारों को लेकर पुनः इस मृत्युलोक में जन्म लेता है और उन संस्कारों का सारभूत उसे स्मरण रहता है—जब तक कि वह इस दुनिया के मायाजाल में भ्रमित नहीं हो जाता।

प्रत्येक बार अंतरात्मा जन्म लेती है और प्रत्येक बार विश्व प्रकृति के उपादानों से एक मन-प्राण और शरीर की रचना होती है। यह रचना अंतरात्मा के भूतकाल के विकास और उसके भविष्य की आवश्यकता के अनुसार होती है। शरीर छोड़ने के बाद जीव अपने मनोमय और प्राणमय व्यक्तित्व को फेक देता है और अपने भूतकाल के सारतत्व को आत्मसात करने तथा नये जीवन की तैयारी के लिए विश्राम में चला जाता है। यह तैयारी ही नये जन्म की परिस्थितियाँ निश्चित करती हैं। एक नये व्यक्तित्व के गठन में और उसके उपादानों के चुनाव में उसका पथ-प्रदर्शन करती है। मृत्यु के बाद अंतरात्मा सूक्ष्म शरीर से निकल जाता है। जब जीव किसी विगत व्यक्तित्व या व्यक्तियों को अपने वर्तमान विकास के अंग के रूप में साथ लगता जाता है केवल तभी विगत जन्म की बातों को स्मरण रखने की संभावना रहती है। अन्यथा स्मृतियाँ पुनर्जन्म तक नहीं कुछ ही समय तक ठहरती हैं। अगर ऐसा न होता तो विगत जन्मों की स्मृति नया शरीर लेने के बाद भी अपवाद न होकर नियम होती। यह संभव है कि एक जन्म के संबंध बाद के जन्मों में आसक्ति के बल पर टिके रहें, किन्तु यह नियम नहीं है।

पुनर्जन्म के लिए वापस आने वाली अंतरात्मा नये शरीर में कब प्रवेश करती है— इसका कोई नियम नहीं है। व्यक्ति-व्यक्ति की परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। यानी जन्म या देहान्तरण का मूलभूत निर्धारण मृत्यु के समय होता है। उस समय चैत्य पुरुष यह चुनाव करता है कि अगले पार्थिव प्राकट्य में उसे क्या करना है ? और परिस्थितियाँ उसी के अनुरूप संयोजित हो जाती हैं।

आधुनिक मन के लिए पुनर्जन्म एक कल्पना है। एक मत है। वह कभी भी आधुनिक विज्ञान की पद्धतियों से प्रमाणित नहीं हुआ। फिर भी आधुनिक आलोचक के पास ऐसा कोई साधन नहीं है जिससे वह पुनर्जन्म की सत्यता या असत्यता को प्रमाणित कर सके। वास्तव में पुनर्जन्म मनोविज्ञान और परामनोविज्ञान का विषय है और उसका निर्णय भौतिक की अपेक्षा इन दोनों विज्ञानों के प्रमाणों से करना होगा। खैर!

पुनर्जन्म परामनोविज्ञान का एक अनसुलझा विषय है। योग, तंत्र और भूत-प्रेतों की तरह पुनर्जन्म भी मेरे शोध और खोज का विषय रहा है। जिन दिनों मैं उपर्युक्त तमाम सिद्धातों के आधार पर परामनोवैज्ञानिक ढंग से पुनर्जन्म पर खोज-कार्य कर रहा था उसी समय मेरे जीवन में एक ऐसी अलौकिक और अविश्वसनीय घटना घट गयी, जिसने पुनर्जन्म से संबंधित मेरी खोज की दिशा को ही एकबारगी बदल दिया।

मेरे एक मित्र थे, नाम था रघुनाथ तिवारी। बनारस के भदैनी मोहल्ले में रहते थे वह। प्रथम श्रेणी में एम०ए० करने के बाद उन्होंने एक कॉलेज में नौकरी कर ली। प्राध्यापक का पद था। वेतन भी अच्छा था। तिवारी जी काफी सीधे-सादे और सरल स्वभाव के थे। रहन-सहन भी उनका साधारण था। जब नौकरी लग गयी, तो उनके परिवार के लोग विवाह के लिए उन पर दबाव डालने लगे। पहले तो तिवारी जी ना-नुकर करते रहें, पर बाद में तैयार हो गये।

तिवारी जी के पिता का नाम था रामनाथ तिवारी। बनारस जिले में ही उनकी जमींदारी थी। गाँव में हवेलीनुमा पक्का मकान था। किसी बात की कमी न थी उन्हें। परिवार में उनके पत्नी देवकी और एकमात्र पुत्र रघुनाथ तिवारी थे।

शादी पक्की हो गयी। रामनाथ तिवारी के एक अभिन्न मित्र थे सूर्य नारायण मिश्र। उन्हीं की इकलौती लड़की श्यामा से शादी होनी निश्चित हुई थी। मिश्रा जी भी काफी सम्पन्न व्यक्ति थे। श्यामा ही उनकी एकमात्र संतान थी। इसीलिए शादी में उन्होंने दिल खोलकर खर्च किया था। दहेज भी काफी दिया था।

श्यामा पढ़ी-लिखी, सुन्दर और आकर्षक युवती थी। गोरा रंग, इकहरी देह और लंबा कद था उसका। घर-गृहस्थी के कामों में निपुण तो थी ही वह अपने मृदु और सरल स्वभाव से ससुराल वालों का दिल जीत लिया उसने। रघुनाथ तिवारी सुशिक्षित और सद्गृहणी पत्नी पाकर प्रसन्न थे। वे श्यामा को इतना प्यार करते थे और इतना चाहते थे कि उसके बिना एक पल रहना उनके लिए मुश्किल था।

संयोगवश दो साल बाद एक छोटी-सी बीमारी में श्यामा का स्वर्गवास हो गया। रघुनाथ तिवारी अपनी प्राणप्रिया पत्नी के वियोग में तड़प उठे और पागलों की तरह घूमने लगे। रात-दिन बड़बड़ाते रहते, 'श्यामा तुम कहाँ गयी, कहाँ गयी तू मुझे छोड़ कर।' दिन-प्रतिदिन उनकी हालत दयनीय होती जा रही थी। बाल उलझे रहते। तन बदन का खयाल न रहता। कपड़े-लत्ते भी न बदलते। खाना-पीना और सोना तो एकबारगी छूट ही गया था उनका। रघुनाथ तिवारी मेरे अभिन्न मित्र थे। मुझसे उनकी यह दशा देखी नहीं जाती थी। लेकिन मैं कर ही क्या सकता था भला।

उन्हीं दिनों एक महात्मा काशी के बंगाली टोला मोहल्ले में रहते थे। उनका नाम था भोला गिरि। योगी पुरुष थे वह। प्राय: समय मिलने पर मैं उनके यहाँ चला जाया करता था। बड़ी शान्ति मिलती थी मुझे उनके निकट। एक दिन मैं विक्षिप्त रघुनाथ तिवारी को वहाँ ले गया अपने साथ।

उस समय मुझे घोर आश्चर्य हुआ जबकि मुझे देखते ही गिरी महाशय बोले, 'इन पत्नीवियोगी को लेकर यहाँ क्यों आए?'

मैं उनसे कभी इस संबंध में चर्चा नहीं की थी। सोचा, बाबा अवश्य ही अपनी योगविद्या से सब कुछ जान गये होंगे।

क्या सोच रहे हैं शर्मा जी! बाबा ने पुन: मुस्कराकर कहा। मैं गम्भीर होकर बोला, मैं जो कुछ सोच रहा हूँ उसे आप समझ रहे हैं। मुझसे क्यों पूछ रहे हैं? कुछ उपाय करें—जिससे तिवारी जी की आत्मा को शांति मिले। मेरी बात सुनकर गिरी महाशय ने गहरी दृष्टि से एक बार तिवारी जी की ओर देखा और फिर कुछ सोचने लगे। करीब आधा घण्टा बाद बोले, 'अगली अमावस्या की रात में इनको लेकर आइएगा तभी कुछ हो सकता है। और हाँ, आते समय अगरबत्ती और सुगंधित फूलों की चार मालाएँ भी लेते आना।'

अमावस्या की रात में गिरी महाशय कौन-सा उपाय करेंगे यह न समझ सका मैं। खैर, अमावस्या की साँझ के समय अगरबत्ती और माला लेकर तिवारी जी के साथ जब मैं उनके घर पहुँचा, तो देखा वे पल्थी मारकर ध्यान की मुद्रा में आँख बंद किये बैठे हुए थे। मैं सामान रखकर सामने बैठ गया। तिवारी जी भी हाथ जोड़कर एक ओर बैठ गये।

पूरे दो घण्टे बैठना पड़ा। मगर यह क्या? बाबा को समाधि से उठते ही तिवारी जी अचेत हो गये और उनकी आँखें मुँद गयीं।

बाबा ने तिवारी जी को गहरी नजरों से एक बार देखा और फिर उनके सामने अगरबत्ती सुलगाकर रख दिया। बोले, 'इन पर इनकी पत्नी की आत्मा आ गयी है।' इतना कहकर बाबा ने उन पर जल फेंका।

तिवारी जी का चेहरा लाल हो गया और होंठ फड़फड़ाने लगे। अचानक वे बोलने लगे।

गिरी महाशय ने पूछा, तुम कौन हो?

मैं श्यामा हूँ।

सूर्य नारायण मिश्र की लड़की और रघुनाथ तिवारी की पत्नी।

बहुत ठीक! इस समय तुम कहाँ से बोल रही हो? मैं कलकत्ता के एक मारवाड़ी सेठ के घर में लड़की के रूप में पैदा हुई हूँ। एक बात याद रखिए। मुझे यहाँ देर तक मत रोकिएगा। मैं इस समय अपनी माँ के साथ सो रही हूँ। माँ भी सो रही हैं। उनके जागने के पहले मुझे अपने वर्तमान शरीर में वापस जाना होगा। वर्ना वे लोग घबराएँगे। हो सकता है वे लोग मुझे मरी हुई समझकर गंगा में प्रवाह न कर दें।

क्या तुम्हारी आत्मा अपने सूक्ष्म शरीर को लेकर यहाँ आई है? गिरी महाशय ने पूछा।

हाँ।

लेकिन इतने से तुम्हारे पति रघुनाथ तिवारी को संतोष न होगा। हो सकता है यह खबर पाकर कलकत्ता के लिए वे चल पड़ें और तुम्हें खोज कर तुमसे मिलने का प्रयास करें। आप ऐसा करने से उन्हें रोकिएगा। मेरी अवस्था इस समय कुल तीन महीने की है। मैं तो शिशु के शरीर से निकलकर और अपने पति के वयस्क शरीर के माध्यम से बात कर रही हूँ। मेरी आत्मा मेरे वर्तमान शरीर में इतनी विकसित रूप में बातचीत नहीं कर सकेगी। तब उन्हें निराशा होगी और अधिक दु:खी हो जाएँगे।

एक आमंत्रित आत्मा के द्वारा यह सारी बात सुनकर मैं एकबारगी स्तब्ध रह गया। पहली बार मैंने आत्मा का आवाहन देखा था और इस प्रकार की बातें सुनी थीं। मैंने बाबा से अनुरोध किया कि मुझे कुछ प्रश्न करने की आज्ञा दें।

बाबा ने स्वीकृति दे दी मुझे।

मैंने पहला प्रश्न किया, क्या तुम यह बतला सकती हो कि जीवन और मृत्यु के बीच तुमको कैसा अनुभव हुआ था?

हाँ, बतला सकती हूँ। तीन दिनों से मुझे बुखार आ रहा था मगर चौथे दिन बुखार काफी तेज हो गया। दोपहर को दवा खाकर मैं जैसे ही लेटी थी कि एकाएक सर चकराने लगा और उसके बाद सीने में दर्द होने लगा। मैं उठकर बैठ गयी। किसी को बुलाना चाहा, मगर बुला न सकी, तबीयत भी घबराने लगी। आँखें झपकने लगीं और नींद सी लगने लगी। मैं फिर लेट गयी और न जाने कब गहरी नींद में सो गयी। काफी देर बाद 'बहू-बहू' की आवाज कानों में पड़ी। शायद मेरी सास मुझे पुकार रही थी। मेरी नींद खुल गयी। लेकिन घोर आश्चर्य मुझे इस बात का हुआ कि मैं अपने शरीर को खाट पर पड़ी हुई देख रही थी। मेरी सास और गाँव की कुछ औरतें मेरे शरीर को चारों ओर से घेरकर बैठी जोर-जोर से रो रही थीं। मैं अपने शरीर को छूना चाहा मगर ऐसा न कर सकी। काफी देर तक बैठे रही अपने शरीर के पास। बाद में मुझे जब यह मालूम हुआ कि मैं मर चुकी हूँ तो बड़ा दुःख हुआ मुझे। मेरे पति उस समय बनारस में थे। मैं उनसे यह बतलाने के लिए वहाँ से चल पड़ी कि मैं अब मर चुकी हूँ। कैसे अब उनसे मुलाकात होगी ?

तुम्हारे गाँव से बनारस करीब १५-१६ मील है। तुम कैसे गयी रघुनाथ तिवारी के पास ?

बस जैसे ही सोचा कि उनसे मुझे मिलना चाहिए तुरन्त उनके पास पहुँच गयी मैं।

लेकिन तुम तो मर चुकी थी ? पति से बात कैसे की तुमने ?

बात कहाँ कर सकी मैं। जब वहाँ पहुँची, तो वे उस समय किसी आदमी से बात कर रहे थे। मैं उनके सामने जाकर खड़ी हो गयी और उनके मन में यह भावना भर दी कि मैं मर चुकी हूँ। गाँव जल्दी जाएँ।

उसके बाद क्या हुआ ?

मैं भी गाँव लौटकर अपने शरीर को देखना चाहती थी। मगर ऐसा न कर सकी। मुझे लगा कि कोई अदृश्य शक्ति मेरे अस्तित्व के चारों ओर घूम रही है। फिर मैं सब कुछ एकाएक भूल गयी। यह भी भूल गयी कि मैं मर चुकी हूँ और संसार से मेरा कोई नाता नहीं रह गया है। उस समय मुझे घोर शान्ति का अनुभव हो रहा था।

क्या उस समय तुम इसी संसार में अपने अस्तित्व का बोध कर रही थी ?

नहीं! सब कुछ भूल जाने के बाद उस शान्ति के बीच मैं एक ऐसे वातावरण में अपने आपको पा रही थी जहाँ घना कुहरा छाया हुआ था और चारों तरफ चाँदनी जैसा शुभ्र प्रकाश फैल रहा था।

फिर तुम्हारा कलकत्ता में जन्म कैसे हुआ ?

मैं न जाने कब तक और कितने दिनों तक उस स्थिति में और उस वातावरण में विचरण करती रही और इधर-उधर भटकती रही, बतला नहीं सकती। एक दिन अचानक न जाने कहाँ और किधर से ५-६ लड़कियों ने आकर मुझे घेर लिया।

कैसी थीं वे लड़कियाँ ?

बहुत सुन्दर थीं। किसी के हाथ में पूड़ी-मिठाई की थाली थी, किसी के हाथ में पानी से भरा गगरा था, तो किसी के हाथ में रेशमी साड़ियाँ थीं।

सभी ने एक साथ मिलकर कहा—लो खाना खा लो! पानी पी लो और यह साड़ी पहन लो।

मैंने चुपचाप खाना खाकर साड़ी जब पहन ली, तो वे लड़कियाँ मुझे एक बहुत बड़े महल में ले गयीं अपने साथ। महल के चारों ओर सुन्दर फूलों के बाग थे और वहाँ काफी भीड़ थी। महल के भीतर एक तख्त पर काफी मोटा ताजा एक व्यक्ति सर झुकाए हुए बैठा हुआ था। उसके बेडौल शरीर पर गेरुवे रंग का रेशमी चोंगा झूल रहा था।

उसके सामने ले जाकर लड़कियों ने खड़ा कर दिया। उस व्यक्ति ने अपना बड़ा-सा सर उठाकर मेरी ओर घूरते हुए देखा और फिर हाथ से कोई इशारा किया। जिसका मतलब मैं नहीं समझी। उसके बाद फिर क्या हुआ बतला नहीं सकती। अच्छा, अब मुझे जाने दें। इतना कहकर श्यामा की आत्मा वापस चली गयी और उसके वापस जाते ही तिवारी जी सचेत होकर फटी-फटी आँखों से चारों ओर देखने लगे।

क्या बात है तिवारी जी! मैंने पूछा।

श्यामा कहाँ गयी? अभी-अभी तो थी वह वहाँ? चौंकते हुए उन्होंने पूछा।

आपने श्यामा को देखा था? बाबा ने पूछा।

हाँ, देखा ही नहीं, बल्कि उससे मैंने बातें भी कीं।

तो आपने पत्नी को देख लिया और उससे बातें भी कर लीं। यही चाहते थे न आप।

तिवारी जी को यह सुनकर जैसे होश आया। चौंककर बोले, हाँ! महाराज मैंने आपसे इसी के लिए प्रार्थना की थी। मुझे शान्ति मिल गयी अब।

रघुनाथ तिवारी को तो शान्ति मिल गयी। मगर मेरा मन एकबारगी अशांत हो उठा। एक साथ कई प्रश्न उभर आये मानस में। इस घटना से मेरी कई जिज्ञासाओं का एक साथ समाधान हो गया। कलकत्ता जाकर मैंने श्यामा के पुनर्जन्म के संबंध में उसके बताये हुए पते पर छानबीन की, तो बात सच की निकली। कलकत्ता स्ट्रीट के एक मारवाड़ी परिवार में तीन मास पूर्व जन्म लिया था एक लड़की ने। श्यामा ने अपने वर्तमान माता-पिता और परिवार के लोगों के जो नाम बतलाए थे—वे सही थे।

मरने के बाद श्यामा को उन रहस्यमयी लड़कियों के द्वारा जो पूड़ी-मिठाई और साड़ी मिली थी—वह इस तथ्य की पुष्टि करती है कि मृतक के नाम से जो कुछ भी इस लोक में दान-पुण्य किया जाता है—वह अवश्य उसी रूप में उसे मिला है।

बाबा ने बतलाया कि जब तक जन्म लेने वाला शिशु बोलना और भाषा समझना नहीं सीख जाता तब तक उसे अपने पूर्व जीवन-जगत और पूर्व मति-गति का स्मरण बराबर बना रहता है।

भोला गिरी निश्चय ही एक सिद्ध योगी पुरुष थे। आत्म विद्या में वे पारंगत थे। मुझे अपनी खोज की दिशा में काफी सहयोग मिला। मेरे यह पूछने पर कि जब श्यामा की आत्मा ने जन्म लिया था तो फिर अपने आपको उसने अपने पति के सामने कैसे प्रकट किया? पूर्व शरीर तो नष्ट हो चुका था। वह नवीन देह धारण कर चुकी थी। तो बाबा ने बतलाया कि जैसे जीवात्मा की पूर्वजन्म संबंधी स्मृति बनी रहती है उसी प्रकार उसे पूर्वशरीर के आकार-प्रकार और रूप-रंग का भी ज्ञान बना रहता है, पुनर्जन्म के कुछ समय बाद तक। अपने पूर्वसंस्कार, गुण, कर्म आदि की स्मृतियों के साथ अपने पूर्वपार्थिव शरीर के ज्ञान को सम्मिलित कर अपने भौतिक शरीर का निर्माण कुछ समय के लिए वे कर लेती हैं। इसमें आश्चर्य की बात नहीं। यहाँ इस तथ्य को भी समझ लेना चाहिए कि आकाश यानी 'इथर' में जैसे शब्द के कंपन कुछ समय तक बने रहते हैं वैसे ही रूप के भी आकार-प्रकार वहाँ बने रहते हैं दीर्घकाल तक। जिसकी आत्मा जितनी प्रखर और शक्तिशाली होती है—उसके पार्थिव शरीर के रूप का आकार-प्रकार भी उसी के अनुसार दीर्घकाल पर्यन्त 'इथर' में बना रहता है। ऐसी आत्माएँ यदि कहीं जन्म भी ले चुकी हैं, तो आवश्यकता पड़ने पर वे इस प्रकार अपने पूर्वशरीर के द्वारा कहीं भी प्रकट हो सकती हैं।

यह हम स्वीकार करते हैं कि आपका विज्ञान ग्रहों और नक्षत्रों पर अपना आधिपत्य जमा रहा है, लेकिन कितने आश्चर्य की बात है कि वह अभी तक आत्मा के बारे में कोई ऐसा तथ्य खोज नहीं पाया है—जिसका सिद्धान्त प्रकट कर वह आत्मा की अमरता और उसके भूत-भविष्य के बारे में सर्वसुलभ मार्ग का दर्शन करा सके। वैसे हमारे देश के मनीषी इस विषय पर काफी कुछ लिख गये हैं किन्तु उनका इस युग में वैज्ञानिकीकरण आवश्यक है। जीवात्मा के पुनरागमन से संबंधित विवरण तो वैज्ञानिक तथ्यों के इतना निकट है कि हमें अपने मनीषियों के प्रति श्रद्धानत हो जाना पड़ता है। प्रत्येक मानव शरीर का निर्माण पंच भौतिक तत्वों से होता है। किन्तु किस तत्व का कितना अंश शरीर में होता है और किस रूप में रहता है—इसकी जानकारी के पीछे आज के वैज्ञानिक पड़े हैं। चिकित्सा-विज्ञान का यह गूढ़ और स्थूल विषय है।

बाबा ने बतलाया कि जीव जब मरता है, तब उसका शरीर शीतल हो जाता है। यानी अग्नि तत्व निकल जाता है। उसके बाद वायु की जो नलिकाएँ हैं—वे धीरे-धीरे बंद होने लगती हैं। इसे ही श्वास की गति का बंद होना कहते हैं। जब तक शरीर की नलिका में वायु शेष रहती है तब तक मनुष्य को मरा हुआ घोषित नहीं किया जा सकता। अंगों में किसी न किसी रूप में संचालन क्रिया अवश्य होती रहती है। यह वायु ही अंतिम तत्व है, जो अंत में शरीर के बाहर निकलता है। यह वायु तीन प्रकार का होता है—स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मतम। वे तीनों प्रकार से वायु एक-दूसरे से घुले-मिले होते हैं और शरीर से निकल कर बाहरी वायु-मण्डल की लहरों पर बैठी विचरण करती रहती हैं।

लंदन में बोली गयी बात वायु लहरों पर बैठी एक क्षण के सौवें हिस्से में टोकियो पहुँच जाती है—ठीक इसी तरह मनुष्य के शरीर से मरते समय निकली हुई वायु विचरण

करती—कहाँ से कहाँ पहुँच रही है—इसका क्या ठिकाना ? कभी-कभी वह वायु अपने स्थूल रूप में श्वास के द्वारा किसी अन्य जीवित व्यक्ति के भीतर प्रवेश कर जाती है। यदि वह व्यक्ति प्रजनन क्रिया में लीन है, तो उसके योग से जो स्त्री गर्भ धारण करती है—उसके गर्भ में उस मृतक की आत्मा का आविर्भाव हो जाता है। वैसे यह एक दुर्लभ संयोग है। ऐसे संयोग हमेशा नहीं होते हैं, पर होते अवश्य हैं और जब कभी इस तरह के दुर्लभ योग-नियोग से कोई आत्मा इस संसार में आती है, तो वह अपनी पिछली जन्म-कथा बयान कर लोगों को आश्चर्य में डाल देती है। खैर!

यह पुनर्जन्म की पृष्ठभूमि और इसी पृष्ठभूमि के आधार पर अपनी खोज की दिशा में मुझे कई पुनर्जन्म से संबंधित प्रमाणित और तथ्यपूर्ण घटनाएँ देखने-सुनने को मिलीं जिन्हें मैं कथा-साहित्य के रूप में आपके सम्मुख यथा समय उपस्थित करूँगा।

OOO

१४

हत्यारा साधु

साधु ने पार्वती की नग्न छाती में एक गहरा जख्म कर डाला और अपना मुँह लगा उसका रक्त पीने लगा और फिर

सन् १९५० ई०।

अगस्त की १८ तारीख थी। आकाश काले-भूरे मेघों से घिरा हुआ था। झर-झर पानी गिर रहा था। हवा में धरती की सोंधी-सोंधी गन्ध भरी हुई थी। शाम का समय था, मैं आराम से अपनी मेज पर दोनों टाँगें फैलाकर मुँह में सिगरेट दबाये विभाग की रिपोर्ट पढ़ रहा था। वह रिपोर्ट धतूरे के विष से सम्बन्धित थी। उन दिनों धतूरे के विष की शोधन क्रिया हो रही थी। मगर विभाग के वरिष्ठ अधिकारीगण अपने कार्य में पूर्ण रूप से सफल नहीं हो रहे थे। यह कहना न होगा कि भारतीय लोग प्राचीन काल में ही विष प्रयोग करना अच्छी तरह सीख गये थे। अनचाहे मित्र, घोर शत्रु तथा अवांछित प्रेमी को विष-पान कराकर मौत के मुँह में आसानी से झोंक देना उनके लिए सामान्य सी बात थी। प्राचीन समय से अब तक व्यावसायिक ठगों द्वारा लोगों को लूटने के लिए जो विष उपयोग में लाये जाते हैं उनमें धतूरे के बीज का स्थान पहला है। यह जंगली वनस्पति सारे देश में आसानी से मिल जाती हैं।

योगायोग ही समझिए कि खुफिया विभाग के कार्यालय के कुछ अधिकारी भी किसी गुप्त विष की खोज में लगे थे उन दिनों। उन अधिकारियों में मेरे एक परम मित्र भी थे। उनका नाम था केशव चन्द्र सेन। विषविभाग का इन्चार्ज था वह। उनकी फाइल में जहरखोरी के पुराने मामलों के विवरण दिए हुए थे।

मैं उसी दिन शाम को केशव चन्द्र सेन से उनके बँगले पर मिला। मेरी धारणा थी कि उनसे मेरी समस्याओं पर थोड़ा बहुत अवश्य प्रकाश पड़ेगा। मेरी धारणा इसलिए दृढ़ थी कि उस समय १९५४ ई० में होने वाले कुम्भ मेले की तैयारियाँ जोरों पर थीं हरिद्वार में। खुफिया विभाग को आशंका थी कि इन दिनों पैदल जाने वाले यात्रियों को विष खिलाकर लूटने की घटनाएँ अवश्य होंगी। खुफिया विभाग का केन्द्रीय कार्यालय सड़क पर मृत पाये गये यात्रियों की जाँच बहुत सावधानी से करता था और पता लगाता था कि उन्हें विष तो नहीं दिया गया है।

तभी मेरठ जिले के बेगमाबाद से सूचना मिली कि एक नवयुवती स्त्री सड़क पर पेड़ के नीचे मृत पायी गयी है। वह सड़क दिल्ली से मेरठ, मुजफ्फर नगर तथा सहारनपुर होते हुए हरिद्वार जाती थी। इस मामले में शव-परीक्षा का विवरण मिलने पर खुफिया विभाग इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा कि यह किसी गुप्त विष का परिणाम है। एक सप्ताह बाद दूसरी सूचना मिली। मुजफ्फर नगर के रायपुर इलाके में एक विवाहित युवती अचेत पायी गई। पिछले ही महीने उसका विवाह उसी गाँव में हुआ था। उसको अस्पताल में भर्ती किया गया, जहाँ उसकी हालत सुधर रही थी। ऐसे ही दूसरे दिन भी एक घटना घटी दिल्ली-मेरठ रोड पर। एक नाले में सोलह वर्षीय किशोरी लड़की की लाश पुलिस को मिली। उसकी छाती बीच में से काट कर एक काफी गहरा घाव कर दिया गया था। घाव के स्थान पर बड़ा सा गड्ढा था—जो अब सूख चुका था। इन तीनों खूनों से खुफिया विभाग इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि कोई भी आदमी पैदल चलते हुए एक सप्ताह के अन्दर बेगमाबाद से रायपुर आ सकता है। यह भी विश्वास होने लगा कि तीनों खून एक ही व्यक्ति ने किये हैं। निश्चय ही यह किसी पेशेवर आदमी का काम था।

इसके कुछ दिनों बाद सूचना मिली कि सहारनपुर जिले में सड़क से लगे एक मैदान में एक युवती स्त्री की लाश पायी गई है। उसकी भी आयु लगभग १८-२० वर्ष की थी। गर्भवती भी थी वह।

जिस समय मैं केशव चन्द्र सेन के बँगले में पहुँचा—वे इन्हीं रहस्यमयी समस्याओं से बुरी तरह उलझे हुए थे। उन्होंने सारी घटनाओं को विस्तार से बतलाया मुझे, मगर मैं इस संबंध में कर ही क्या सकता था? चुपचाप मैं उनकी बातें सुन रहा था। तभी व्यवधान पड़ा। पास पड़ी तिपाई पर रखे टेलीफोन की घण्टी घनघना उठी। शव-परीक्षागृह से फोन आया था। बेगमाबाद में मिली लाश की शव-परीक्षा का विवरण मिल गया। फोन पर बताया गया है। उसके प्रभाव से युवती की मृत्यु २० मिनट के अन्दर हो गयी थी मगर यह समझ में नहीं आ रहा था कि धतूरे के विष से इतनी शीघ्र मारण-क्रिया सम्भव कैसी हुई? साथ ही सबसे आश्चर्य की बात यह थी कि खूनी ने अपना शिकार युवतियों को ही बनाया था। उनको लूटने व ठगने का सवाल ही पैदा नहीं हो रहा था। सभी मृत युवतियाँ साधारण और गरीब परिवार की थीं। उनके पास भला क्या मिलने वाला था? तो फिर क्या उनके साथ बलात्कार अथवा पाशविक अत्याचार किया गया था। नहीं, यह भी नहीं हुआ था। पुलिस को इसके कोई चिह्न नहीं मिले थे।

आखिर क्या उद्देश्य था इस बलियज्ञ का? पुलिस हैरान थी। धतूरे जैसा विष मिला है—यह सुनकर मैं जिज्ञासु हो उठा था। सम्भव है इसी सबसे मेरी समस्याओं पर भी विपुल प्रकाश पड़े। केशव चन्द्र सेन से मैंने अपना विचार प्रकट किया और उनसे अनुरोध किया कि मुझे भी इस मामले में अपने साथ रख लें। वे इसे मान गये।

अपने चीफ से विचार-विमर्श कर मैं केशव चन्द्र सेन के साथ मुजफ्फर नगर के अस्पताल में पहुँचा, जहाँ बेहोश पायी गयी युवती भर्ती की गयी थी। सौभाग्यवश उस युवती की दशा में सुधार हो रहा था। हम दोनों को देखकर वह बिस्तर पर उठकर बैठ

गयी। केशव चन्द्र सेन के पूछने पर उसने एक अजीबो गरीब सनसनी खेज कहानी सुनायी। उस युवती का नाम था चन्द्रावती। जाति की ग्वालिन थी वह। अपने पति के साथ बैलगाड़ी से हरिद्वार जा रही थी। पूरे दिन चल कर एक जगह पति-पत्नी ने पड़ाव डाल दिया। वहाँ पहले से एक साधु भी अपनी धूनी लगाये बैठा था। उसके साथ कई और साधु थे। उन लोगों का भोजन पक रहा था। तभी एक साधु की नजर चन्द्रावती पर पड़ी। उस समय उसका पति पास के गाँव में भोजन पकाने के लिए लकड़ी इत्यादि का इन्तजाम करने गया था। चन्द्रावती को अकेली समझकर वह साधु उसके निकट आया और विनम्र स्वर में बोला, माई, तू अकेली है क्या?

नहीं बाबा, मेरे पति भी मेरे साथ हैं। पास के गाँव में भोजन और लकड़ी की व्यवस्था करने गये हैं।

भोजन की चिन्ता न कर माई, साधु पहले से भी और कोमल वाणी में बोला—बाबा के भण्डारे से भोजन मिल जायेगा।

चन्द्रावती कुछ कहती कि साधु वापस लौट गया, और जब वह आया तो उसके हाथ भोजन की दो थालियाँ थीं। चन्द्रावती मना न कर सकी। भोजन ले लिया उसने। थोड़ी देर बाद उसका पति भी आ गया, फिर दोनों ने मिलकर साधु के दिये भोजन को खाया। मगर चन्द्रावती पूरा भोजन खा न सकी। अभी उसने चार-पाँच कौर ही खाया होगा कि उसके ऊपर एक विचित्र प्रकार की तन्द्रा छाने लगी और दूसरे ही क्षण वह जमीन पर लुढ़क गई, फिर होश नहीं रहा उसे।

रात के आखिरी पहर में भारी पीड़ा की वजह से चन्द्रावती की बेहोशी टूटी। वह पीड़ा उसकी छाती के बिल्कुल बीच में हो रही थी। शायद उसी पीड़ा के असह्य बेचैनी की वजह से उसकी आँखें अपने आप खुल गई थीं। आँखें खुलने के बाद सबसे पहले उसने एक विचित्र भेषधारी साधु को देखा, जो उसकी छाती की ओर गौर से देख रहा था। उस विचित्र साधु की आँखें लाल हो रही थीं। चेहरे पर भयंकर पैशाचिक भाव थे उस समय। मुँह से ताजे खून के कतरे लगे थे। ऐसा लगता था मानो अभी-अभी उसने रक्त-पान किया हो। चन्द्रावती एकबारगी सिहर उठी। भय से फिर उसकी आँखें बन्द हो गईं। दुबारा तन्द्रा छाने लगी उस पर।

फिर क्या हुआ? केशव चन्द्र सेन ने प्रश्न किया।

चन्द्रावती बोली—मुझे मालूम नहीं, इसके बाद क्या हुआ। जब मेरी आँखें दुबारा खुलीं तो मैंने अपने को यहाँ अस्पताल में पाया।

क्या तुम उस साधु की अच्छी तरह से हुलिया बता सकती हो?

हाँ, बतला सकती हूँ, चन्द्रावती ने कहा—मुझे सब कुछ याद है। वह काफी वृद्ध, पुष्ट और लम्बा था। उसका सिर घुटा हुआ था। आँखें तीखी और लंबी थीं। नाक छोटी थी। निचला होंठ बाहर को निकला हुआ और काफी मोटा था। माथे पर सिन्दूर का टीका लगाये हुआ था। बायें गाल पर रुपये के बराबर जलने का निशान भी था।

यह विवरण सचमुच काफी महत्त्व का था, क्योंकि वेश-भूषा से सभी साधु इतने मिलते-जुलते हैं कि पहचानना कठिन हो जाता है।

केशव चन्द्र सेन और खुफिया विभाग के उच्च पदस्थ कर्मचारियों ने इस मामले पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया।

उन लोगों की नजर में यह निश्चित था कि वह रक्तपिशाच साधु अब हरिद्वार पहुँच गया होगा। किन्तु उसको लाखों के जनसमूह से खोज निकालना बड़े धैर्य और परिश्रम का काम था। खचाखच भरे मेले में उसे पकड़ना आसान न था। हाँ, घाट पर स्नान करते हुए वह जरूर हाथ आ सकता था। डी०आई०जी० को साथ लेकर केशव चन्द्र सेन और हम हरिद्वार पहुँचे। मेले में चारों तरफ खुफिया पुलिस के सिपाही छा गये।

पहला दिन और पहली रात खत्म हो गई। शिकार हाथ न लगा। दूसरे दिन का सवेरा हुआ। पुलिस की मुस्तैदी और बढ़ गई। मगर तभी केशव चन्द्र सेन मेरी ओर आते दिखलाई पड़ें। उनका मुँह उतरा हुआ था। मेरे पास आते ही उन्होंने कहा—लो यह देखो और फिर हाथ में लिए उस दिन का अखबार मेरी ओर बढ़ा दिया।

अरे यह क्या? चकित रह गया मैं। समाचार पृष्ठ के प्रथम पृष्ठ के कोने पर छपा हुआ था—काशी के बंगाली टोला मुहल्ले में एक बंगालिन नवयुवती बीच गली में मृत पाई गयी है। उसकी छाती के बीच में ताजे घाव के निशान थे। लाश को पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया गया है।

अब हरिद्वार में समय नष्ट करना व्यर्थ था। हम उसी दिन शाम को बनारस के लिए रवाना हो गये। वहाँ पहुँच कर सीधे हम दोनों डॉक्टरों से मिले। उसने केशव चन्द्र सेन को बतलाया कि मृत युवती के शरीर में धतूरे जैसा विष भी पाया गया है। दूसरी बात आश्चर्य की यह है कि मृत युवती के शरीर में एक बूँद भी खून नहीं मिला। ऐसा लगता है कि किसी ने एकबारगी उसके खून को खींच लिया है।

मुझे निश्चित रूप से यह विश्वास हो गया कि वह साधु काशी में ही है। सतर्कता पूर्वक खोजने से अवश्य पकड़ में आ जायेगा। मेरी इस धारणा से केशव चन्द्र सेन भी सहमत थे, मगर किसी कारणवश वें मेरे साथ काशी में रहने को तैयार न थे। मेरे ऊपर सब कुछ छोड़कर दूसरे दिन वे दिल्ली वापस लौट गये।

दो महीने धीरे-धीरे गुजर गये। कुछ पता न चला। इस बीच मैंने बनारस की तमाम गलियों की खाक छान मारी। सारे मठ खोज डाले, जहाँ-जहाँ साधुओं के बाड़े थे, वहाँ-वहाँ गया—मगर सब व्यर्थ। अब मैं हताश और निराश हो चला था। मगर खोज जारी रखी थी मैंने।

एक दिन शाम को मैं टहलता हुआ दशाश्वमेधघाट की ओर निकल गया। काफी भीड़ थी वहाँ। दो-तीन स्थानों पर साधु-संन्यासियों के भजन-कीर्तन हो रहे थे। मैंने स्वभावतः साधुओं की मण्डली पर सरसरी नजर डाली। सहसा मेरी घूमती हुई नजर एक

व्यक्ति पर रुक गई। आश्चर्य से काफी देर तक देखता रहा मैं। उसका सिर मुँड़ा हुआ था, आँखें खिंची-खिंची थीं, नीचे का जबड़ा बाहर की ओर लटका हुआ था। उसके बायें गाल पर रुपये के बराबर जलने का निशान भी था।

धीरे-धीरे कदम बढ़ाता मैं उसके निकट जा पहुँचा। वह उस समय भजन में मस्त था। उसके चारों तरफ कुछ बंगालिन युवतियाँ और वृद्ध स्त्रियाँ बैठी हुई थीं। मैं चाहता तो उसी समय पुलिस की सहायता से उसको गिरफ्तार करा सकता था। मगर ऐसा मैंने नहीं किया। मैं उसके रहने का स्थान देखना चाहता था—उसकी गतिविधियों को बारीकी से समझना चाहता था। और साथ ही उसके घृणित उद्देश्य का भी पता लगाना चाहता था।

भीड़ धीरे-धीरे छँटने लगी। अब खास तौर से कुछ लोग चहल-कदमी करते हुए नजर आ रहे थे। वह साधु भी अपना सब सामान समेट कर चलने को तैयार हुआ।

सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ जब वह आगे बढ़ा तो मैं भी उसके पीछे हो लिया। सड़क पर आकर वह काली जी के मन्दिर की बगल से बंगाली टोला जाने वाली गली में मुड़ गया। चाल तेज हो गई थी उसकी। मैं उससे लगभग २० कदम की दूरी पर पीछा कर रहा था। मैंने देखा वह एक भूजे की दुकान पर गया और उसने लाई-चूड़ा खरीदा। फिर दुकान की बगल वाली सकरी गली में घुस गया। वह गली निश्चय ही घाट की ओर जाने वाली थी। बीस-पच्चीस कदम चलकर वह साधु एक अति पुराने जर्जर मकान के सामने खड़ा हो गया। मकान के सामने काफी अंधकार था। थोड़ी दूर पर म्युनिस्पैलिटी की बत्ती जल रही थी। मगर उसकी रोशनी उस मकान तक आ नहीं पा रही थी।

गली में घोर सन्नाटा छाया हुआ था। नुक्कड़ पर कुछ कुत्ते आपस में झगड़ रहे थे। वह साधु थोड़ी देर तक खड़ा रहा, फिर उसने चारों तरफ सतर्कता पूर्वक नजर घुमायी और मकान के अन्दर घुस गया। उसके अन्दर जाते ही दरवाजा बन्द होने की आवाज आयी। मैं अपने स्थान पर चुपचाप खड़ा रहा। उस मकान के अन्दर कैसे जाया जाये—यह प्रश्न था मेरे सामने उस समय। लगभग एक घण्टा व्यतीत हुआ। प्रश्न हल न कर सका मैं। मैं लौट कर पुलिस स्टेशन जाने की सोच ही रहा था कि तभी दरवाजा खुला। फिर अन्दर से एक छाया बाहर की ओर निकलती दिखलायी पड़ी। छाया कौन थी? किसकी थी? समझ में नहीं आया। वह मेरी ही ओर आती दिख पड़ी। सतर्क हो गया मैं। जब वह मेरे बिल्कुल नजदीक से गुजरी तो मैंने देखा—वह कोई स्त्री थी।

अब मैं देर करना नहीं चाहता था। जैसे ही वह स्त्री दूसरी तरफ मुड़ी मैं लपक कर मकान के अन्दर चला गया और मैंने अन्दर से दरवाजा बन्द कर दिया। मकान के अन्दर खामोशी थी। चारों तरफ अंधकार छाया हुआ था। सदर दरवाजे के बगल से ही ऊपर की ओर सीढ़ी गई हुई थी। टटोलता हुआ दूसरी मंजिल पर पहुँचा मैं। वहाँ भी खामोशी और अंधकार की चिप-चिपाहट मौजूद थी।

पूरा मकान भयानक और रहस्यमय लग रहा था। मैं चारों तरफ अँधेरे में नजर घुमा रहा था तभी किसी के आने की आहट मिली मुझे। कोई तीसरी मंजिल से नीचे उतर रहा था। साँस रोक कर खड़ा हो गया मैं बरामदे के एक कोने में। कुछ क्षणों के बाद मैंने

देखा—एक लम्बी सी छाया सामने की सीढ़ी से उतर रही थी। उस खामोश अंधकार में भी मुझे पहचानने में दिक्कत नहीं हुई। वह छाया उसी खूनी साधु की थी। वह धीरे-धीरे कदम बढ़ाता हुआ सीढ़ियाँ उतरने लगा।

अवसर सुन्दर था। मैं जल्दी से तीसरी मंजिल की सीढ़ी को पार कर ऊपर जा पहुँचा। वहाँ भी अंधकार और खामोशी थी, मगर वातावरण दम घुटा देने वाला नहीं था। सामने खुली हुई छत थी। अगल-बगल चार बड़े-बड़े कमरे। छत के ठीक बगल में कमरे का दरवाजा उढ़काया हुआ था—जिसकी पतली दरार से अन्दर की हल्की पीली रोशनी बाहर आ रही थी। मैं धीरे-धीरे चल कर दबे पाँव दरवाजे के सामने खड़ा हो गया और यह आहट लेने लगा कि अन्दर कोई है या नहीं?

मुश्किल से १०/१५ मिनट ही मैं इस तरह खड़ा होऊँगा कि दूसरी मंजिल पर किसी दो आदमियों की बातचीत करने की आवाज सुनाई पड़ी। सतर्क हो गया मैं। छत के एक तरफ तुलसी के पेड़ लगाये गये थे। मैं उनके बीच अपने को छिपा कर बैठ गया और प्रतीक्षा करने लगा। तभी मुझे वह साधु उस स्त्री के साथ आता हुआ दिखाई पड़ा, जो मकान के बाहर गई हुई थी। दोनों आपस में धीरे-धीरे बातें करते हुए अन्दर कमरे में चले गये। उन्होंने दरवाजा आधा खुला ही छोड़ दिया। इसे संयोग ही कहिए—मैं जहाँ पर छिपा हुआ था, वहाँ से साफ कमरे का भीतरी भाग दिखलाई पड़ रहा था। मैंने पहली बार भरपूर रोशनी में उस स्त्री को देखा। वह बंगालिन लगती थी। आयु तीस वर्ष के आस-पास की थी। यौवन की मादकता अभी भी स्थिर थी चेहरे पर। गोल मगर बड़ी-बड़ी आँखें और ऊँचा माथा उसका। सीने का भाग हृदय से ज्यादा उठा हुआ था। पेट का हिस्सा नग्न था।

वह मेरी ही ओर मुँह करके खड़ी थी। उस समय उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में गहरी कामुकता का भाव स्पष्ट झलक रहा था। होंठों पर एक ऐसी मुस्कराहट खेल रही थी, जो अपनी ओर मनुष्य को आकर्षित करते समय व्यभिचारिणी और कामोन्मत्त स्त्रियों के होंठों पर हुआ करती हैं। मंत्रमुग्ध दृष्टि से उस साधु की ओर देख रही थी वह। उस समय जमीन पर बैठ कर साधु एक बड़ी सी नाद में न जाने क्या घोल रहा था। उसकी पीठ मेरी ओर थी।

थोड़ी देर बाद मुझे साधु की आवाज सुनाई पड़ी। वह कह रहा था—'पार्वती! प्रसाद तैयार हो गया, लो माँ को अर्पित करो।'

इतना कह कर उसने पास खड़ी स्त्री के हाथ में प्रसाद से भरा कटोरा थमा दिया।

पार्वती ने बड़े यत्न से प्रसाद को लिया और कमरे के दूसरी ओर चली गयी।

यह देखने के लिए पार्वती क्या कर रही है—मैं अपने स्थान से उठा और दरवाजे की बगल में बनी ऊँची खिड़की के पास जाकर खड़ा हो गया।

हे भगवान्! वहाँ तो अघोर पन्थियों जैसा वातावरण था। कमरे की दीवाल से लगी काली की पाषाण प्रतिमा खड़ी थी। उस भयंकर प्रतिमा के सामने कई नर-कपाल

पात्र रखे हुए थे, जिसमें शायद मद्य भरा हुआ था। पास ही मनुष्य की हड्डियाँ और बकरे का कटा हुआ सिर रखा हुआ था—एक थाली में। सब कुछ देखकर मेरे मन और आत्मा पर एक विचित्र प्रकार का भय और आतंक छा रहा था। चतुर्भुजा काली प्रतिमा के सामने पार्वती पूर्ण नग्न बैठी हुई थी। उसके सामने कटोरे में वह अज्ञात प्रसाद रखा था। पार्वती की आँखें बन्द थीं। शायद वह काली का ध्यान कर रही थी।

तभी धीरे-धीरे चल कर साधु पास आया और पार्वती के नग्न पीठ पर अपना हाथ फेरता हुआ—शराबी जैसी उन्मत्त वाणी में कहने लगा—'पार्वती! महाप्रसाद को ग्रहण करो अब। असीम शक्ति है महाप्रसाद में। तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूर्ण होंगी।'

दोनों हाथों से पात्र थामे, पूर्ण आशा और विश्वास से पार्वती ने साधु की ओर देखा और मुस्करा पड़ी। कुछ क्षण ठहर कर उसने महाप्रसाद को अपने होंठों से लगा लिया। एक ही साँस में पात्र खाली कर दिया पार्वती ने। और तभी देखा मैंने कि उसकी मांसल देह पत्ते की तरह काँपने लगी। आँखें बन्द हो गयीं। होंठ नीले पड़ने लग गये।

उसी समय साधु ने उसको तुरन्त सँम्भाल लिया और पास ही बिछी हुई दरी पर लिटा दिया। वह कुछ देर तक पार्वती की खामोश आँखों की ओर देखता रहा। उस क्षण उसके चेहरे पर विचित्र भाव थे। आँखों में क्रूरता और निर्दयता। होंठों पर अबूझ सी प्यास थिरक रही थी। चेहरे से आँखें हटा कर उसने पार्वती की छाती पर गड़ा दी। इसके बाद थोड़ा रुक कर उसने बाँहों से ढकी छाती अपने हाथों से पूर्ण नग्न की। मैंने देखा, साधु के चेहरे पर उस समय हिंसक पशु जैसा भाव था। उसने काली के पास पड़े छुरे को उठा लिया। दूसरे ही क्षण उसने उससे पार्वती के नग्न छाती के बिल्कुल बीचोंबीच एक ही चोट में गहरा जख्म कर दिया और अपना मुँह वहाँ लगा दिया।

बड़ी तन्मयता से पार्वती का गरम रक्त पी रहा था। मैं चुपचाप सब कुछ देख रहा था। भय और रोमांच से बुरा हाल था मेरा। हे भगवान्! क्या देख रहा था मैं? निश्चय ही वह साधु अघोरी तांत्रिक था। इसी प्रकार औरतों का खून पी-पीकर अवश्य ही किसी निकृष्ट तांत्रिक साधना की सिद्धि के चक्कर में था वह।

धीरे-धीरे पार्वती की पुष्ट और यौवन से भरी देह स्याह हो गई। मर चुकी थी वह। मृत्यु का ऐसा भयंकर और रोमांचकारी रूप मुझे देखने के लिए मिलेगा, ऐसा सोचा तक न था मैंने। तुरन्त मुझे अपने कर्त्तव्य का ध्यान आया और मैं खिड़की से हट गया। उस खामोश अंधकार में टटोलता-गिरता-पड़ता मैं सदर दरवाजे के पास पहुँचा और किसी तरह अपने को सँभालता हुआ पुलिस के सदर मुकाम पर जा पहुँचा। उस समय रात के दो बजने वाले थे।

चीफ इंस्पेक्टर को संक्षिप्त में पूरी कथा सुना कर मैंने थाना से केशव चन्द्र सेन को ट्रंककाल किया। वह दूसरे ही दिन दोपहर को बनारस आ पहुँचा। उसी दिन साँझ को साधु के मकान की पुलिस ने तलाशी ली और साधु को पार्वती के लाश सहित गिरफ्तार कर लिया। तलाशी के समय लाश एक बोरे में लिपटी हुई मिली थी।

साधु को कोतवाली में लाया गया। दो दिन और दो रात पुलिस के अधिकारी उससे पूछताछ करते रहे, मगर उसने कुछ नहीं बतलाया। वह बराबर चुप रहा। उसे बहुत मारा गया पर असर कुछ न हुआ। मारपीट कर पुलिस हैरान हो गई। अन्त में अदालत में मुकदमा चला और उसे आजीवन कैद की सजा हुई।

मगर मुझे इन सब सफलताओं से कोई विशेष खुशी न हुई। पुलिस ने एक रहस्यमय खूनी का पता लगा तो लिया, मगर धतूरे के उस रहस्यमय विष के संबंध में कुछ भी विवरण प्राप्त न कर सकी। तलाशी के दौरान मिट्टी के बर्तन में धतूरे का वह रहस्यमय विष अवश्य मिला था, जिसका थोड़ा सा अंश मैंने जाँच के लिए पुलिस से ले लिया था, परन्तु काफी अन्वेषण करने पर भी वह मालूम न हो सका कि धतूरे के विष को किस प्रकार और किन-किन प्रयोगों और किन-किन मिश्रणों द्वारा महाविष के रूप में परिवर्तित कर दिया गया था—जिसके स्पर्श मात्र से मौत का मुँह तुरन्त खुल जाता था।

यह कहना होगा कि वह साधु अघोरी मत का साधक था। उस मत में ऐसी बहुत सी सिद्धियों के वर्णन मिलते हैं, जिनमें औरतों के रक्तपान द्वारा एक विशेष प्रकार का सिद्धिलाभ करता है।

मैं विष के संबंध में जानकारी प्राप्त करने के लिए कई बार जेल में उस साधु से मिला मगर लाभ कुछ नहीं हुआ। कुछ भी बतलाने के लिए साफ इन्कार कर दिया उसने। अन्त में सिर्फ इतना ही कहा—ये सब तांत्रिक विष विधायें हैं। सभी को इस विषय में नहीं बतलाया जा सकता।

निश्चय ही वह साधु एक महान् तांत्रिक और साधक था। इसे मैं पूर्ण रूप से स्वीकार करता हूँ। कानून की दृष्टि में वह भले ही अपराधी था, मगर साधना की दृष्टि में निःसन्देह वह एक महान् और उच्च साधक था। मैं कभी-कभी जेल में साधु से मिलने के लिए चला जाया करता हूँ इसलिए कि शायद वह कभी मेरी विपुल जिज्ञासाओं को शांत करे, मगर मैं अभी तक सफल नहीं हो सका हूँ।

OOO

१५

कापालिक

घोर अंधकारमयी रात्रि। चारों ओर फैली एक अबूझ सी खिन्नता। निस्तब्ध वातावरण। सॉय-सॉय करते वातावरण में स्वर्णरेखा नदी की धारा का गम्भीर गर्जन भर सुनाई दे रहा था। बादलों से अटा आकाश काला पड़ गया था। उद्दाम हवा की लय पर नदी के किनारे खड़े पीपल और बरगद के पेड़ झूम रहे थे। गहन नि:श्वास जैसी हवा हाहाकार करती कुशों की घनी झाड़ियों को कँपाये दे रही थी।

थोड़ी देर पहले झींगुरों की झंकार भी सुनाई दे रही थी, मगर उस घने अँधियारे के बीच सहसा 'बोल हरि हरि बोल' की दहशतभरी आवाज ने उस अनवरत क्रन्दन का भी गला घोंट दिया। बोल हरि हरि बोल

आवाज धीरे-धीरे नजदीक होती जा रही थी। बॉस के झुरमुटों के बीच की पगडण्डी पर सहसा आठ-दस व्यक्ति प्रकट हुए। वे खाट पर किसी मृत व्यक्ति का शव लिए हुए थे। उनमें से एक व्यक्ति हाथ में लालटेन लिए हुए आगे-आगे चल रहा था।

नदी के किनारे श्मशान-भूमि में खाट उतार कर नीचे रख दी गयी। शव पर एक कीमती दुशाला पड़ा था, जिसे एक व्यक्ति ने उठा कर अपने बगल में दबा लिया। शायद उसने सोचा था कि इतना मूल्यवान दुशाला शव के साथ नहीं जलना चाहिए। फिर उसने आवाज दी, 'राधावल्लभ, ओ राधावल्लभ!'

'जी सरकार', राधावल्लभ बोला।

जल्दी चिता की तैयारी करो। सबेरा होने के पहले वापस लौटना है। हवेली के लोग इन्तजार करेंगे।

तभी पीपल की किसी डाल पर बैठा कोई मांसखोर पक्षी कर्कश स्वर में चीख पड़ा—चें चे चख चख।

कुछ देर बाद नदी के किनारे चिता तैयार हो गयी और उस पर शव को रख दिया गया। उसके बाद सनई की लकड़ी पर आग लिए हुए राधावल्लभ आगे बढ़ा और उसे चिता के भीतर रख दिया। फिर काले-सफेद धुयें का एक गुबार उठा और देखते-ही-देखते चिता धधक उठी।

शव-यात्रा में आये लोग इत्मीनान से जाकर बरगद के पेड़ के नीचे बैठ गये। उनमें से कुछ तो बीड़ी सुलगा कर पीने लगे और बाकी लोग आपस में गप-शप करने लगे।

सहसा हवा का वेग तीव्र हो उठा। बादल भी बुरी तरह गरजने लगे। शायद आकाश के वक्ष को जलाती हुई बिजली एक बार चमकी और उसी के साथ भयंकर रूप से बारिश होने लगी।

जब बरसात बन्द हुई और लोग चिता के पास आयें तो देखते क्या हैं कि चिता बुझ चुकी है और उस पर शव नही हैं।

आखिर शव गया कहाँ?

सभी लोगों का मन दहशत से भर उठा। वे भयमिश्रित दृष्टि से एक-दूसरे की ओर देखने लगे। अजीब-सी डरावनी घटना थी वह। राधावल्लभ तो भय से काँपने लगा। उसके हाथ से छूट कर लालटेन धप् से जमीन पर गिर पड़ी और बुझ गयी। उन लोगों का मुखिया निमाई इस घटना को प्रेत-लीला समझ कर पागलों की तरह चीखता-चिल्लाता हुआ सड़क की ओर भागा। उसके साथी भी भूत-भूत चिल्लाते हुए उसके पीछे भाग निकले।

यह घटना अगस्त सन् १९३१ की है।

जिस व्यक्ति का शव रहस्यमय ढंग से गायब हुआ था, वह पश्चिम बंगाल के प्रसिद्ध और धनी जमींदार गोपालचन्द्र राय चौधरी की कुल-परम्परा के अन्तिम दीपक मोहनचन्द्र राय चौधरी का था। उसकी आयु बीस-बाईस वर्ष के लगभग थी। चार मास पूर्व उसकी शादी बंगाल के मल्लिका स्टेट के जमींदार की इकलौती पुत्री भुवनमोहिनी के साथ हुई थी। लोगों की नजर में मोहनचन्द्र की मृत्यु कालरा से हुई थी, मगर वास्तविकता कुछ और ही थी।

निमाई ने हाँफते हुए जब रानी मधुमुखी को रहस्यमय ढंग से शव गायब होने की सूचना दी तो उनको भी कम आश्चर्य नहीं हुआ। पर अन्त में उन्होंने यही समझा कि निश्चय ही शव चिता से सरक कर स्वर्णरेखा नदी की प्रखर धारा में बह गया होगा।

गोपालचन्द्र राय चौधरी के पास काफी चल-अचल सम्पत्ति थी। राय चौधरी बहुत ही उदार और सात्विक विचार के व्यक्ति थे। उनकी विशाल हवेली में हर वर्ष काफी धूम-धाम से दुर्गा-पूजा और काली-पूजा का समारोह मनाया जाता रहा था। उस अवसर पर ब्राह्मणों को भोजन तो कराया ही जाता था, इसके अलावा पूरी जमींदारी से मिठाई बाँटी जाती थी। गरीबों के लिए तो गोपालचन्द्र राय चौधरी साक्षात् परमेश्वर ही थे। उस दानवीर और उदार जमींदार को गाँव के सभी लोग बहुत चाहते थे। राय चौधरी की पत्नी सर्वमंगला देवी भी पति की ही तरह शीलवती, दानी, उदार, मिलनसार और सच्चरित्र थी। गाँव के लोग उनको रानी माँ कहते थे।

वैभव की कमी नहीं थी। पति-पत्नी सुख-शान्ति से जीवन व्यतीत कर रहे थे। फिर भी उनके सुख में एक भारी कमी थी। बिना सन्तान के वे हमेशा दुःखी रहते थे।

यज्ञ-योग, पूजन-हवन, व्रत-मनौती आदि कितने ही उपाय किये मगर व्यर्थ। सफलता नहीं मिली। फिर भी निराश नहीं हुए पति-पत्नी। दुर्गा-पूजा समारोह खत्म हो चुका था। प्रतिवर्ष की भाँति दीपावली की काली-पूजा की तैयारियाँ धूम-धाम से हो रही थीं।

साँझ का समय था। गोपालचन्द्र राय चौधरी अपने बैठकखाने में गद्दी पर तकिया के सहारे बैठे कुछ सोच-विचार में मग्न थे तभी हवेली के फाटक पर डमरू की डम् डम् ध्वनि के साथ 'हर हर महादेव, शिवशंकर की जै', की आवाज सुनाई पड़ी।

फाटक के सामने हाथ में डमरू और त्रिशूल लिये रौद्ररूपधारी एक व्यक्ति खड़ा था। उसके लम्बे-चौड़े शरीर में भस्म पुता हुआ था। मस्तक पर त्रिपुण्ड लगा था। सिर पर जटाजूट, गले में नर-मुण्ड के साथ स्फटिक और मूँगे की मालाएँ, कमर में मृगचर्म। उस रौद्ररूपधारी की आँखें शराब के नशे के कारण लाल हो रही थीं।

आवाज सुनकर गोपालचन्द्र राय चौधरी चादर सँभालते हुए लपक कर फाटक पर आये और दोनों हाथ जोड़ कर उन्होंने विनम्र भाव से प्रणाम किया।

'मैं अवधूतेश्वर कापालिक हूँ। कामरूप के महाश्मशान से चल कर आया हूँ। मुझे तुम्हारी सेवा की आवश्यकता है।'—रौद्ररूपधारी ने गम्भीर गरजती हुई आवाज में कहा।

राय चौधरी ने बड़ी श्रद्धा से कापालिक को हवेली के भीतर ले जाकर एक ऊँचे आसन पर बैठाया।

आतिथ्य स्वीकार करने के पश्चात् कापालिक सन्तान के अभाव में पति-पत्नी को उदास देखकर बोला, 'सन्तान के लिए भगवती शिव-शिवा काली की पाषाण प्रतिमा की प्राण-प्रतिष्ठा करनी होगी, तभी सफलता मिलेगी।'

'आपकी जैसी इच्छा महाराज।' राय चौधरी विनम्र स्वर में बोले। दूसरे ही दिन माँ काली के नाम हवेली से सटी दो एकड़ भूमि संकल्प कर उत्सर्ग कर दी गई।

कापालिक अवधूतेश्वर ने पाँच काले बकरों की बलि देकर भूमि का शोधन किया और दीपावली की महानिशा बेला में पंचमुण्डी की आसन पर भैसों की बलि देकर अपने हाथों से माँ भवतारिणी शिव-शिवा काली की पाषाण-प्रतिमा की स्थापना की। इस शुभ अवसर पर हजारों ब्राह्मणों और गरीबों को अन्न-वस्त्र दान किया गया। भोजन कराया गया और रुपये बाँटे गये।

संयोग की बात, उसी दिन रानी सर्वमंगला गर्भवती हो गयीं। जब यह समाचार गोपालचन्द्र राय चौधरी को मिला तो उनकी प्रसन्नता की सीमा न रही। उन्होंने माँ काली का भव्य और विशाल मन्दिर और तालाब बनवाना शुरू कर दिया। थोड़े ही दिनों में मन्दिर और उसके सामने विशाल सरोवर बन कर तैयार हो गया। शेष भूमि में जामुन, पाकड़, अमरूद, केला आदि के अलावा जवा, कुन्द, रातरानी, कृष्णचूड़ा आदि फूलों के वृक्ष भी लगा दिये गये। कापालिक ने मन्दिर के प्रांगण में अपनी धूनी रमा ली। कमी तो किसी बात की थी नहीं। दिन-रात शराब के नशे में माँ-माँ कहता रहता वह। रानी

सर्वमंगला बराबर उसकी सेवा-टहल में लगी रहती। ठीक समय पर उन्होंने एक स्वस्थ और सुन्दर बालक को जन्म दिया। पुत्रजन्म के अवसर पर पूरी जमींदारी में मिठाई बाँटी गई। उस दिन का समारोह विलक्षण था। कापालिक का तो ऐसा सम्मान किया गया कि उसका उदाहरण ही नहीं मिलेगा, मगर जब उसने नवजात शिशु को देखा तो उसके चेहरे पर व्यथा के भाव उभर आये। थोड़ी देर तक आकाश की ओर अपलक निहारने के बाद उसने गम्भीर स्वर में कहा—'बालक को माता का सुख नहीं है। बीस वर्ष के बाद बालक को प्राण-घातक योग है, मगर मैं उसकी रक्षा करूँगा।'

भविष्यवाणी सुनकर राय चौधरी काफी दुःखी हुए, मगर कापालिक के अन्तिम शब्दों से उनको कुछ शान्ति मिली। बालक का नाम रखा गया मोहनचन्द्र।

कापालिक की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। मोहनचन्द्र के जन्म के तीन साल बाद रानी सर्वमंगला चल बसी। पत्नी के वियोग में गोपालचन्द्र राय चौधरी विक्षिप्त हो उठे। उनके दुःख की कोई सीमा नहीं थी।

कापालिक अवधूतेश्वर भविष्यवाणी करने के बाद वहाँ नहीं ठहरा था। एक रात बिना किसी को कुछ बतलाये वह न जाने कहाँ चला गया। राय चौधरी ने काफी खोज की मगर वह नहीं मिला।

गोपालचन्द्र राय चौधरी की दूसरी शादी करने की इच्छा नहीं थी, लेकिन मोहन की देखभाल ठीक से हो और उसको मातृस्नेह मिले, इसलिए वे दूसरी शादी के लिए तैयार हो गये। उस समय उनकी उम्र ५० वर्ष के करीब थी। सर्वमंगला की ही एक ममेरी बहन थी—नाम था मधुमुखी। २०-२२ वर्ष की युवती थी वह। रूप-रंग साधारण ही था, मगर उसका स्वभाव घमण्डी, उदण्ड, ईर्ष्यालु और क्रोधी था। सर्वमंगला से कोई समानता नहीं थी उसकी।

साधारण तौर पर गोपालचन्द्र राय चौधरी की शादी मधुमुखी से हो गयी। हवेली में आते ही उसने घर और जमींदारी का सारा कारोबार अपने हाथों में ले लिया। मोहनचन्द्र से तो वह बहुत ही नफरत करती थी। राय चौधरी ने जो सोच-समझ कर शादी की थी, उसके ठीक विपरीत हो गया।

मोहन के प्रति मधुमुखी पूरी तरह सौतेली माँ की भूमिका निभाने लगी।

दो साल बाद उसे भी एक पुत्र हुआ, जिसका नाम कृष्णचन्द्र रखा गया। अब तो वह मोहन से और अधिक घृणा करने लगी। वह चाहती थी कि सारी चल-अचल सम्पत्ति का मालिक उसका ही बेटा बने। मोहन की चिन्ता के कारण राय चौधरी की तबीयत बराबर खराब रहने लगी। आखिर उन्हें तपेदिक हो गया और अन्त तक उसी रोग ने उनकी जान ले ली।

उस समय मोहनचन्द्र की उम्र २० वर्ष की थी। पिता की मृत्यु से वह एकबारगी हताश-निराश हो गया और हमेशा गुमसुम रहने लगा। चुपचाप हवेली के एक कमरे में

मौन साधे पड़ा रहता। उसके मामा से उसकी यह हालत नहीं देखी गयी। उन्होंने मधुमुखी पर दवाव डाल कर भुवनमोहिनी से उसका विवाह करा दिया।

भुवनमोहिनी एक सीधी, सरल और शान्त स्वभाव की युवती थी। अपनी सौतेली सास का छल-कपट वह नहीं समझती थी। दूसरी ओर उसके आ जाने से मधुमुखी का स्वभाव और अधिक उग्र हो गया। कारोबार तो उसके हाथों में था ही, अव उसने अपने भाई रमेश को मैनेजर नियुक्त कर दिया। रमेश व्यभिचारी, दुष्ट और ऐयाशी मिजाज का व्यक्ति था। आते ही वह सव पर अपनी हुकूमत चलाने लगा। वह अपनी बहन को भी दबाव में रखता था। मधुमुखी उसके सामने भीगी विल्ली वनी रहती। इसका भी एक कारण था। राय चौधरी की मृत्यु के बाद वह शराव पीने लगी थी। गाँव का मुखिया निमाई शहर से उसके लिए शराब की बोतलें ले आता था। किसी और को इस बात का पता नहीं चलता था।

निमाई स्वस्थ और आकर्षक युवक था, साथ ही काफी चालाक भी था। वह कई घाटों का पानी पीने के बाद गाँव वापस लौटा था। परिवार में अकेला ही था। धीरे-धीरे अपनी धूर्त बुद्धि से वह एक दिन गाँव का मुखिया बन बैठा। उसने राय चौधरी के मन को भी मोह लिया था। फिर क्या था, हवेली में भी आना-जाना शुरू हो गया। राय चौधरी इस पर बहुत विश्वास करते थे। कभी-कभी वह उससे व्यक्तिगत मामलों में सलाह-मशविरा भी लेने लगे।

उनकी मृत्यु के बाद निमाई ने अपना जाल मधुमुखी पर फेंका और इसमें सफल भी हो गया वह। न जाने कैसे उसने मधुमुखी को शराब का चस्का लगा दिया, फिर वह कुछ ही दिनों में इसकी आदी हो गयी। फिर हमेशा शराब के नशे में डूबी रहने लगी और एक रात उसी शराब के नशे में निमाई के साथ उसका शारीरिक संबंध स्थापित हो गया।

निमाई तो यही चाहता ही था। अब उसकी हर रात मधुमुखी के साथ रंगीन होने लगी। मगर एक रात रमेश ने दोनों को शराब के नशे में बेसुध सहवास करते हुए देख लिया। मधुमुखी निमाई के चंगुल में फँसी ही थी, अब उस पर भाई का भी शासन हो गया।

गोपालचन्द्र राय चौधरी काफी दूरदर्शी थे। अपनी वसीयत में उन्होंने मोहन को अपनी सम्पूर्ण जमीन-जायदाद का मालिक बनाया था और मधुमुखी एवं उसके बेटे के लिए मासिक वेतन मात्र निश्चित किया गया था। यह रहस्य किसी को नहीं मालूम था। मृत्यु के समय राय चौधरी मोहन से मिलना चाहते थे, मगर मधुमुखी ने नहीं मिलने दिया था। अपने पिता की मौत की खबर उसे कलकत्ता में मिली थी। वह असीम दुःख में डूब गया। पिता का अन्तिम दर्शन भी उसको दुर्लभ रहा। उसको लगा था कि अब वह पूर्णतः अनाथ हो गया।

मधुमुखी निमाई और रमेश के हाथों कठपुतली बन गयी थी। जब उसको राय

चौधरी के वकील से वसीयत के बारे में मालूम हुआ तो एकबारगी क्रोध से विफर उठी वह। उसने वकील को विवश किया कि वह उस वसीयत को नष्ट कर दे, लेकिन वकील नेक और ईमानदार व्यक्ति था। उसने असली वसीयत तो अपने पास सुरक्षित रख ली और उसकी एक नकल बना कर मधुमुखी को दिखाने के लिए उसके सामने उसे जला दिया। उस खुशी में मधुमुखी ने वकील को १० हजार रुपये पुरस्कार के रूप में दिये थे। अब उसे मोहन को रास्ते से हटाना था। इसके लिए मधुमुखी, निमाई और रमेश के बीच गुप्त रूप से सलाह-मशविरा हुआ, फिर तीनों ने मिलकर षड्यंत्र रचना शुरू कर दिया। पहले भुवनमोहिनी को उसके मायके भेज दिया गया, फिर एक दिन मोहन को न जाने कौन सा शर्बत पिलाया गया कि कालरा की स्थिति पैदा हो गयी।

रात का समय था। फौरन डॉक्टर को बुलाया गया। मोहन की हालत देख कर डॉक्टर तुरन्त समझ गया कि उसे जहर दिया गया है। मगर मधुमुखी ने १० हजार रुपये देकर डॉक्टर को अपने वश में कर लिया और उसने कालरा होने का प्रमाणपत्र दे दिया। रात का पहला पहर बीतते-बीतते मोहनचन्द्र की मृत्यु हो गयी। तुरन्त उसके शव को श्मशान ले जाने का इन्तजाम किया गया। इसके बाद की कथा आप पहले ही पढ़ चुके हैं।

लेकिन मोहन मरा नहीं था। वास्तव में वह तब भी जीवित था। उसके शरीर में कहीं प्राण शेष थे। हवा और पानी के स्पर्श से वह चेत में आ गया। जब उसकी चेतना लौटी तो उसने अपने आपको नदी के किनारे बाँस की झाड़ी में फँसा पाया। फिर वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा—'बचाओ बचाओ ।'

संयोग ही समझिये इसे। श्मशान के निकट एक शिव मन्दिर में उस समय शव पर बैठ कर कापालिक अवधूतेश्वर कोई मंत्र जागृत कर रहा था। आवाज सुनकर वह मोहनचन्द्र के पास आया। पहचानने में देर नहीं लगी उसे। वह योगबल से सारी स्थिति समझ गया। मोहन को साथ लेकर वह सीधा हिमालय चला गया। जहर के कारण मोहन की मृत्यु तो नहीं हुई, लेकिन उसके मस्तिष्क पर उसका भयंकर असर हुआ। पूर्व-स्मृति लुप्त हो गयी। इससे कापालिक एक प्रकार से प्रसन्न ही हुआ।

हिमालय के अनेक गुप्त रहस्यमय स्थानों में रहकर मोहन ने कापालिक के बतलाये हुए साधना-मार्ग पर चलते हुए कई तांत्रिक साधनाएँ कीं। वह पूरे दस वर्ष तक कापालिक के साथ हिमालय की गोद में रहा। इस अवधि में उसने कई अमोघ और दुर्लभ सिद्धियाँ तो प्राप्त की थीं, इसके अलावा नियमित रूप से कसरत और पहाड़ी औषधियों से वह काफी स्वस्थ और शक्तिशाली भी हो गया। तांत्रिक साधना और औषधियों के मिले-जुले प्रभाव से उसका चेहरा सोने की तरह चमकने लगा था। आँखों में एक अजीब सी शान्ति छलकने लगी। ऐसा लगता जैसे उसने जिन्दगी की गहराई को समझ लिया हो।

एक बार वह अपने गुरु कापालिक के साथ मानसरोवर की ओर जा रहा था। न जाने कैसे एकाएक बर्फ पर उसका पैर फिसला और वह एकदम ५०-६० फुट नीचे जा

गिरा। सिर में गहरी चोट लगी थी। घण्टों बेहोश पड़ा रहा और जब फिर चेतना लौटी तो वह एकबारगी चीख उठा—'भुवन भुवनमोहिनी।'

सिर में लगी चोट के कारण मोहन की पूर्व-स्मृति वापस लौट आयी थी। यह विस्मयकारी घटना थी। उसने कापालिक से पूछा—'हम अपने गाँव कब जायेंगे।'

'अब समय आ गया है।'—गम्भीर स्वर में कापालिक बोला और उसने मोहन को उसके जन्म के पूर्व से लेकर अब तक की सारी घटनायें सुना डालीं। उस समय मोहन की उम्र ३२ वर्ष की थी। लम्बी दाढ़ी और सिर पर कापालिक की तरह जटा-जूट था—बिल्कुल साधु का वेश बन गया था उसका।

उसी वेश-भूषा में कापालिक उसे लेकर गाँव पहुँचा, लेकिन वहाँ की स्थिति कुछ और ही थी। पिछले दस वर्षों में काफी परिवर्तन हो गया था। सर्प के काटने से निमाई की मृत्यु हो चुकी थी। अधिक शराब और ऐयाशी के कारण मधुमुखी पूर्ण रूप से विक्षिप्त हो गयी थी। उसके बाल सफेद हो गये थे और आँखें धँस गयी थीं। गालों की हड्डियाँ उभर आयी थीं। वह हमेशा पागलों की तरह प्रलाप करती रहती।

मधुमुखी की इस अवस्था का फायदा उठा कर रमेश पूरी जमींदारी का मालिक बन बैठा था और बिना किसी रोक-टोक के दोनों हाथ से सुरा-सुन्दरी की उपासना में धन लुटा रहा था। गाँव वाले रमेश के अनाचारों से त्रस्त हो उठे थे। जब रमेश को पता चला कि कापालिक के साथ मोहनचन्द्र आया है तो उसने पहचानने से एकदम इन्कार कर दिया।

कापालिक और मोहन शिव-शिवा मन्दिर में ठहरे हुए थे। जब गाँव वालों को मालूम हुआ कि छोटे सरकार लौट आये हैं तो सभी को आश्चर्य हुआ। उन्हें देखने के लिए मन्दिर पर भीड़ जुटने लगी। मगर किसी ने मोहन को पहचाना नहीं। उसका रूप-रंग और उसकी वेश-भूषा ही कुछ ऐसी थी कि कोई पहचानता कैसे। परिस्थिति विपरीत देखकर कापालिक सीधा वकील के पास पहुँचा और उसे मोहन के बारे में विस्तार से सब कुछ बता दिया। वकील ने जब मोहन की छाती पर रेखांकित सर्पाकृति देखी, तो उसे विश्वास हो गया। यह सर्पाकृति कुलपरम्परा के अनुसार ही मोहनचन्द्र की छाती पर अंकित की गई थी।

असली वसीयत वकील के पास सुरक्षित तो था ही। वकील ने तुरन्त अदालती कार्रवाई की। अदालत की ओर से नोटिस मिलते ही रमेश एक रात चुपचाप खिसक गया। वकील ने गाँव वालों को एकत्र करके सारी स्थिति स्पष्ट की, फिर तो पूरे गाँव में खुशी की लहर फैल गयी। सब अपने छोटे सरकार का स्वागत-सत्कार करने में जुट गये।

मगर जब मोहनचन्द्र को वकील के जरिये यह मालूम हुआ कि उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर भुवनमोहिनी ने शिव-शिवा के सामने छाती में छुरा भोंक कर आत्महत्या कर ली, तो बिलख उठा वह। लगातार कई दिनों तक मन्दिर के पट भीतर से बंद करके

पड़ा रहा। कापालिक ने बहुत समझाया मगर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने विगलित कण्ठ से सिर्फ इतना ही कहा—'जब मेरी जीवनसंगिनी ही नहीं रही तो यह सारा वैभव लेकर मैं क्या करूँगा। अब वेश-भूषा भी बदलने की आवश्यकता नहीं है।'

उसके चित्त में एकाएक वैराग्य उत्पन्न हो गया।

काली-पूजा के अवसर पर मोहन ने अपनी पत्नी की स्मृति में शिव-शिवा मन्दिर के प्रांगण में संगमरमर की एक समाधि बनवाई फिर बड़ी धूम-धाम से काली-पूजा का समारोह मनाया और उसी शुभ अवसर पर बाकायदा लिखा-पढ़ी करके पूरी जमींदारी अपने सौतेले भाई कृष्णमोहन राय चौधरी को अर्पित कर दी।

इसके बाद एक दिन भी नहीं रुका वह। अपने गुरु के साथ धीरे-धीरे पग उठाता हुआ चल पड़ा गाँव की पगडण्डी पर। गाँव के बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सबकी आँखें गीली थी उस समय। सब अपने छोटे सरकार को सजल आँखों अवरुद्ध कण्ठ से विदा कर रहे थे। सड़क पर पहुँचकर मोहन ने सिर घुमाकर एक बार हवेली की ओर देखा, फिर घूम कर द्रुतगति से आगे बढ़ गया।

मैं स्तब्ध बैठा उस साधु के मुँह से यह कहानी सुन रहा था। रात गहरी हो गयी थी। हरिश्चन्द्र घाट पर सन्नाटा छा गया था। श्मशान में जलती हुई चिता बुझ चुकी थी।

मैंने जेब से सिगरेट निकाली और उसे सुलगा कर सामने बैठे उस जटा-जूटधारी नंग-धड़ंग तांत्रिक की ओर देखा—उस समय वह आकाश की ओर शून्य में अपलक निहार रहा था। उसके चेहरे पर गहरी उदासी थी।

मैंने जिज्ञासावश पूछा—'आपको यह सारी कथा कैसे मालूम हुई।' मेरा प्रश्न सुनकर तांत्रिक ने सिर घुमाया। मेरी ओर एक बार गहरी नजरों से देखा, फिर बोला—'मैं ही मोहनचन्द्र राय चौधरी हूँ।'

'ऐं! आप ही हैं।' आश्चर्य से मेरी आँखें फैल गयीं।

वह अचानक अपनी जगह से उठा और जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाता हुआ अँधेरे में विलीन हो गया।

उस समय मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब मैंने सुना कि वह साधु और कोई नहीं, गुप्त योगी और सिद्ध समाज में प्रसिद्ध 'डमरूबाबा' थे। पिछले कई वर्षों से मैं डमरूबाबा की अमोघ सिद्धि और चमत्कारों के बारे में सुनता आ रहा था। मैंने इतना भी सुन रखा था कि दशाश्वमेध के आस-पास ही वह कहीं गुप्त रूप से रहते हैं। किसी से मिलते-जुलते नहीं और न तो बाहर ही निकलते हैं अपने कमरे से। साधारण लोग तो उनको पहचानते तक नहीं हैं, उनका नाम सभी जानते हैं। उनसे मिलने वाले वही लोग हैं जो योगी या गहरे तांत्रिक हैं।

इस प्रकार डमरूबाबा का सहसा दर्शन होगा, उनसे बातें होंगी, और उन्हीं के मुख से उनके जीवन की दारुण कथा भी सुनने को मिलेगी—इसकी स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी मैंने।

उसके बाद मैंने उनकी काफी खोज-बीन की मगर फिर वह नहीं मिलें। आखिर मैं निराश हो गया। काफी लम्बे अरसे के बाद एक दिन दशाश्वमेध घाट की ओर जाते समय अचानक मेरी दृष्टि एक जीर्ण-शीर्ण मकान की खुली खिड़की के भीतर पहुँच गई। मैं एकदम अचकचा गया। कमरे में डमरूबाबा बैठे थे। उनकी भी दृष्टि मुझ पर पड़ी, मैं भीतर चला गया। वहाँ गहरा अँधेरा था। कमरे में तीन वृद्धा औरतें बैठीं पत्तल पर भात और मछली खा रही थीं। बाबा ने बतलाया—'ये तीनों डाकिनी, हाकिनी और शाकिनी हैं।'

मैंने देखा—भात खाने के बाद बैठी-ही-बैठी तीनों औरतें अपनी जगह से गायब हो गयीं। मैं स्तब्ध रह गया।

बाबा ने कहा—'ये तीनों भैरवियाँ आकाश मार्ग से आती हैं। तीनों काफी शक्तिशालिनी हैं।'

फिर तंत्र-मंत्र पर घण्टों बाबा से बातें होती रहीं। अन्त में, अनुरोध भरे स्वरों में बोले—'मेरी स्थिति का आभास किसी को लगना नहीं चाहिए। इसका खयाल रखना।'

जब चलने लगा तो आँगन में एक बुढ़िया दिखलायी पड़ी। उसके बाल सन की तरह सफेद थे। शरीर पर टाट लपेटे हुए वह भिखारिनी-सी लग रही थी। मैंने समझा शायद वह भी कोई पिशाचिनी ही होगी। मगर यह मेरा भ्रम था। वह बुढ़िया मधुमुखी थी—मोहनचन्द्र राय चौधरी की सौतेली माँ।

उसके बाद कई बार मिलने गया, पर, फिर बाबा से भेंट नहीं हुई। पता चला कि वे हिमालय की ओर चले गये। हाँ, कभी-कदा दशाश्वमेध और बंगाली टोला की गलियों में मधुमुखी से भेंट हो जाया करती है।

OOO